BAPS(N)-220

तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं

(Comparative Politics and Political Institutions)

राजनीति विज्ञान विभाग

Hello Haldwani

हैलो हल्द्वानी

91.2 FM

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाईपास मार्ग

ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी 263139

नैनीताल, उत्तराखण्ड

Email: info@uou.ac.in; Website: http://uou.ac.in

BAPS(N)-220

तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं

Comparative Politics and Political Institutions

समाज विज्ञान विद्या शाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी ,263139

पाठयक्रम समिति

प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे **निदेशक – समाज विज्ञान विद्या शाखा,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल	**प्रो0 एम0एम0 सेमवाल** राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढवाल
प्रो0 दुर्गाकान्त चौधरी राजनीति विज्ञान विभाग श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय ऋषिकेश परिसर, ऋषिकेश	**प्रो0 सतीश कुमार** राजनीति विज्ञान विभाग इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ0 सूर्य भान सिंह **(विशेष आमंत्रित सदस्य)** एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान इलाहबाद विश्वविद्यालय	**डॉ घनश्याम जोशी** असिस्टेंट प्रोफेसर लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ लता जोशी असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**आरूशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एव सम्पादन

डॉ0 सूर्य भान सिंह एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान इलाहबाद विश्वविद्यालय	**आरूशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ. अनुराग रत्न, विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग जी.एस.पी.जी.कालेज सुल्तानपुर	**1,2**
डॉ घनश्याम जोशी**,** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**3,5,6,7,8**
डॉ आशुतोष पांडे, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान,डॉ. शकुंतला मिश्र पुनर्वास वि. वि. लखनऊ	**4,10**
डॉ. विजय प्रताप मल्ल, राजनीति विज्ञान प्रवक्ता ,जे,एल,नेहरू पी.जी. कालेज,बाराबंकी	**12, 13**
नियति रावत, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**9**
डॉ. लता जोशी, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**11**
आरुशी, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**14**

आई.एस.बी.एन. ----------

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष -2023

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल 263139

Printed at :----------

संस्करण :2023, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए विना मिमियोग्रफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है

मुद्रित प्रतियां

अनुक्रम
तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं
BAPS(N)-220

खण्ड/इकाई संख्या	खण्ड /इकाई संख्या	पृष्ठ संख्या
खण्ड 1	**तुलनात्मक राजनीति का परिचय**	
इकाई 1	तुलनात्मक राजनीति: महत्व, अर्थ एवं क्षेत्र	1-16
इकाई 2	तुलनात्मक राजनीति के विभिन्न उपागम: परंपरागत और आधुनिक	17-28
खण्ड 2	**संविधान और संविधानवाद**	
इकाई 3	संविधान और संवैधानिक सरकार	29-38
इकाई 4	संविधान और संविधानवाद में अंतर	39-46
खण्ड 3	**विभिन्न शासन प्रणालियाँ**	
इकाई 5	संसदात्मक शासन प्रणाली	47-56
इकाई 6	अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली	57-66
इकाई 7	एकात्मक शासन प्रणाली	67-74
इकाई 8	संघात्मक शासन प्रणाली	75-84
इकाई 9	लोकतंत्र और अधिनायकतंत्र	85-95
खण्ड 4	**व्यवस्थापिका और शक्ति का पृथक्करण सिद्धांत और व्यवहार**	
इकाई 10	व्यवस्थापिका- एक सदनीय, द्विसदनीय, व्यवस्थापिका का पतन	96-110
इकाई 11	शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत, नियंत्रण एवं संतुलन का सिद्धांत	111-119
खण्ड 5	**लोकतान्त्रिक व्यवस्था के साधन**	
इकाई 12	राजनीतिक दल और दल पद्धतियां	120-131
इकाई 13	दबाव समूह, हित समूह एवं नागरिक समाज	132-147
इकाई 14	जनमत	148-157

इकाई 1 – तुलनात्मक राजनीति: महत्व,अर्थ,क्षेत्र एवं स्वरुप

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 तुलनात्मक राजनीति: अर्थ एवं व्याख्या
1.4 तुलनात्मक राजनीतिक क्रियाओं के महत्व
1.5 तुलनात्मक राजनीति का विषय के रूप में विकास
1.6 तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति
1.7 तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

20 वीं सदी से राजनीति विज्ञान के विषय क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप राजनीतिक समस्याओं, सिद्धान्तों तथा संस्थाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के मानदण्डों में भी परिवर्तन आया है। तुलनात्मक राजनीति, इसी दिशा में किया गया प्रयास है जिसके माध्यम से राजनीति विज्ञान में होने वाले परिवर्तनों का व्यवस्थिति ढंग से विश्लेषण करके सम्पूर्ण व्यवहार को समझने के लिए सामान्यीकरण किया जा सकता है। तुलनात्मक राजनीति के अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एंव समस्याओं का विवेचन करने से पूर्व हमें उसके अध्ययन के महत्व को समझना होगा।

वस्तुतः तुलनात्मक राजनीति, राजनीति विज्ञान के बदलते हुए अध्ययन क्षेत्र का परिचायक है। इसके माध्यम से ऐसे नये तरीकों, तकनीकों तथा उपागमों का सृजन किया गया है जिनसे राजनीतिक वास्तविकताओं का (Political Realities) क्रमबद्व अध्ययन किया जा सके। यह भी सत्य है कि राजनीति विज्ञान में तुलनात्मक अध्ययन किसी नवीन विकास से सम्बद्व नहीं है। राजनीतिक व्यवहार के अध्ययन के साथ-साथ तुलनात्मक अध्ययन को भी समझा एवं विश्लेषित किया जा सकता है। जीन ब्लोंडेल के अनुसार, ''तुलनात्मक सरकारों का अध्ययन प्राचीनतम अत्यन्त कठिन एवं महत्वपूर्ण है तथा प्रारम्भ से ही मानव के ध्यान का आकर्षण रहा है।''१

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त ---

- तुलनात्मक राजनीति के अर्थ को समझ सकेंगे |
- तुलनात्मक राजनीति के प्रकृति को समझ सकेंगे|
- तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र को समझ सकेंगे|
- तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के महत्त्व के बारे में जान पायेंगे|

1.3 तुलनात्मक राजनीति: अर्थ एवं व्याख्या

आधुनिक राजनीति वैज्ञानिकों का यह दावा है कि उन्होंने राजनीतिक प्रक्रिया के सिद्धान्त एवं प्रतिमान निर्माण की ओर प्रथम चरण के रूप में राजनीतिक विश्लेषण की नूतन अवधारणाओं के सुझाव प्रस्तुत किये हैं। उनका मानना है कि राज्य की अवधारणा विश्लेषण के एक उपकरण के रूप में उन राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना व उपयोगी अध्ययन करने में विशेष सहायक नहीं, जिनमें आकार, संगठन, संस्थाओं एवं संस्कृति की आधारभूत भिन्नताएँ हों। अतएव राजनीति विज्ञान में वर्षों से प्रचलित परम्परागत अवधारणाओं जैसे-राज्य, सरकार, कानून, सत्ता के स्थान पर नई

अवधारणाओं का प्रयोग अपरिहार्य माना जाने लगा, ताकि राजनीतिक क्रियाओं को गम्भीरता से समझा जा सके। अतएवं समकालीन राजनीति वैज्ञानिकों द्वारा राजनीतिक अध्ययन में राजनीतिक व्यवस्था (Political System) राजनीतिक संस्कृति (Political Culture),राजनीतिक संरचना (Political Structure),राजनीतिक विकास(Political Development) ,राजनीतिक आधुनिकीकरण (Political Modernization) ,तथा राजनीतिक समाजीकरण (Political Socialization), आदि नई अवधारणाओं का प्रयोग किया जाने लगा। इन नई अवधारणाओं में भी आधारभूत अवधारणा (Basic Concept) राजनीतिक व्यवस्था को माना जाने लगा। इस राजनीतिक व्यवस्था से सम्बन्धित राजनीतिक प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों पर तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर, राजनीतिक व्यवहार सम्बन्धी सिद्धान्त निर्माण के लक्ष्य से युक्त विज्ञान ही तुलनात्मक राजनीति है।

तुलनात्मक राजनीति के अर्थ को विस्तृत विवेचन करने से पहले इसका तुलनात्मक सरकार से अन्तर समझ लेना आवश्यक है। सामान्यतया दोनों का प्रयोग एक-दूसरे के लिए किया जाना स्वाभाविक है। परन्तु दूसरी ओर राजनीति विज्ञान में इनके सुनिश्चित अर्थ भी हैं। जी.के. राबर्टस ने दोनों का अर्थ अलग-अलग स्पष्ट करते हुए तुलनात्मक सरकार की परिभाषा इस प्रकार की है, ''तुलनात्मक सरकार राज्यों, उनकी संस्थाओं तथा सरकारों के कार्यों का अध्ययन है जिसमें शायद राज्य क्रिया से अत्यधिक निकट का सम्बन्ध रखने वाले पूरक समूहों राजनीतिक दल व दबाव समूहों का भी अध्ययन सम्मिलित है।''6 इसी प्रकार जीन ब्लोंडेल का कहना है, ''तुलनात्मक सरकार समकालीन विश्व में राष्ट्रीय सरकारों के प्रतिमानों का अध्ययन है।7

तुलनात्मक सरकार की उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि इसमें राज्य से सम्बद्ध औपचारिक संस्थाओं का ही तुलनात्मक अध्ययन होता है। इसमें गैर-औपचारिक संस्थाओं तथा राजनतिक व्यवहार से सम्बन्धित सभी प्रक्रियाओं सभी प्रक्रियाओं को सम्मिलित नहीं किया जाता। इसमें मुख्य जोर शासन की संस्थाओं के विश्लेषण पर है। राजीतिक व्यवहार के अनेक पक्षों का, जो सरकार का दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों को प्रभावित करते हैं, अध्ययन नहीं किया जा सकता है। दूसरी ओर तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीति व्यवहार की सम्पूर्णता के अध्ययन से है। इसमें उन प्रभावों तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन भी सम्मिलित किया जाता है जिससे सरकारों के व्यवहारों का निर्धारण हो सके। 8

एडवर्ड ए. फ्रीमैन तुलनात्मक राजनीति का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''तुलनात्मक राजनीति सरकारों के विविध प्रकारों व विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं का तुलनात्मक विश्लेषण है।'' राय सी. मैक्रेडीज के अनुसार, ''हेरोडोट्स तथा अरस्तू के समय से ही राजनीतिक मूल्यों, विश्वासों, संस्थाओं सरकारों व राजनीतिक व्यवस्थाओं में विविधताएँ प्राणवान रही हैं तथा इन विविधताओं से समान तत्वों की खोज करने के जड़तीय प्रयास को तुलनात्मक राजनीति विश्लेषण की संज्ञा दी जानी चाहिये।''9

जी.के. राबर्टस के अनुसार, ''तुलनात्मक राजनीति एक विस्तृत विषय है जिसके अन्तर्गत तुलनात्मक सरकारों के अध्ययन की विषय-वस्तु को सम्मलित किया जाता है तथा साथ ही गैर-राज्यीय राजनीतिक कबीले, समुदाय, वैयक्तिक संघों आदि की राजनीति अध्ययन भी इसके अन्तर्गत किया जाता है।''10

राल्फ ब्रेबन्ती ने तुलनात्मक राजनीति की व्यापक परिभाषा की है, ''तुलनात्मक राजनीति सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में उन तत्वों की पहचान व व्याख्या है जो राजनीतिक कार्यो व उनके संस्थागत प्रकाशन को प्रभावित करते हैं।''11 माइकेल कर्टिस के अनुसार ''तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीतिक संस्थाओं की कार्यविधिव राजनीति व्यवहार की महत्वपूर्ण निरन्तरताओं, समानताओं व असमानताओं से है।''12 आमण्ड एवं पावेल के अनुसार, ''तुलनात्मक राजनीति के तीन मौलिक मंतव्य हैं- प्रथम पश्चिमी तथा गैर-पश्चिमी देशों की संस्थाओं का एक साथ विश्लेषण, द्वितीय, राजनीतिक संस्थाओं का क्रमबद्व ढंग से अध्ययन करना एवं तृतीय तुलनात्मक राजनीतिक सिद्धान्तों में सम्बन्ध स्थापित करना।''13

तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में राजनीति शब्द के तीन लक्ष्यार्थ हैं राजनीतिक क्रियाकलाप, राजनीतिक प्रक्रिया तथा राजनीतिक सत्ता। राजनीतिक क्रियाकलाप के अन्तर्गत वे प्रयास आते हैं जिससे सत्ता के लिए संघर्षरत लोग अपने हितों की यथासम्भव रक्षा कर सकें। राजनीतिक प्रक्रिया के अर्न्तगत उन सभी अभिकरणों की भूमिका आ जाती है जो निर्णय-निर्माण (Decision Making) प्रक्रिया से संग्लन हैं। इसी प्रकार सत्ता एक प्रकार का मानव सम्बन्ध है जिसके माध्यम से राजनीतिक प्रधिकार कुछ नीतियों के बारे में निर्णय करता है जिनका अनुपालन अन्य लोगों द्वारा करना आवश्यक होता है।

इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति, राजनीति संस्थाओं तथा राजनीतिक व्यवहार की समानताओं-असमानताओं से सम्बद्ध है। तुलनात्मक राजनीति में एक स्वतत्र अनुशासन के लिए आवश्यक सुस्पष्ट एवं निश्चित विषय-क्षेत्र है जिसका हम विस्तार से विवेचन इसी प्रकृति एवं क्षेत्र के अन्तर्गत करेंगे ।

1.4 तुलनात्मक राजनीतिक क्रियाओं के महत्व

राजनीति विज्ञान में तुलनात्मक अध्ययन का श्रेय प्रथम राजनीति वैज्ञाननिक अरस्तू को ही जाता है। सर्वप्रथम अरस्तू ने ही। 158 देशों के संविधानों का अध्ययन करके संविधानों का वर्गीकरण निरंकुशतन्त्र (Tyranny) कुलीनतंत्र (Oligarchy) तथा लोकतन्त्र (Democracy) के रूप में किया था। अरस्तू के उपरान्त अनेक विद्वानों ने तुलनात्मक अध्ययन के दृष्टिकोण से अनेक नवीन दृष्टिकोणों एवं उपागमों का सृजन किया, जिससे राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन, विश्लेषण व वर्गीकरण को नया आयाम मिला। डॉ. सी. बी. गेना ने अपनी पुस्तक 'तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ' में तुलनात्मक एवं राजनीतिक क्रियाओं के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उनकी निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लिखित की है।२

(1) राजनीतिक व्यवहार को समझना (**To Understand the Political Behaviours**)

साधारणतया जनसाधारण के लिए तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन का महत्व इस बात में निहित है कि तुलनात्मक अध्ययन से देश की, बाहर के देशों की तथा अन्तराष्ट्रीय राजनीति एवं राजनीतिक व्यवहार को समझने में सहायता मिलती है। एक स्थान की राजनीतिक प्रक्रिया दूसरे स्थान से भिन्न होती है जिसका प्रमुख कारण यह है कि विभिन्न समाजों में रहने वाले मनुष्यों का राजनीतिक व्यवहार भिन्न होता है। आज प्रत्येक राजनीतिक समाज में अभिजनों का महत्व है और ये अपने व्यवहार से राजनीतिक प्रक्रियाओं, संस्थाओं एवं क्रियाकलापों पर प्रभाव डालते हैं। अतएवं विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं के अभिजनों के राजनीतिक व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन करने से हम विभिन्न देशों की राजनीतिक प्रक्रियाओं को समझा सकते हैं। वार्ड एवं मैक्रेडीज के अनुसार ,''तुलनात्मक राजनीति विभिन्न समाजों के व्यक्तियों के मूल्य जो उन्हें प्रिय हैं, विधियाँ जिनका वे एक-दूसरे को व बाहरी विश्व को समझने में प्रयोग करते हैं तथा एक-जैसी राजनीतिक समस्याओं को हल करने के लिए भिन्न साधनों एवं समस्याओं को अपनाते हैं, इत्यादि को समझने में सहायक होती है।''३

राजनीतिक संस्थाओं, व्यवस्थाओं एवं प्रक्रियाओं की विविधतायें सहजतः ही यह प्रश्न सामने लाती हैं कि क्यों एक राजनीतिक व्यवस्था एक स्थान पर सफल तथा अन्य स्थान पर असफल होती है क्यों मार्क्सवाद रूप में ही अपनी जड़ें जमा पाया? क्यों एशिया-अफ्रीका के देशों में अधिनायवाद की प्रवृति बलवती हो रही है? क्यों भारत में लम्बे समय तक एकदलीय प्रभुत्व (One Party Dominance) बना रहा? इन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए आवश्यक है कि इन देशों में राजनीतिक व्यवहार की निरन्तरता की खोज की जाये तथा उसके कारकों का स्पष्टीकरण किया जाये। वास्तव में तुलनात्मक राजनीति का महत्व इस बात में निहित है कि इससे राजनीतिक व्यवहार की जटिलताओं को समझा व स्पष्ट किया जा सकता है।

(2) राजनीति को वैज्ञानिक अध्ययन बनाना (**Making Politics a Scientific Study**) राजनीति विज्ञान के विद्वानों का अरस्तू के समय से ही यह प्रयत्न रहा कि राजनीतिक व्यवहार से सम्बन्धित ज्ञान को विज्ञान का रूप किस प्रकार दिया जाये? तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन इसी प्रयत्न में विशेष सहायक प्रतीत होता, है क्योंकि विज्ञान में नियम प्रतिपादन न केवल राजनीतिक प्रक्रियाओं की अनेकता से सम्भव है,वरनपरस्पर प्रतिकूल व विविधताओं वाले राजनीतिक आचरण से ही उपलब्ध प्रचुर सामग्री से सम्भव है। 1955 के उपरान्त व्यवहारवाद के विकास ने तुलनात्मक राजनीति को इतना महत्वपूर्ण बना दिया है कि यही विज्ञान के रूप में राजनीति विज्ञान के विकास का प्रथम चरण बन गई है। तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन इसलिए भी उपयोगी बन जाता है कि विविधता एवं अनेकता युक्त राजनीतिक तथ्य एवं आँकड़े विभिन्न राजनीतिक क्रियाओं की तुलना से प्राप्त हो सकते हैं। कर्टिस के अनुसार, ''जबसे व्यवहारवादी दृष्टिकोण का प्रचलन हुआ, तबसे आज तक राजनीति विज्ञान की वैज्ञानिकता की आधुनिकतम अभिव्यक्ति हम तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन में ही पाते है।४ पीटर मर्कल के अनुसार ''वास्तव में राजनीति विज्ञान की श्रेणी में केवल तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर ही आ सका है इसलिए ही सम्भवतः अरस्तू के बाद से आज तक श्रेष्ठतम विचारक राजनीति के तुलनात्मक विश्लेषण में संलग्न रहे हैं।५

(3) राजनीति में सिद्वान्त निर्माण (**Theory Generation in Politics**) तुलनात्मक राजनीति का महत्व इस बात में भी परिलक्षित होता है कि तुलनात्मक अध्ययन से ही किसी विज्ञान

में सिद्धान्तों का निर्माण एवं नियमों का निरूपण सम्भव होता है। तुलनात्मक राजनीति प्रमाणित सामान्यीकरण तक पहुँचने में सहायता करती है।

मुख्यतः राजनीतिक सिद्धान्तों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- आदर्शीकृत सिद्धान्त (Normative Theory) या आनुभाविक सिद्धान्त (Empirical Theory) । आदर्शीकृत सिद्धान्त में राजनीतिक व्यवस्थाओं के बारे में कोई कल्पना मस्तिष्क में कर ली जाती है तथा फिर उस कल्पना को रचनात्मक रूप दिया जाता है। प्लेटो के दार्शनिक राजा के सिद्धान्त को इसी श्रेणी में रखा जाता है। इसके विपरीत आनुभाविक सिद्धान्तों में राजनीतिक व्यवहार के वास्तविक तथ्यों को समझकर सिद्धान्तों का निर्माण होता है। इसमें राजनीति वैज्ञानिक स्वयं तथ्यों के संकलन के लिए राजनीति व्यवहार के क्षेत्र में जाकर राजनीतिक व्यावहार का अवलोकन करता है।

तुलनात्मक राजनीति का अदर्शीकृत सिद्धान्तों के निर्माण में तो कोई योगदान नहीं हो सकता है परन्तु आनुभाविक सिद्धान्त तो केवल इसी के सहारे सम्भव होते हैं, क्योंकि यथार्थ राजनीतिक व्यवहार की तुलना से ही अनुभविक सिद्धान्त का निर्माण होता है। इसी से सामान्य तथ्यों को एकत्रित किया जाता है, यथार्थ सामान्य नियम बनते हैं तथा इनके आधार पर सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन सम्भव होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि तुलनात्मक राजनीति का महत्व राजनीतिक व्यवहार के सम्बन्ध में सिद्धान्त निर्माण में सर्वाधिक है।

(4) प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों की पुनः प्रमाणिकता (**Re-Validification of Existing Political Theories**) तुलनात्मक राजनीति का सर्वाधिक महत्व इस बात में निहित है कि इसी की सहायता से प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों का, चाहे वे आदर्शी सिद्धान्त हों या आनुभाविक सिद्धान्त, पुनः परीक्षण किया जाता है तथा उनकी प्रमाणिकता परखी जा सकती है। तुलनात्मक राजनीति प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों के पुनः परखने के लिए नवीन उपकरण व नवीनता युक्त विविध तथ्य उपलब्ध कराती है जिससे उनकी प्रमाणिकता का पुनः परीक्षण सम्भव हो सके। किसी भी विज्ञान में, यहाँ तक कि भौतिक विज्ञानों में भी परम सिद्धान्त (Absolute Theoies) नहीं हो सकते हैं। इस दृष्टि से राजनीति विज्ञान में प्रचलित सिद्धान्तों की प्रमाणिकता का पुनः परीक्षण एवं पुनः मूल्यांकन करना अनिवार्य है। यह कार्य तुलनात्मक राजनीति के माध्यम से ही सम्भव हैं

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि तुलनात्मक राजनीति का महत्व आधुनिक राजनीतिक विश्लेषण में बढ़ता जा रहा है। इससे हमें विभिन्न देशों की सरकारों एवं राजनीति के बारे में आनुभविक एवं वैज्ञानिक अध्ययन करने में सहायता मिलती है। इस बात का भी अध्ययन किया जा सकता है कि किसी देश में शासन पद्धति एवं विचारधारा का कितना अटूट सम्बन्ध है तुलनात्मक अध्ययन का महत्व लोकतान्त्रिक एवं लोक कल्याणकारी राज्य व्यवस्थाओं के कारण और भी बढ़ गया है। राज्य की हर गतिविधि का केन्द्र अब राजनीतिक व्यक्ति हो गया है। अतएव यह आवश्यक हो

जाता है कि इस प्रकार के सर्वव्यापी राजनीतिक व्यवहार को न केवल समझा ही जाये,वरनउसे सामान्य नियम के सन्दर्भ में देखा जाये, जिससे कि हर स्तर का राजनीतिक आचरण व्यवहारिक सीमाओं की परिधि में समझा जा सके। यही कारण है कि तुलनात्मक राजनीति का महत्व उत्तरोत्तर वृद्धि पर है।

1.5 तुलनात्मक राजनीति का विषय के रूप में विकास

राजनीतिक विज्ञान में तुलनात्मक रूप से अध्ययन की परंपरा नई नहीं है, परंतु इसका मुख्य ध्यान राजनीति के अध्ययन पर है। डॉ. सी.बी. गेना के अनुसार, तुलनात्मक राजनीति स्वतंत्र अनुशासन की अवस्था में अचानक पहुंचने का सीधा रास्ता नहीं है, और इसका विकास लंबा और उतार-चढ़ावों भरा है। इसलिए, तुलनात्मक राजनीति के विकास को समझने के लिए इसका इतिहास देखना महत्वपूर्ण है।

जी.के. राबर्टस ने तुलनात्मक राजनीति के विषय को तीन कालों में विभाजित किया:

(i) अपरिष्कृत (Unsophisticated)

(ii) परिष्कृत (Sophisticated)

(iii) प्रगामी रूप से परिष्कृत (Increasingly Sophisticated)

1. **अरस्तू का काल (The Phase of Aristotle):**

इस काल में तुलनात्मक राजनीति का विकास हुआ, जिसमें अरस्तू ने तुलनात्मक एवं आनुभविक विश्लेषण करते हुए विश्व के विभिन्न देशों के संविधानों का अध्ययन किया। उन्होंने सरकारों के वर्गीकरण को तुलनात्मक राजनीति का मौलिक आधार माना।

2. **मैक्यावेली एवं पुनर्जागरण काल:**

मैक्यावेली ने राजनीति विज्ञान में वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी पुस्तक "दि प्रिंस" में विभिन्न शासन व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया और राजनीतिक गतिविधियों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझाया।

3. **मॉण्टेस्क्यू एवं बुद्धिवाद का युग:**

मॉण्टेस्क्यू ने राजनीतिक व्यवस्थाओं का संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विश्लेषण किया और समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था और परिवेश के बीच संबंध को तुलनात्मक रूप से देखा। उन्होंने राजनीतिक गतिविधियों के यांत्रिकी सिद्धांतों को प्रतिपादित किया।

4. **इतिहासवाद का युग:**

इतिहासवाद तुलनात्मक राजनीति को उन्नीसवीं शताब्दी में लाया। इस युग में, इतिहासवादी दृष्टिकोण से कुछ विरोधी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुईं, जिनसे आधुनिक तुलनात्मक राजनीति को प्रेरणा मिली। इसके बावजूद, इस युग

का योगदान नकारात्मक रहा, परंतु इससे बिना, आधुनिक तुलनात्मक राजनीति को समझना मुश्किल है। हीगल और मार्क्स के योगदान से इतिहासवादी चिन्तन में विशेष महत्वपूर्ण बदलाव आया।

हीगल ने आत्मा के मोक्ष को मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य बताया और मानव विकास को नैतिकता की दिशा में रखा। उनके अनुसार, जो अंतिम विवेक है, वह पृथ्वी पर अवतार लेता है और राज्य भी इसी रूप में ईश्वर का पृथ्वी पर अवतरण है। **मार्क्स के** अनुसार, विकास का अंतिम उद्देश्य भौतिक दृष्टि से वर्गहीन और राज्यविहीन समाज है। इतिहासवादियों के द्वारा उठाए गए धर्म और संस्कृति के मुद्दे ने तुलनात्मक राजनीति को भी महत्वपूर्ण बना दिया।

5. राजनीतिक विकासवाद का युग:

राजनीतिक विकासवाद का युग इतिहासवाद के समय के साथ मेल खाता है, लेकिन ये दोनों ही में कुछ अंतर हैं। विकासवादी इतिहासवादी दृष्टिकोण की तरह नहीं थे और उन्होंने वास्तविक जीवन के तथ्यों के आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं का विकास समझने का प्रयास किया। राजनीतिक विकासवादी द्वारा सीमित समस्याओं पर ध्यान केंद्रित किया गया और विभिन्न समाजों में एक सी राजनीतिक संस्थाओं की उत्पत्ति को समझने का प्रयत्न किया।

सर हैनरी मैन ने "Ancient Law" (1861) और "Early History of Institutions" (1874) के माध्यम से राजनीतिक विकासवाद की नींव रखी। उन्होंने यह समझाने का प्रयास किया कि राज्य कुटुम्ब का वृहत्तर रूप है। अन्य विद्वानों ने भी इस दिशा में अपना योगदान दिया, जैसे कि मैक्स वेबर, पैरेटो, माइकेल्स, और मोस्का। इन विचारकों ने राजनीतिक प्रक्रियाओं और राजनीतिक संस्थाओं की संरचना को तुलनात्मक रूप से विश्लेषण किया और नए दृष्टिकोण प्रस्तुत किए।

6. तुलनात्मक राजनीति में युद्धोपरान्त विकास:

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद राजनीतिक व्यवस्थाओं में हुई उथल-पुथल ने तुलनात्मक राजनीति में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। इस विकास के कुछ मुख्य पहलुओं को हैरी एक्सटीन के अनुसार विवेचित किया गया था:

(i) वृहद राजनीतिक परिस्थितियों में पुनः रूचि: तुलनात्मक राजनीति में बड़ी राजनीतिक परिस्थितियों के पुनः अध्ययन में वृद्धि हुई।

(ii) राजनीतिक की विस्तृत और सामान्य अवधारणाओं में सुस्पष्टता: राजनीतिक की प्रकृति की विस्तृत और सामान्य अवधारणाओं पर ध्यान दिया गया और इसमें सुस्पष्टता लाई गई।

(iii) मध्य-स्तरीय सैद्धान्तिक समस्याओं के साधन पर ध्यान: कुछ प्रकार के राजनीतिक व्यवहार के निरूपकों से संबंधित मध्य-स्तरीय सैद्धान्तिक समस्याओं के समाधान में जोर दिया गया।

(iv) राजनीतिक संस्थाओं की शर्तों की खोज में रूचि: कुछ प्रकार की राजनीतिक संस्थाओं की अपेक्षित शर्तों की खोज में रूचि बढ़ी।

इसके बावजूद, बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों के कारण तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में कई कमियाँ उभरीं हैं:

(i) तुलनात्मक विश्लेषण के तकनीकी पक्ष का विकास नहीं हुआ: तकनीकी पक्ष में विकास नहीं हुआ।

(ii) कानूनी आधार पर ही तुलना करने का बल: राजनीतिक क्रियाकलापों को कानूनी आधार पर ही तुलना करने पर जोर दिया गया, और अनौपचारिक और व्यवहारिक पहलूओं को अनदेखा किया गया।

(iii) गैर-राजकीय संस्थाओं की अवहेलना: तुलनात्मक विश्लेषण में गैर-राजकीय संस्थाओं की अवहेलना की गई।

(iv) सुनिश्चित मानकों का अभाव: सुनिश्चित मानकों का अभाव बना रहा और तुलनाएँ पश्चात्य व्यवस्थाओं तक ही सीमित रहीं।

वस्तुतः, द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त तुलनात्मक राजनीति में विकास हुआ और इसमें नए दृष्टिकोण आए। राजनीतिक व्यवस्था के आनुभविक परिसर का विस्तार हुआ और यहां तक कि पश्चिमी लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्थाओं के परे भी जाकर अनुभव किया गया। साथ ही, विज्ञानिक परिशुद्धता में भी बढ़ोतरी हुई और व्यवहारवादी क्रांति ने इसमें योगदान किया। राजनीति के समाजिक परिवेश पर भी जोर दिया गया और इसमें नए दृष्टिकोणों का उपयोग किया गया। इस प्रकार, तुलनात्मक राजनीति में नए उपागमों का प्रयोग होने के साथ ही एक नया दिशा मिला और इसका अध्ययन एक अधिक वैज्ञानिक और व्यवस्थित दृष्टिकोण में होने लगा।

7. तुलनात्मक राजनीति की वर्तमान अवस्था (Comparative Politics Today):

द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त लगभग एक दशक तक विकसित राजनीतिक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन सही रूप में नहीं किया गया था। नवीन राजनीतिक व्यवस्थाओं के आंतरिक संरचनाओं पर पहले अध्ययन ने ऐंस्टीन और ऐप्टर द्वारा कहा गया है कि "प्रथम अध्ययन तुलनात्मक न होकर नए राजनीतिक व्यवस्थाओं के आंतरिक संरचनाओं पर प्रकाश डालने वाले रहे हैं।"

कोलमैन, ऐप्टर, जार्ज मेकाहिन, माइरन वीनर, लूसियन डब्ल्यू पाई, कीथ कैलार्ड, लियोनार्ड बिंडर, द्वारा किए गए कई अध्ययन तुलनात्मक राजनीति के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। आधुनिक समय में तुलनात्मक राजनीति के विद्वानों में डेविड ईस्टन, आमण्ड, कोलमैन, कार्ल डायच, जी.बी. पावेल, हेराल्ड लासवेल, राबर्ट डाल्ह, शिल्स, डेविड ऐप्टर, हैरी एक्सटीन, इत्यादि शामिल हैं।

डेविड ईस्टन, आमण्ड, और डायच ने तुलनात्मक विश्लेषण को एक व्यापक इकाई के रूप में सिद्धांत की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इस सिद्धांत के माध्यम से आज न केवल सामाजिक व्यवस्थाओं की ही तुलना की जा सकती है, बल्कि राजनीतिक व्यवस्था के सभी पहलुओं को सम्पूर्णता से समझा जा सकता है।

वर्तमान युग में तुलनात्मक राजनीति के अंतर्गत अनेक शोध तकनीकों, संकल्पनाओं, और सिद्धान्तों का विकास हुआ है। व्यवस्थापिकाओं पर लोवेन्थाल और यंग, राजनीतिक दलों पर डुवरगन-रैने और मैकेन्जी, राजनीतिक समाजवाद पर डेविड ईस्टन, और अभिजन के अध्ययन पर राबर्ट डहल, राजनीतिक संचार पर कार्ल डायच आदि के शोध उच्चकोटि के माने जाते हैं। तुलनात्मक राजनीति के विकास में ऐप्टर, रोस्टोव, और लूसियन पाई के अध्ययन का महत्वपूर्ण योगदान है। सैमुएल हंटिंग्टन, फ्रेडरिक फे, जैसे विद्वानों ने विकास के सन्दर्भ में सैन्य व्यवस्थाओं का अध्ययन किया है।

1.6 तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति

तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति के सन्दर्भ में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। यही कारण है कि आज भी इसकी प्रकृति का निर्धारण सरल नहीं है, परन्तु इस सन्दर्भ में निम्न तथ्य उल्लेखनीय है:22

(i)पश्चिमी, गैर-पश्चिमी तथा साम्यवादी देशों की संस्थाओं का तुलनात्मक विश्लेषण।

(ii)विविध राजनीतिक संरचनाओं के अतिरिक्त अराजनीतिक संरचनाओं तथा उनके प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण।

(iii) राजनीतिक संस्थाओं की अपेक्षा मानव के राजनीतिक व्यवहार के अध्ययन पर अधिक बल।

(iv) राजनीतिक क्रियाकलापों, राजनीतिक प्रक्रियाओं एवं सत्ता का तुलनात्मक अध्ययन।

(v) विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं संस्थाओं का तुलनात्मक विश्लेषण।

यदि हम विभिन्न विद्वानों के तुलनात्मक दृष्टिकोणों की समीक्षा करें तो तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण पाये जाते है-

(1) तुलनात्मक राजनीतिक लम्बात्मक तुलना के रूप में (Comparative Politics as a vertical Study): इस विचार के समर्थकों के अनुसार तुलनात्मक रानीति एक ही देश में स्थित विभिन्न सरकारों व उनको प्रभावित करने वाले राजनीतिक व्यवहारों का तुलनातमक विश्लेषण एवं अध्ययन है। प्रत्येक राज्य में कई स्तरों पर सरकारें होती हैं- राष्ट्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकार एवं स्थानीय सरकार। इस दृष्टिकोण के अनुसार तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध इस प्रकार की एक ही देश में स्थित विभिन्न सरकारों- राष्ट्रीय, प्रान्तीय एवं स्थानीय की आपस में तुलना से है। तुलनात्मक राजनीति एक ही देश की विभिन्न सरकारों की लम्बात्मक (Vertical) तुलना है।

वस्तुतः यह दृष्टिकोण तर्कसंगत नहीं है। राष्ट्रीय सरकार तथा स्थानीय सरकारों के मध्य पायी जाने वाली तुलना सतही ही है। आर्थिक साधनों, नियमों एवं कानूनों तथा शक्ति के संसाधनों की दृष्टि से देखें तो दोनों में काफी अन्तर पाया जाता है। इस लिए तुलनात्मक राजनीति में एक ही देश की विभिन्न स्तरीय सरकारों का तुलनात्मक विश्लेषण सम्भव

दिखायी देते हुए भी सामान्यीकरण सकी सम्भावनाएँ नहीं रखता। अतएवं यह कहा जा सकता है। कि तुलनात्मक राजनीति की यह धारणा अब मान्य नहीं है तथा है तथा इस आधार पर तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति का निर्धारण करना सम्भव नहीं प्रतीत होता।

(2) तुलनात्मक राजनीति अम्बरान्तीय तुलना के रूप में (Comparative Politics as a Horizantal Study): तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति सम्बन्धी दूसरी धारण के अनुसार यह राष्ट्रीय सरकारों का अम्बरान्तीय Horizantal) तुलनात्मक अध्ययन है। अधिकांश राजनीति वैज्ञानिक भी इससे सहमति रखते हैं। इस प्रकार की तुलना दो प्रकार से सम्भव है। प्रथम तो यह है कि यह तुलना एक ही देश के विभिन्न कालों में विद्यमान राष्ट्रीय सरकारों की आपस में हो सकती है। द्वितीय आज समपूर्ण विश्व में विद्यमान राष्ट्रीय सरकारों में हो सकती है।

एक ही देश में विद्यमान राष्ट्रीय सरकारों की ऐतिहासिक तुलना तुलनात्मक राजनीति में होनी चाहिए। वर्तमान की राजनीति संथाओं प्रक्रियाओं तथा रानीतिक व्यवहारों का तुलनात्मक विश्लेषण अतीत के ही सन्दर्भ में किया जा सकता है। जैसे - भारत के सन्दर्भ में यह तुलना प्राचीन भारत की राष्ट्रीय सरकारों मध्यकालीन भारत, ब्रिटिश भारत की सरकारों तथा आधुनिक स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय सरकारों में की जा सकती है। इसी प्रकार स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय सरकारों की तुलना एक ही शासनकाल के विभिन्न पहलुओं के सन्दर्भ में की जा सकती है। जैसे, नेहरू काल (1942-1964) अथवा इन्दिरा गाँधी (1966-1977) तथा (1980-1984)। राष्ट्रीय सरकारों की यह समस्तरीय तुलना अवश्य है परन्तु ऐतिहासिक सन्दर्भ में की जा सकती है। परन्तु इसके लिए यह जरूरी है कि हर काल की राष्ट्रीय सरकार के बारे में समान जानकरी एवं तथ्य उपलब्ध हों।

1.7 तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र (Scope of Ccomparative Politics)

तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र अभी भी सीमांकन की अवस्था में है इसके विषय-क्षेत्र की निर्माण अवस्था के कारण ही जी. के. राबर्टस ने यहाँ तक कहा कि ''तुलनात्मक राजनीति या तो सब कुछ है अथवा कुछ भी नहीं है। अतएवं तुलनात्मक राजनीति के विषय-क्षेत्र की प्रमुख समस्या बन जाती है कि इसके अध्ययन क्षेत्र में क्या-क्या सम्मिलित किया जाये तथा क्या-क्या छोड़ा जाये? साथ ही यह भी प्रश्न आता है कि राजनीति सम्बन्धी किसी पहलू को इसके अध्ययन में सम्मिलित करने या न करने का आधार क्या हो? इस सम्बन्ध में हैरी एक्सटीन के विचार सर्वोपयुक्त हैं। सबसे अधिक आधारभूत बात यह है कि आज यह एक ऐसा विषय है जिसमें अत्यधिक विवाद है, क्योंकि यह संक्रमण स्थिति में है- एक प्रकार की विश्लेषण शैली से दूसरे प्रकार की शैली में प्रस्थान कर रहा है।

इससे स्पष्ट है कि तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति एवं परिभाषा की भाँति इसके विषय-क्षेत्र पर भी परम्परावादी एवं आधुनिक विद्वानों में मतभेद है। जीन ब्लोंडेल ने इसे दो बातों से सम्बन्धित बताया हैः

(1) सीमा सम्बन्धी विवाद

(2) मानकों तथा व्यवहार के पारस्परिक सम्बन्धों सम्बन्धी विवाद।

(1) सीमा सम्बन्धी विवाद (Controversy over the Boundary): सभी राजनीति वैज्ञानिक इस बात पर सहमत हैं कि तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राष्ट्रीय सरकारों से है। इसमें भी न केवल सरकारी ढाँचे बल्कि सरकारी क्रियाकलापों एवं गैर राजनीतिक संस्थाओं के राजनीतिक कार्यो का भी अध्ययन आवश्यक रूप से सम्मिलित रहता है। परन्तु यहाँ भी सरकारी क्रियाकलापों की दृष्टि से दो दृष्टिकोण प्रचलित हैं- कानूनी दृष्टिकोण एवं व्यवहारिक दृष्टिकोण।

(2) मानकों एवं व्यवहार के सम्बन्धों का विवाद (Contraresy over the Relationships of Norms and Behaviour): तुलनात्मक राजनीति का विषय क्षेत्र सम्बन्धी दूसरा विवाद अधिक जटिलताओं का जनक है। मानक की अभिव्यक्ति कानून प्रक्रियाओं एवं नियमों में होती है, परन्तु राजनीतिक व्यवहार कई बार इन कानूनों के प्रतिकूल रहता है। यही तुलनात्मक अध्ययन में पेचीदगियाँ उत्पन्न करता है। अतएवं तुलनात्मक राजनीति में यह भी देखा जाना चाहिए कि राजनीति व्यवहार मानकों के अनुकूल है अथवा प्रतिकूल है। कहने का तात्पर्य यह है कि राजनीति क्रिया से सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा मानकों के अभिव्यक्त कानूनों का कितना पालन व कितना उल्लंघन होता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मानक एवं व्यवहार दोनों ही गतिशील होते हैं। इनमें साम्य व गतिरोध दोनों ही हो सकता है। सामान्यतया इनमें पारस्परिकता रहती है तथा दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते है। अतएवं तुलनात्मक राजनीति में मानक एवं व्यवहार के राजनीतिक पहलुओं का अध्ययन भी सम्मिलित होना चाहिए। इस सम्बन्ध में जीन ब्लोंडेल ने लिखा है,'' जबकि आधारभूत दृष्टि से तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध सरकार की संरचना से होना चाहिए पर साथ ही साथ उसका सम्बन्ध व्यवहार में स्फुटित प्रतिमानों एवं आचरणों से भी होना चाहिए, क्योंकि वे सरकार की जीवित संरचना का अभिन्न अंग हैं।''30

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन क्षेत्र के बारे में उपरोक्त विवादों के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि इसमें न केवल शासन तन्त्रों एवं संगठनों की तुलना की जाती है तथा न ही मानकों एवं व्यवहारों के सम्बन्धों का विश्लेषण मात्र ही किया जाता हैवरनइसके क्षेत्र में इन दोनों का ही समावेश आवश्यक है। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि तुलनात्मक राजनीति के विषय-क्षेत्र में विभिन्न राजनीति व्यवस्थाओं की शासन संरचनाओं शासन व्यवहार प्रतिमानों व गैर-राजकीय संस्थाओं के अध्ययन कानून निर्माण, कानून प्रयोग तथा विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं के अंगों से सम्बन्धित निर्णयों तथा राजनीतिक दलों व दबाव समूहों जैसे संविधानातिरिक्त अभिकरणों के अध्ययन तक ही सीमित नहीं वरन उससे आगे बढ़ता है। एम. कर्टिस के अनुसार, ''राजनीतिक संस्थाओं तथा राजनीति व्यवहार की कार्य-प्रणाली में महत्वपूर्ण नियमितताओं, समानताओं एवं असमानताओं से तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध है।31

अभ्यास प्रश्न:

1. तुलनात्मक राजनीति का प्रमुख ध्यान क्या है?

A) आर्थिक विश्लेषण, B) विभिन्न देशों के राजनीतिक प्रणालियों का अध्ययन, C) पर्यावरण नीतियाँ

D) ऐतिहासिक घटनाएँ

2. तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति में क्या शामिल है?

A) केवल एक राजनीतिक प्रणाली का अध्ययन
B) एक तुलनात्मक दृष्टिकोण से राजनीतिक घटनाओं का विश्लेषण

C) राजनीतिक विचारधाराओं को नजरअंदाज करना

D) केवल घरेलू नीतियों पर केंद्रित होना

1.8 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के उपरान्त यह स्पष्ट है जैसा कि राल्फ ब्रेबन्ती ने तुलनात्मक की व्यापक परिभाषा की है, ''तुलनात्मक राजनीति सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में उन तत्वों की पहचान व व्याख्या है जो राजनीतिक कार्यो व उनके संस्थागत प्रकाशन को प्रभावित करते हैं।'' माइकेल कर्टिस के अनुसार ''तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीतिक संस्थाओं की कार्यविधिव राजनीति व्यवहार की महत्वपूर्ण निरन्तरताओं, समानताओं व असमानताओं से है।'' आमण्ड एवं पावेल के अनुसार, ''तुलनात्मक राजनीति के तीन मौलिक मंतव्य हैं- प्रथम पश्चिमी तथा गैर-पश्चिमी देशों की संस्थाओं का एक साथ विश्लेषण, द्वितीय, राजनीतिक संस्थाओं का क्रमबद्व ढंग से अध्ययन करना एवं तृतीय तुलनात्मक राजनीतिक सिद्धान्तों में सम्बन्ध स्थापित करना।''

तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में राजनीति शब्द के तीन लक्ष्यार्थ हैं राजनीतिक क्रियाकलाप, राजनीतिक प्रक्रिया तथा राजनीतिक सत्ता। राजनीतिक क्रियाकलाप के अन्तर्गत वे प्रयास आते हैं जिससे सत्ता के लिए संघर्षरत लोग अपने हितों की यथासम्भव रक्षा कर सकें। राजनीतिक प्रक्रिया के अर्न्तगत उन सभी अभिकरणों की भूमिका आ जाती है जो निर्णय-निर्माण (Decision Making) प्रक्रिया से संग्लन हैं। इसी प्रकार सत्ता एक प्रकार का मानव सम्बन्ध है जिसके माध्यम से राजनीतिक प्रधिकार कुछ नीतियों के बारे में निर्णय करता है जिनका अनुपालन अन्य लोगों द्वारा करना आवश्यक होता है।

इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति, राजनीति संस्थाओं तथा राजनीतिक व्यवहार की समानताओं-असमानताओं से सम्बद्ध है। तुलनात्मक राजनीति में एक स्वतत्र अनुशासन के लिए आवश्यक सुस्पष्ट एवं निश्चित विषय-क्षेत्र है |

1.9 शब्दावली

राजनीतिक विचारधारा: एक व्यक्ति या समूह के राजनीतिक विचारों और दृष्टिकोणों का संग्रह।

वैश्विक शासन: वैश्विक स्तर पर संगठित स्थायी शासन की प्रक्रिया या प्रणाली।

राजनीतिक गतिविधियाँ: राजनीतिक प्रक्रियाओं और परिवर्तनों का अध्ययन।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. B, 2. B

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Jean Blandel, Comparative Government : A Reader (Eds), Macmillan, London, 1969, p. Xi.

2 डॉ. सी. बी. गेना तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं, पृ. 4-14 विकास पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली (1978

3. Ward and Macridis, Political Systems: Asia, Eaglewood Cliffs, New Jersey, (1968), p.5.

4.Michael Curtis, Comparative Govt. and Politics, Harper and Row London, 1968, p. 6.

5. Peter H. Merkel, Modern comprative Politics, Holt Rinehart, Winstan, New York, 1970, p. 1

6. G.K. Roberts, Comparative Politics Today Government and Opposition, Vol. VII No. 1 Witnter 1972, pp. 38-39.

7. Jean Blondel, An Introduction to Comparative Government, We Uliedenfield and Nicolson London, 1969. p. 6

8. Edward A. Freeman, Why Compare Comparative Politics, 1973, pp., 19-35

9. R.C. Macridis, comparative Government, 1967, p. 209.

10. G.K. Roberts, What is comparative Politics Macmillan, 1972, p. 7.

11. Ralph Braibanti, 'Comparative Government and Politics, Harper and Row London; 1968, p.6

12. Michael Curtis, comparative Government and Politics, Harper and Row, London, 1968, p. 6.

13. G. A. Almond and Powell, Comparative Politics: A Developmental Approach, Boston, (1966), p. 2-5.

14.डॉ. सी.बी. गेना, पूर्वोक्त, p.60.

15. G.K Roberts, Op. Cit. p. 45

16. Eckstein and After (Eds.), Comparative Politics : A Reader, Free press, New york, 193,p.6.

17. डॉ. सी.बी. गेना पूर्वोक्त p.65

18.Eckstein and After (Eds.), Comparative Politics : A Reader, Free, Press, New York, (1963),p.12.

19-डॉ. सी.बी. गेना पूर्वोक्त] p.78.

20. Eckstein and Apter, Op cit, p. 12.

21.Sidney Verba, "Dilemmas in Comparative Research, World Politics Vol. XX, 1963-68 ,p-III.

22.Jean Blondel, "An Introduction to Cocparative Government", Weilden Field and Nicholson London,1969,p. Blandel.

23.Jean Blaondel, An Introduction to Comparative Government, London, 1969.p.6.

24.डॉ. सी.बी. गेना पूर्वोक्त] p.40.

25. G.K. Robers, Comparative Politics, Today, p.6.

26.Eckstein and Apter, Op, cit., p.6.

27.David Eastan, The Political System, New York, (1953), p.129.

28. Jean Blondel, op. cit. p.6.

29.Jean Blondel, Ibid p.6.

30.Jean Bolndel, Ibid p,11.

31.Michacl Curtis, Op.cit. p. 5.

32.S.E. Finer, Comparative Government, Allen have, London, 1970, p.40.

1.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. S.E. Finer, Comparative Government, Allen have, London

2. David Eastan, The Political System, New York,

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.तुलनात्मक राजनीति के अर्थ एवं प्रकृति की विवेचना कीजिये |

इकाई -2 तुलनात्मक राजनीति के विभिन्न उपागम : परम्परागत, आधुनिक

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागम

2.4 तुलनात्मक राजनीति का परम्परागत उपागम

2.5 तुलनात्मक राजनीति का परम्परागत उपागम की सामान्य विशेषताओं

2.6 परम्परागत तुलनात्मक राजनीति की आलोचना

2.7 तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागम

2.8 आधुनिक उपागम का विकास

2.9 आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की विशेषताएं

2.10 आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की आलोचना

2.11 सारांश

2.12 शब्दावली

2.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.15 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.16 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन प्रारम्भ से ही राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत विभिन्न संकल्पनाओं प्रत्ययों एवं वास्तविकताओं का विश्लेषण रहा है। ऐक्सटीन तथा ऐप्टर के अनुसार, ''राजनीति विज्ञान में राजनीतिक संस्थाओं, संविधानों तथा सरकारों के तुलनात्मक अध्ययन का अत्यधिक लम्बा एवं गौरवमय अतीत है।''1 तुलनात्मक राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन अब तक केवल नाम से ही तुलनात्मक रहा है। एक लम्बे समय तक यह केवल विदेशी शासनों, उनके ढाँचे तथा औपचारिक संगठन का ऐतिहासिक, वर्णनात्मक तथा कानूनी तौर से अध्ययन रहा है जब कि तुलनात्मक राजनीति को सिद्धान्तों, ढाँचों तथा वास्तविक व्यवहारों से अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहिए।''2

राजनीति विज्ञान में तुलनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण का श्रेय सर्वप्रथम अरस्तू को ही जाता है जिन्होंने तत्कालीन 158 यूनानी नगर राज्यों के संविधानों का तुलनात्मक विश्लेषण किया था। इस विश्लेषण में अरस्तू द्वारा प्रयुक्त मापदण्ड आज भी तुलनात्मक राजनीति में प्रासंगिक माने जाते हैं।

परम्परागत तुलनात्मक अध्ययन राजनीतिक विश्लेषण की दृष्टि से अधिक सहायक न रह सके। यही कारण है कि राजनीतिक वास्तवितकताओं, संस्थाओं एवं व्यवहारों को समझने के लिए नये-नये उपागमों की खोज की जाने लगी। इन नये उपागमों को आधुनिक उपागमों की संज्ञा दी जाने लगी।

एक राजनीतिक व्यवस्था में संरचनात्मक तथा कार्यात्मक दोनों ही दृष्टि से अनेक प्रवृतियाँ उभरकर सामने आती हैं। इसके अन्तर्गत सरकार के विभिन्न अंगों-कार्यपालिका, व्यवस्थापिका न्यायपालिका, नौकरशाही इत्यादि का विश्लेषण होता है। दूसरी ओर इसमें राजनीतिक दल दबाव समूह एवं विभिन्न हित समूह होते हैं। साथ ही साथ इसमें मूल्यों एवं विश्वासों का भी योगदान होता है जो समाज के आधार स्तम्भ के रूप में कार्य करते हैं। इस दृष्टि से 20 वीं सदी में राजनीति विज्ञान के अध्ययन एवं विश्लेषण के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। इस दृष्टि से तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में अनेक आधुनिक उपागम उभरकर सामने आये हैं तथा अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से सराहनीय योगदान दिया है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

- तुलनात्मक राजनीति का परम्परागत उपागम के बारे में जान सकेंगे |
- तुलनात्मक राजनीति का परम्परागत उपागम की सामान्य विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे|
- तुलनात्मक राजनीति का आधुनिक उपागम के बारे में जान सकेंगे |

2.3 तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागम

अरस्तू के बाद अनेक राजनीतिक विचारकों ने राजनीतिक संस्थाओं व व्यवस्थाओं के अध्ययन में तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया। इनमें सिसरो, पालिबियस, मैक्यावली मॉण्टेस्क्यू मार्क्स, मिल तथा बेजहाट इत्यादि विद्वानों का नाम महत्वपूर्ण है जिन्होंने विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया।

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागमों का अध्ययन करने से पूर्व हमें दो बातों का ध्यान रखना होगा।

1.राजनीति वैज्ञानिक इस प्रश्न का उत्तर प्रारम्भ से ही ढूँढ़ने में व्यस्त हैं, क्योंकि एक प्रकार की राजनीतिक संस्थाएँ एक राजनीतिक व्यवस्था में सफल रहती हैं तथा अन्य राजनीतिक व्यवस्था में असफल हो जाती है। यह जानने के लिए विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन ही काफी नहीं है, इसके लिए विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण भी आवश्यक है। इसके द्वारा ही किसी राजनीतिक व्यवस्था एवं संस्था की श्रेष्ठता का पता चलता है। यही कारण है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन राजनीतिक व्यवस्थाओं के विश्लेषण की प्रमुख पद्धति बनता जा रहा है।

2.पिछले सौ वर्षों के भीतर विशेषकर, द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन क्षेत्र में बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों के कारण क्रान्तिकारी परिर्वतन आ गये। यही कारण है कि अध्ययन के पुराने दृष्टिकोण निरर्थक होते चले गये तथा विश्लेषण की नई तकनीकों का उदय हुआ। नई तकनीकों के उदय के उपरान्त तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागमन सामने आये हैं।

अतएवं यह कहा जा सकता है कि तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत एवं आधुनिक उपागमों में उपरोक्त दृष्टिकोण के आधार पर पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। इस प्रकार दोनों ही प्रकार के उपागमों की प्रकृति को समझने के लिए हमें इनका विस्तार से विवेचना करनी होगी।

2.4 तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत उपागम

तुलनात्मक संस्थाओं एवं सरकारों के प्रारम्भिक प्रयासों को परम्परागत तुलनात्मक राजनीति का नाम दिया जाता है। जिन विद्वानों के राजनीतिक अध्ययनों को परम्परागत परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित किया जाता है उनमें सर अर्नेस्ट बार्कर, हेराल्ड, जे. लास्की, कार्ल जे फ्रेडरिक व हरमन फाइनर प्रमुख हैं। इन लेखकों ने तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करके मुख्यतः पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया। इसके अर्न्तगत भी उन्होंने मुख्यतया लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं का ही अध्ययन किया तथा अलोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं से अपने आपको अलग रखा। इस दृष्टि से परम्परागत तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन क्षेत्र अत्यन्त सीमित एवं संकुचित था। इस दृष्टिकोण को भली-भाँति समझने के लिए इसकी सामान्य विशेषताओं को समझना होगा।

मेक्रेडीज ने तुलनात्मक राजनीति की पाँच विशेषताएँ बतलाई हैं:

(1) प्रधानतः अतुलनात्मक (2) प्रधानतः वर्णनात्मक (3) प्रधानतः संकीर्ण (4) प्रधानतः स्थिर (5) प्रधानतः प्रबन्धकीय।

2.5 तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत उपागम की सामान्य विशेषताएँ

परम्परागत तुलनात्मक राजनीति की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है।

(1) प्रधानतः अतुलनात्मक (Essentially Non-comparative) राय सी. मैक्रेडीज ने परम्परागत तुलनात्मक राजनीति अध्ययनों को मूलतः अतुलनात्मक बताया है। ये सभी अध्ययन एक दो देशों के ही अध्ययन थे। इनमें अध्ययन की इकाई किसी एक देश का संविधान होता था। उदाहरण के लिए ऑग एवं जिंक ने 'Governments of Europe' नामक कृति में ब्रिटेन, जर्मनी फ्राँस, इटली इत्यादि राष्ट्रों की संवैधानिक व्यवस्थाओं का ही अध्ययन किया था। इस अध्ययन का सम्बन्ध सामानान्तर संस्थाओं के अध्ययन तक सीमित रहा, जैसे- ब्रिटेन, फ्राँस तथा अमेरिका की व्यवस्थापिकाओं या कार्यपालिकाओं की तुलना करना। इसके साथ ही साथ यह अध्ययन अनेक देशों के संवैधानिक आधारों के वर्णन में ही व्यस्त रहे। इन लेखकों ने अलग-अलग राज्यों वे संवैधानिक व्यवस्थाओं का पृथक्-पृथक् अध्ययन भी किया। जैसे ब्रिटेन की राजनीतिक संस्थाओं का भी वर्णन करके उनकी फ्राँस की राजनीतिक संस्थाओं के विवेचन के साथ तुलना करना। वास्तव में इस प्रकार का वर्णन भी सही अर्थो में तुलनात्मक नहीं था तथा इसलिए मैक्रेडीज का कहना है, ''अब तक के तुलनात्मक अध्ययन केवल नाम से ही तुलनात्मक थे।[7]

(2) प्रधानत: वर्णनात्मक (**(Essentially Descriptive)**)परम्परागत तुलनात्मक अध्ययन समसया समाधानात्मक या विश्लेषणात्मक न होकर वर्णनात्मक रहे हैं। परम्परागत विद्वानों की मान्यता थी कि संस्थाओं का वर्णन उनकी व्याख्या के लिए पर्याप्त है। इसलिए इन विद्वानों ने शासन व्यवस्थाओं का वर्णन करके विभिन्न शासनतन्त्रों के मध्य समानताओं एवं असमानताओं का स्पष्टीकरण ही किया। परन्तु इस बात की परवाह नहीं की कि यह समानताएँ या असमानताएँ किन कारणों से हैं? वस्तुतः वे राजनीतिक व्यवस्थाओं सरकारों के स्वरूपों एवं संस्थाओं के वर्णन से आगे नहीं बढ़े। इस दृष्टि से जेम्स टी. शाटवले की कृति 'Government of Continental Europe'प्रमुख हैं इस दृष्टि से परम्परागत तुलनात्मक राजनीति वर्णनात्मक ही रही है।

(3) प्रधानतः संकीर्ण (**(Essentially Parochial)**) परम्परागत तुलनात्मक अध्ययन प्रधानतः पाश्चात्य राज्यों की शासन व्यवस्थाओं की संकीर्ण परिधि में ही बँधे रहे। सांस्कृतिक या भाषीय समानता के आधार पर ही यह लेखक एक राज्य से आगे बढ़कर दूसरे या तीसरे राज्य को सम्मिलित अध्ययन के लिए लेते थे। मुख्यतया ये अध्ययन यूरोप एवं अमेरिका तक ही सीमित रहे। ऐक्सटीन व ऐप्टर ने इस दृष्टिकोण का सार इन शब्दों में व्यक्त किया है, ''परम्परागत

दृष्टिकोण पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं तक सीमित रहा तथा प्रमुखतया एक संस्कृति संरूपण या समूह का ही इसमें अध्ययन का ही इसमें अध्ययन किया गया।[8]

(4) प्रधानतः स्थिर (**(Essentially Static) :**) परम्परागत उपागम में उन गतिशील कारकों का अध्ययन नहीं किया गया, जोकि विविध राजनीतिक संस्थाओं की उत्पत्ति तथा विकास का आधार होते हैं। परम्परागत विद्वानों ने कानूनी सन्दर्भ में राजनीतिक व्यवस्थाओं अध्ययन किया तथा उन तत्वों की अवहेलना की जो राजनीतिक परिवर्तनों तथा विकास की समस्याओं एवं दिशाओं से सम्बन्धित होते हैं। उन्होंने उन परिस्थितियों एवं तत्वों का अध्ययन करना आवश्यक नहीं समझा जो किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में संसदीय प्रणाली अथवा अध्यक्षीय प्रणाली को सफल अथवा असफल बनाती है।

(5) प्रधानतः प्रबन्धकीय (**(ESSENTIALLY MONOGRAPHIC STUDIES) :**) तुलनात्मक शासन से सम्बन्धित अधिकांश परम्परागत रचनायें लम्बे निबन्धों जैसी हैं। इन रचनाओं में किसी एक शासन व्यवस्था की संस्था अथवा उस व्यवस्था में किसी विशिष्ट संस्था का विवेचन किया गया है। जॉन मेरियट, आर्थर कीथ, जेम्स ब्राइस, सर आइवर जेनिंग्स, हेराल्ड लास्की, ए., वी. डायसी, राब्सन, वुडरो विल्सन, इत्यादि लेखकों की रचनाओं को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। इन विद्वानों के अध्ययन विषयों में, अमेरिका राष्ट्रपति, ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था, ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल, अमेरिकी काँग्रेसी, फ्रेंच प्रशासकीय कानून, इत्यादि हैं।

(6) प्रधानतः औपचारिक संस्थागत अध्ययन (**(Excessively Formal Institutional) :**) तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत अध्ययनों में राजनीतिक संस्थाओ का औपचारिक तथा कानूनी अध्ययन किया गया था। डायसी, मुनरो, ऑग एवं जिंक जैसे विद्वानों ने अपने अध्ययन औपचारिक संस्थाओं के विवेचन तक ही सीमित रखे। राय मैक्रेडीज के अनुसार, ''उन्होंने इस बात को जानने का प्रयत्न नहीं किया कि संविधान एवं राजनीतिक संस्थाएँ व्यवहार में किस प्रकार कार्य करती हैं।''[9]

2.6 परम्परागत तुलनात्मक राजनीति की आलोचना (CRITICISM OF TRADITIONAL COMPARATIVE POLITICS)

परम्परागत तुलनात्मक राजनीति अपनी सीमाओं के कारण अनेक विसंगतियों का शिकार हुई है। मात्र लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं के अध्ययन के सहारे तुलनात्मक विश्लेषण सम्भव नहीं हो सकता। यही कारण है कि समय बीतने के साथ यह उपागम राजनीतिक व्यवहार की गतिशीलता को समझने में असमर्थ रहा तथा इसकी कमियाँ उजागर हो गयी। परम्परागत तुलनात्मक राजनीति की आलोचना निम्न आधारों पर की जाती है:

(1) सही अर्थो में तुलना नहीं (Non-comparative in Real Terms) : परम्परागत अध्ययनों में अर्थपूर्ण तुलनाओं का प्रयास नहीं किया गया है। इसमें मात्र शासन प्रणालियों अथवा संस्थाओं के ऊपर ढाँचे की समानताओं एवं असमानताओं की तुलना की गयी अथवा अमेरिकी राष्ट्रपति की तुलना भारतीय प्रधानमन्त्री से की गयी जिसे सही

अर्थो में तुलना नहीं कहा जा सकता। आमण्ड एवं पावेल के अनुसार, '' परम्परागत तुलनात्मक राजनीति, अलग-अलग राजनीतिक व्यवस्थाओं की विशिष्ट विशेषताओं पर प्रकाश डालने तक ही सीमित रही तथा व्यवस्थित तुलनात्मक विश्लेषण नाम मात्र का ही था।''[10]

(2) अराजनीतिक व्यवहार की उपेक्षा (Lgnoring Non-Political Behaviour) :तुलनात्मक राजनीति का दूसरा आक्षेप यह लगाया जाता है कि इसमें राजनीतिक व्यवहार के अराजनीतिक तत्वों की उपेक्षा की गयी। आमण्ड एवं पावेल के अनुसार ''इनका मुख्य जोर संस्थाओं, कानूनों, विधियों व राजनीतिक विचारों तथा विचारधाराओं पर ही था तथा उनके कार्य, अन्तःक्रिया व्यवहार व उपलब्धियों की उपेक्षा की गयी।''[12]

(3) **विश्लेषण का अभाव** (Lack of analysis) : परम्परागत अध्ययन न तो विश्लेषणात्मक, थे तथा न ही व्याख्यात्मक वरन केवल वर्णनात्मक थे। वे राजनीतिक संस्थाओं के मूल में अन्तर्निहित राजनीतिक प्रक्रियाओं, दबाव व हित समूहों तथा व्यवहार को अपने अध्ययन में सम्मिलित नहीं करते जिनके माध्यम से वास्तव में तुलना सम्भव है। यह भी एक विवादास्पद प्रश्न है कि फ्रांस रूस, ब्रिटेन, अमेरिका या स्विटजरलैण्ड की ही व्यवस्था को क्यों अध्ययन के लिए चुना गया? परम्परागत तुलनात्मक अध्ययनों में जो कुछ तुलना की गयी है, उनमें संघीय एवं एकात्मक व्यवस्था, संसदात्मक एवं अध्यक्षात्मक व्यवस्था, प्रजातन्त्र व अधिनायकवाद आदि के गुण-दोषों तथा उनके बीच समानताओं एवं असमानताओं को दर्शाया गया है।

(4) **संकुचित अध्ययन** (Norrow-minded Study Precision) : परम्परागत तुलनात्मक अध्ययन संकुचित कहे जाते हैं। परम्परागत लेखकों द्वारा अलोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं गैर-पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं, राजनीतिक व्यवस्थाओं के अराजनीतिक आधारों तथा राजनीतिक व्यवहारों की अवहेलना की गई है। तुलनात्मक राजनीति पर लिखी गयी अधिकांश पुस्तकों में लोकतान्त्रिक व विशेष तौर से पश्चिमी यूरोपीय संस्थाओं का ही वर्णन है।

(5) **अध्ययन पद्धतियों के परिष्करण का आभाव (Lack of Sophisticated Study Methods) :**परम्परागत तुलनात्मक अध्ययनों में ऐतिहासिक तथा वैधानिक पद्धति पर जोर दिया गया है। इन पद्धतियों की सीमाओं के उभरने पर भी नयी विश्लेषण प्रविधियों के प्रयोग का प्रयत्न नहीं किया गया। यही कारण है कि इसमें अन्तरअनुशासनात्मक विश्लेषण का प्रयोग सम्भव नहीं हो पाया। इसका परिणाम यह हुआ है कि इसमें अध्ययन पद्धतियों का सही ढंग से परिष्करण नहीं हो पाया।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि परम्परागत तुलनात्मक राजनीति में कई कमियाँ थीं। राज्य की प्रकृति, क्षेत्र एवं कार्यो में वृद्वि ने इस समस्या को और बढ़ा दिया है। राज्य के कार्यो में आये बदलावों ने सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को विश्लेषण की इकाई बना दिया है। इस दृष्टि से तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र भी बदल गया है। इसके लिए विभिन्न नई पद्धतियों एवं आयामों का विश्लेषण किया जाने लगा है। इनका अध्ययन अगले अध्याय में किया जायेगा।

2.7 तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागम

बीसवीं सदी में आधुनिक अध्ययनों के अन्तर्गत कई रचनायें उभरकर सामनें आयीं, जिनमें **ग्राह्म वालास की रचना 'Human Nature in Politics' आर्थर बेंटले की रचना, The Process of Government' डेविड ह्यमैन की रचना 'The Government Process'** प्रमुख हैं। इन रचनाओं से एक बात साफ उभरकर यह सामने आयी हैं कि अब राजनीतिक संस्थाओं की संरचनाओं की अपेक्षा उनके व्यवहार पर अधिक बल दिया जाने लगा है। राजनीतिक विश्लेषण के लिए अब अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान जैसे सामाजिक विज्ञानों की खुलकर सहायता ली जाने लगी है। इसके परिणामस्वरूप राजनीति विज्ञान में भी अर्न्तअनुशासनात्क अध्ययन पद्धति का ; (inter-disciplinary) सूत्रपात हुआ है। इस नयी अनुभववादी पद्धति के परिणामस्वरूप राजनीति विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र अधिक विस्तृत एवं बहुआयामी हो गया है। इस दिशा में योगदान देने वाले प्रमुख विद्वानों में रार्बट के. मर्टन, टालकोट पारसोन्स, डेविड ईस्टन, आमण्ड, कार्ल डायच, डेविड ऐफ्टर, एडवर्ड शिल्स, लूसियन ड्ब्ल्यू पाई, इत्यादि का नाम सम्मिलित किया जा सकता है।

2.8 आधुनिक उपागमों का विकास (Devlopment of Modern Perspective)

तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागमों की विशेषताओं एवं लक्षणों का विवेचन करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं की जटिलताओं का उद्भव कैसे हुआ तथा पुराने उपागमों की अपेक्षा नये उपागमों की आवश्यकता क्यों अनुभव की गयी? आमण्ड एवं पावेल के अनुसार , परम्परागत तुलनात्मक राजनीति की सर्वत्र लोकतन्त्र के प्रसार में आस्था धूमल हो गयी थी। वस्तुतः द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त परम्परागत उपागमों का महत्व कम होता गया तथा आधुनिक विधियों एवं उपागमों का महत्व बढ़ता गया।

आमण्ड तथा पावेल ने अपनी पुस्तक 'Comparative Politics : A Developmental Approach'में इस परिवर्तन के लिए तीन कारणों का उत्तरदायी ठहराया है:[1]

(1) एशिया, अफ्रीका तथा मध्य-पूर्व में राष्ट्रीय विस्फोट जिसमें विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों, सामाजिक संस्थाओं व राजनीतिक विशेषताओं वाले अनेक राष्ट्रों का राज्यों के रूप में उदय हुआ।

(2) अटलांटिक समुदाय के राष्ट्रों के प्रभुत्व का अंत तथा अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति व प्रभाव का उपनिवेशों एवं अर्ध-उपनिवेशी क्षेत्रों में प्रसार एवं विस्तार हुआ।

(3) साम्यवाद का राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था की संरचना व अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बदलने के संघर्ष में एक शक्तिशाली प्रतियोगी के रूप में उभरना महत्वपूर्ण रहा।

वास्तव में तुलनात्मक राजनीति का परम्परागत दृष्टिकोण बदलती हुई परिस्थितियों में राजनीतिक यथार्थ की गत्यात्मकता को समझने में असमर्थ सिद्ध हुआ तथा नयी प्रविधियों, पद्धतियों व दृष्टिकोणों का प्रयोग अनिर्वाय हो गया।

मैक्रेडीज का विचार है कि तुलनात्मक राजनीति का आधुनिक दृष्टिकोण अधिक परीक्षण करने वाला, अधिक खोजबीन करने वाला तथा अधिक व्यवस्थित है। इसका लक्ष्य राजनीतिक संस्थाओं, प्रक्रियाओं तथा व्यवहारों का उसके मूल में जाकर परीक्षण करना है।

2.9 आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की विशेषताएँ(Characters of Modern Comparative Politics)

राजनीति विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में हुए परिवर्तनों ने तुलनात्मक राजनीति के विश्लेषण को नये आयाम प्रदान किये हैं। इस दृष्टि से नये उपागमो का सृजन किया गया है। इसमें शासनों का औपचारिक संस्थागत व नियमबद्ध अध्ययन न करके उसे कुछ आधारभूत प्रश्नों से जोड़ा गया है। इसके अध्ययन की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार है:

(1) मूलतः तुलनात्मक **(Largely Comparative in Approach) :** आधुनिक तुलनात्मक राजनीति मूलतः तुलनात्मक हैं। इसमें राजनीतिक व्यवस्थाओं के ऊपरी ढाँचे की ही तुलना नहीं होती अपितु राजनीतिक प्रक्रियाओं तथा गैर राजनीतिक कारकों की भी तुलना होती है। ऐप्टर के अनुसार 'आधुनिक तुलनात्मक राजनीति के अर्न्तगत औपचारिक संस्थाओं के साथ-साथ राजनीतिक प्रक्रियाओं, राजनीतिक व्यवहारों तथा राजनीति को प्रभावित करने वाले अराजनीतिक तत्वों का भी अध्ययन किया जाता है।'

(2) व्यापकतम विषय-क्षेत्र **(Extensive in Scope) :** आधुनिक तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र काफी व्यापक है। इसमें औपचारिक वैधानिक शासन अंगों के साथ-साथ राजनीतिक प्रक्रियाओं, राजनीतिक व्यवहार व राजनीति को प्रभावित करने वाले अराजनीतिक तत्वों का अध्ययन किया जाता है। इसमें यूरोपीय देशों की शासन व्यवस्थाओं के साथ एशिया, अफ्रीका के विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का भी अध्ययन किया जाता है। वर्तमान राजनीतिक संस्थाओं को ऐतिहासिक सन्दर्भ में समझने का प्रयास भी आधुनिक तुलनात्मक राजनीति में किया जाता है। राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्थाओं को एक अन्तराष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था से सम्बद्ध मानकर इनका एक दूसरे पर प्रभाव व उनकी पारस्परिकता भी तुलनात्मक अध्ययनों में देखी जाने लगी है। तुलनात्मक राजनीति का व्यापक विषय-क्षेत्र राजनीति विज्ञान में इसके बदले महत्व का परिचायक है।

(3) विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक **(Analytical and Explanatory) :** राजनीतिक व्यवस्थाओं के विवरण मात्र से राजनीति व्यवस्थाओं की सही प्रकृति को समझना सम्भव नही है। यही कारण है कि आधुनिक तुलनात्मक राजनीति विवरणात्मक न होकर समस्या समाधानात्मक व्याख्यात्मक तथा विश्लेषणात्मक है। सी. बी. गेना के अनुसार, ''विश्लेषणात्मक मार्ग किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को समझने का प्रयास करता है तथा उन महत्वपूर्ण संरचनाओं

का परिचय देता है जिनके माध्यम से एक राजनीतिक व्यवस्था कार्य करती है तथा अन्य व्यवस्था के समान अथवा असमान बनती है।''[2] विश्लेषणात्मक पद्धति से परिकल्पनाओं की जाँच की जाती है तथा जाँच के आधार पर उन परिकल्पनाओं का धारण संशोधन या खण्डन किया जा सकता है। सभी प्रकार के वैज्ञानिक अध्ययनों में विश्लेषण का यह ढंग अनिवार्य है।

(4) व्यवस्थावादी अध्ययन **(System Oriented Study) :** इस दृष्टिकोण में संवैधानिक तन्त्र के अध्ययन के स्थान पर राजनीतिक व्यवस्था को ही आधार मानकर राजनीतिक संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। आधुनिक विद्वानों ने हर राजनीतिक व्यवस्था की तीन विशेषताएँ स्वीकार की हैं - बाध्यकारी शक्ति या सामर्थ्य शक्ति का एकाधिकार तथा शक्ति के प्रयोग की साधनयुक्तता। इन तीनों विशेषताओं में से एक या तीनों का सन्दर्भ एक राजनीतिक व्यवस्था को अन्य राजनीतिक व्यवस्था या व्यवस्थाओं से भिन्न बनाता है तथा इन्हीं के आधार पर किसी राजनीतिक व्यवस्था की वैधता या अवैधता का ज्ञान होता है। राजनीतिक व्यवस्था में हर संस्था या प्रक्रिया की वास्तविकता को तभी समझा जा सकता है जब राजनीति का अध्ययन सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के दृष्टिकोण से किया जाये। राजनीतिक व्यवहार की वास्तविक गत्यात्मकता को समझने के लिए ही आधुनिक तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन व्यवस्था अभिमुखी होता जा रहा है।

(5) सामाजिक सन्दर्भ अभिमुखी **(Social Context Oriented) :** तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक लेखक राजनीतिक प्रक्रियाओं का सामाजिक शक्तियों की अन्तःक्रिया से गहरा सम्बन्ध स्वीकार करने लगे है। अब तुलनात्मक राजनीति के लेखक, उन सब सामाजिक संस्थाओं, शक्तियों तथा परम्परागत बन्धनों का, जो राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव या प्रभाव डालते हैं, अध्ययन राजनीतिक दृष्टिकोण से करते हैं। ऐसी स्थिति में राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति सामाजिक सन्दर्भ में ही सही रूप में समझी जा सकती है।

(6) व्यवहारवादी अध्ययन उपागम **(Behavioural Approach of Study) :** आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की सबसे प्रमुख विशेषता व्यवहारवादी अध्ययन दृष्टिकोण को स्वीकार करना है। व्यवहारवाद राजनीतिक तथ्यों की व्याख्या एवं विश्लेषण को राजनीतिक व्यवहार पर केन्द्रित करता है। राजनीतिक व्यवहार के अध्ययन से यह राजनीति उसकी संरचनाओं प्रक्रियाओं आदि के बारे में वैज्ञानिक व्याख्यायें प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। दूसरी ओर इसमें अन्तर अनुशासनात्मक शोध एवं विश्लेषण पर बल दिया जाता है। यह अनुभवात्मक एवं क्रियात्मक है तथा इसमें व्यक्तिनिष्ठ मूल्यों, मानकीय विवरणों, कल्पनाओं आदि का स्थान नहीं है। इस दृष्टि से यह आधुनिक तुलनात्मक राजनीति को अधिक वैज्ञानिक बनाता है तथा परम्परागत राजनीति को सर्वथा अलग कर देता है।

2.10 आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की आलोचना (Crititism of Modern Comparative Politics)

(1) विषय-क्षेत्र में अत्याधिक दुःसाध्य **(Unwidely in Scope) :** राजनीतिक व्यवहार की समस्त क्रियाओं को अध्ययन में सम्मिलित करना ज्ञान की वर्तमान सीमाओं में सम्भव नहीं है। वास्तव में तुलनात्मक राजनीति एक ऐसी दुविधा के दौर से गुजरती हुई दिखाई देती है जिसमें एक ओर विषय-क्षेत्र को सीमित रखना आवश्यक लगता है जबकि दूसरी ओर नये-नये आयामों व अध्ययन दृष्टिकोणों को अपनाना राजनीतिक व्यवहार की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने के लिए अनिवार्य हो जाता है। इससे आधुनिक तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र इतना व्यापक एवं दुःसाध्य बन गया है कि आलोचक उसको व्यवस्थित ढंग से समझना सम्भव नहीं मानते। हाल के वर्षो में डेविड ऐप्टर, जीन ब्लोंडेल, एम. ई. फाइनर, आमण्ड एवं कोलमैन तथा राबर्टस इत्यादि लेखक इसके विषय क्षेत्र को शासन तन्त्र एवं राजनीतिक व्यवस्था की परिधि में सीमित करने की बात करने लगे हैं।

(2) नयी अवधारणाओं की अस्पष्टता **(Vagueness of New Concerpts) :** आलोचकों का कहना है कि आधुनिक तुलनात्मक राजनीति में नई अवधारणाओं जैसे राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक संस्कृति, सामाजीकरण, राजनीतिक विकास, इत्यादि पर इतना अर्थ विभेद है कि हर विद्वान इनका अपने ढंग से अर्थ निकालने का प्रयास करता है। नयी अवधारणाओं की अस्पष्टता के कारण आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की उपादेयता शंका के घेरे में बनी हुई है। यदि तुलनात्मक राजनीति को स्वतन्त्र अनुशासन के दायरे में लाना हैतो इसके लिए सर्वमान्य एवं समान अर्थी अवधारणाओं की रचना करनी होगी।

(3) व्यवहारवादी अध्ययन पर अधिक बल **(Excessively Behavioural) :** आधुनिक तुलनात्मक राजनीति व्यवहारवादी उपागमों पर अत्यधिक बल देती है। आलोचकों के अनुसार, व्यवहारवाद ने तुलनात्मक राजनीति को अत्यधिक नुकसान पहुँचाया है। इसकी सबसे बड़ी कमजोरी उसकी मूल्य निरपेक्षता है जिसे अर्नाल्ड ब्रेख्त ने बीसवीं सदी की दुखान्त घटना कहा है। पुनः व्यवहारवाद आनुभाविक तथ्यों एवं आँकड़ों को इतना अधिक महत्व देता है कि अन्य तथ्य गौण हो जाते हैं। इसने तुलनात्मक राजनीति के विषय-क्षेत्र को ही दिग्भ्रमित कर दिया है।

अभ्यास प्रश्न

1. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के कितने उपागम हैं ?
2. तुलनात्मक राजनीति के जनक किसे माना जाता है ?

2.11 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त यह जानने में सफलता मिली कि यद्यपि परम्परागत तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों एवं प्रक्रियाओं को समझने में सहायक नहीं रहा फिर भी विषय की दृष्टि से

उनके योगदान को हम नजर अंदाज नहीं कर सकते। इस दृष्टिकोण के माध्यम से राजनीति के अनेक तथ्य संकलित किये गये जो बाद में राजनीतिक विश्लेषण का आधार बिन्दु बने। इस अध्ययनों में राजनीतिक व्यवस्थाओं की जटिलता का आभास मिला, जो अंततः आधुनिक राजनीतिक विश्लेषण में सहायक बना। एलेन बाल के शब्दों में, ''परम्परागत राजनीतिक विद्वानों द्वारा खड़े किये गये विचारों के महल चाहे कितनी ही कमजोर बुनियाद पर क्यों न हों, उनकी कृतियों द्वारा ही हमें सर्वप्रथम तुलनात्मक सरकार के बारे में जानकारी होती है।''[13]

आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की सबसे प्रमुख विशेषता व्यवहारवादी अध्ययन दृष्टिकोण को स्वीकार करना है। व्यवहारवाद राजनीतिक तथ्यों की व्याख्या एवं विश्लेषण को राजनीतिक व्यवहार पर केन्द्रित करता है। राजनीतिक व्यवहार के अध्ययन से यह राजनीति उसकी संरचनाओं प्रक्रियाओं आदि के बारे में वैज्ञानिक व्याख्यायें प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। दूसरी ओर इसमें अन्तर अनुशासनात्मक शोध एवं विश्लेषण पर बल दिया जाता है। यह अनुभवात्मक एवं क्रियात्मक है तथा इसमें व्यक्तिनिष्ठ मूल्यों, मानकीय विवरणों, कल्पनाओं आदि का स्थान नहीं है। इस दृष्टि से यह आधुनिक तुलनात्मक राजनीति को अधिक वैज्ञानिक बनाता है तथा परम्परागत राजनीति को सर्वथा अलग कर देता है।

2.12 शब्दावली

ऐतिहासिक विश्लेषण: इतिहास के सांदर्भिक प्रमाण का अध्ययन करना और उसे समझने का प्रक्रिया

संस्थागत अध्ययन: संस्थाओं की संरचना, क्रिया, और प्रभाव का अध्ययन।

मानक विश्लेषण: विशेष मानकों या मापदंडों की आधारित विश्लेषण।

2.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 2 , 2. अरस्तू

2.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Ecksten and After (Eds.) Comparative Politics: A Reader, Free Press, New York, (1963) p.3.

2. R.C. Macridis, A Survey of the field of Comparative Government' in Jean Blondel, Comparative Government, p. XI.

3.डॉ. सी. बी. गेना, पूर्वोक्त, 86-87.

4.सी. बी. गेना, पूर्वोक्तए 88-91.

5.डॉ. सी. बी. गेना, पूर्वोक्त, 115-127

6.Jean Blondel, Comparative Government : A Reader, (1969), pp.19.

7.Roy C. Macridas, The Study of Comparative Government, Roulbday, New Yark (1955) p.7

8.Eckstein and After, Comparative Politics, A Reader Free Press, New York. 1963,p.3.

9.R.C. Macridis, Op. cit. p. 9.

10.Almond and Powell, Comparative Politics : A Developmenental Approach, Little Brown, Boston (1966), p.2.

11.Roy C. Macridis, Op. cit. p.7.

12.Almond and Powell, Op. cit. p.3.

13. Almond and Powell, Op. cit. p.3.

2.15 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

2.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. परम्परागत तुलनात्मक राजनीति के विशेषताओं की विवेचना कीजिये |

2. तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागम की विशेषताओं की विवेचना कीजिये |

इकाई 3 संविधान, संवैधानिक सरकार

इकाई की रुपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 संविधान की आवश्यकता

3.3 संविधान का अर्थ और परिभाषा

3.4 संविधान का विकास

3.5 संविधानों का वर्गीकरण

- 3.5.1 उत्पत्ति के आधार पर
- 3.5.2 संविधान में प्रथाओं और कानूनों के अनुपात के आधार पर
- 3.5.3 संविधान में संशोधन के आधार पर

3.6 संवैधानिक सरकार

3.7 अभ्यास प्रश्न

3.8 सारांश

3.9 शब्दावली

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण हैं कि जब राज्य का उद्भव हुआ या यह कहा जाये कि जब मनुष्य ने संगठित रुप से रहना प्रारम्भ किया अर्थात राज्य रुपी संस्था, अपने अनगढ़ रुप में ही सही, अस्तित्व में आयी उसी के साथ ही राज्य व जनता के आपसी रिश्तों को संचालित करने के लिए कुछ नियमों को लिखित अथवा अलिखित रुप में स्वीकार किया गया। जिसे संविधान का प्राचीनतम रुप माना जा सकता है। इस बात की पुष्टि इस ऐतिहासिक तथ्य से की जा सकती है कि आज से लगभग ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व यूनानी राजनीतिक विचारक अरस्तु ने 158 राज्यों के संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन कर संविधानों के वर्गीकरण का प्रथम प्रयास किया था।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पठने के उपरान्त आप-

1. संविधान, उसकी परिभाषा उसकी आवश्यकता और संविधानों के वर्गीकरण के विषय में जान पायेंगे।

2. संवैधानिक सरकार के बारे में जान पायेंगे।

3. संविधान के विकास को जान पायेंगे।

3.2 संविधान की आवश्यकता

किसी भी देश में निम्न कारणों से संविधान की आवश्यकता होती हैः-

1. शासन की शक्तियों को संविधान द्वारा ही सीमित किया जा सकता है।

2. राजतंत्र और कुलीन तंत्रीय शासनों में अत्याचारों के अनुभवों ने संविधान की आवश्यकता को स्पष्ट कर दिया है।

3. व्यक्ति और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए भी संविधान आवश्यक है।

4. वर्तमान और भावी पीड़ी की स्वेच्छा पर नियंत्रण के लिए संविधान आवश्यक है।

3.3 संविधान का अर्थ और परिभाषाएँ

संविधान अंग्रेजी शब्द 'कान्स्टीट्यूशन' का हिन्दी रूपान्तर है। जिस प्रकार मानव शरीर के संदर्भ में कान्स्टीट्यूशन का अर्थ शरीर के ढॉचे व गठन से होता है, उसी प्रकार राजनीति विज्ञान में 'कान्स्टीट्यूशन' का तात्पर्य राज्य के ढॉचे तथा संगठन से होता है। अतः राज्य के संविधान में राज्य की सरकार के विभिन्न अंगो, उनके संगठन व शक्तियों, जनता के अधिकारों आदि का उल्लेख रहता है। राज्य का रूप चाहे किसी भी प्रकार का हो, आवश्यक रूप से उसका एक संविधान होता है। आवश्यक नहीं है कि संविधान लिखित ही हो। आवश्यक यह है कि कुछ ऐसे नियमों का अस्तित्व हो, जिनके द्वारा देश की शासन-व्यवस्था के ढॉचे को निर्धारित किया जा सके और सरकार की कार्यप्रणाली के विषय में जाना जा सके।

राज्य के लिए संविधान की अनिवार्यता बतलाते हुए जैलीनेक ने कहा कि ''संविधानहीन राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती, संविधान के अभाव में राज्य, राज्य न होकर एक प्रकार की अराजकता होगी''। इसी प्रकार शुल्टज कहते हैं कि ''राज्य कहलाने का अधिकार रखने वाले हर समाज का संविधान अवश्य होना चाहिए, अर्थात ऐसे सिद्धान्तों की संहिता होनी चाहिए जो सरकार और प्रजा के संबंध निश्चित करें और जिनके अनुसार राज्य अपनी शक्ति का प्रयोग करें।'' यह एक वैधानिक उपकरण है जिसे भिन्न नामों जैसे-राज्य के नियम, शासन का उपकरण, देश का मौलिक कानून, राज्य व्यवस्था का आधारभूत-विधान, राष्ट्र-राज्य की आधारशिला आदि से भी जाना जाता है। किन्तु इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त शब्दावली 'संविधान' ही है।

परिभाषाएँ

गिलक्राइस्ट के अनुसार ''संविधान उन लिखित या अलिखित नियमों अथवा कानूनों का समूह होता है जिनके द्वारा सरकार का संगठन, सरकार की शक्तियों का विभिन्न अंगों में वितरण और इन शक्तियों के प्रयोग के सामान्य सिद्धान्त निश्चित किये जाते हैं।''

डायसी के अनुसार ''संविधान उन समस्त नियमों का संग्रह है जिनका राज्य की प्रभुत्व सत्ता के प्रयोग अथवा वितरण पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है।''

वूल्जे के अनुसार ''संविधान नियमों के उस समूह को कहते हैं जिसके अनुसार सरकार की शक्तियों, शासितों के अधिकारों और इन दोनों के पारस्परिक संबंधों के विषय में सामंजस्य स्थापित किया जाता हैं।''

फाइनर के अनुसार ''संविधान आधारभूत राजनीतिक संस्थाओं की व्यवस्था होती है।''

गैटिल के अनुसार ''वे मौलिक सिद्धान्त, जिनके द्वारा किसी राज्य का स्वरूप निर्धारित होता है, संविधान कहलाता है।''

ब्राइस के अनुसार ''संविधान ऐसे निश्चित नियमों का एक संग्रह होता है, जिनमें सरकार की कार्य-विधि प्रतिपादित होती है और जिनके द्वारा उसका संचालन होता है।''

चार्ल्स बर्गेन्ड के अनुसार ''संविधान एक आधारभूत कानून होता है, जिसके द्वारा किसी राज्य की सरकार संगठित की जाती है और जिसके अनुसार व्यक्तियों अथवा नैतिक नियमों का पालन करने वाले मनुष्य तथा समाज के पारस्परिक संबंध निर्धारित किये जाते है।''

3.4 संविधान का विकास

'संविधान' के निर्माण के संदर्भ में पूर्णतः यह नहीं कहा जा सकता कि इसका निर्माण एक निश्चित समय में विचार-विमर्श करके किया गया है। संविधान को चाहे कितना ही विचार-विमर्श करके बनाया जाए, लेकिन यह अपनी प्रकृति से विकास का परिणाम है। इसके विकास में कई महत्वपूर्ण तत्व सहायक होते हैं।

1. प्रथाएँ और परम्पराएँ प्रथाओं और परम्पराओं ने संविधान के विकास को दिशा दी है। ग्रेट ब्रिटेन का संविधान तो अधिकांशतः प्रथाओं और परम्पराओं के द्वारा ही निर्मित है, परन्तु अन्य देशों के संविधानों जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, भारत, स्विट्जरलैण्ड आदि को भी प्रथाओं और परम्पराओं से प्रभावित देखा जा सकता है। प्रथाएँ और परम्पराएँ मानव सभ्यता के विकास से हैं, जिनके साथ व्यक्ति भावनात्मक रूप से जुड़ा है। संविधान के निर्माण/विकास के बाद भी व्यक्ति ने अपनी प्रथाओं और परम्पराओं के साथ जीना नहीं छोड़ा, जिस कारण संविधान के विकास में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

2. न्यायाधीशों के निर्णय न्यायाधीशों के द्वारा संविधान के विभिन्न उपबन्धों के संबंध में दिए गये निर्णयों और व्याख्याओं से भी संविधान के विकास को गति मिलती है। भारत एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधानों में इसे देखा जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के विषय में तो यहाँ तक कहा जाता है कि ''संविधान वही है, जो न्यायाधीश कहते हैं।''

3. संशोधन प्रक्रिया संविधान में संशोधन के लिए जो संशोधन विधि वर्णित होती है उसके आधार पर संविधान में बहुत से संशोधन समय-समय पर होते रहते हैं। संविधान में संशोधनों के माध्यम से कई देशों ने मौलिक अधिकारों को संविधान का महत्वपूर्ण अंग बना दिया है। अतः संशोधन प्रक्रिया के माध्यम से भी संविधान के विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

संविधान का विकास इस आधार पर होना चाहिए कि उसमें समय-समय पर आने वाली परिस्थितियों से निपटने की क्षमता होनी चाहिए।

3.5 संविधानों का वर्गीकरण

संविधानों का तीन आधारों पर वर्गीकरण किया जा सकता है-

3.5.1 उत्पत्ति के आधार पर

उत्पत्ति के आधार पर संविधान दो प्रकार के होते है-विकसित और निर्मित संविधान

विकसित संविधान विकसित संविधान वे हैं, जिनका निर्माण संविधान-सभा जैसी किसी संस्था द्वारा निश्चित समय पर नहीं किया जाता वरन् ये संविधान विभिन्न परम्पराओं, रीति-रिवाजों, प्रथाओं और न्यायालयों के निर्णय पर आधारित होता हैं। इग्लैण्ड का संविधान विकसित संविधान का श्रेष्ठ उदाहरण है। वहॉ राजा, मंत्रिपरिषद, संसद अथवा अन्य राजनैतिक संस्थाओं की शक्ति और उनके अधिकार क्षेत्र आदि लेखबद्ध नहीं है तथा न उनसे संबंधित नियमों का एक समय निर्माण किया गया है। वस्तुतः ब्रिटिश संविधान का वर्तमान स्वरूप उसके पन्द्रह सौ वर्षो के संवैधानिक विकास का परिणाम है। इसी कारण प्रो0 मुनरो ने लिखा है कि 'ब्रिटिश-संविधान कोई पूर्णतया प्राप्त वस्तु न होकर एक विकासशील वस्तु है। यह बुद्धिमता और संयोग की सन्तान है जिसका मार्गदर्शन कहीं आकस्मिकता और कहीं उच्चकोटि की योजनाओं ने किया है।

निर्मित संविधान वे संविधान होते हैं, जिनका निर्माण एक विशेष समय पर संविधान सभा जैसी किसी विशेष संस्था के द्वारा किया जाता है। निर्मित-संविधान स्वाभाविक रूप से लिखित होते हैं और साधारणतया कठोर भी। 'अमेरिका' का संविधान विश्व का प्रथम निर्मित संविधान है, जिसे सन् 1787 ई0 के फिलाडेल्फिया सम्मेलन में निर्मित किया गया था। स्विट्जरलैण्ड का संविधान भी निर्मित है, जिसका प्रारूप 1848 में 14 सदस्यों के एक आयोग द्वारा तैयार किया गया था और इस प्रारूप में 1874 में व्यापक परिवर्तन किये गये। भारत के संविधान को संविधान-सभा ने लगभग तीन वर्षों (9 दिसम्बर 1946 से 26 नवम्बर 1949) के परिश्रम के बाद तैयार किया किन्तु यह लागू हुआ 26 जनवरी 1950 से। 1982 का नया चीनी संविधान भी निर्मित संविधानों की श्रेणी में आता है, जिसका निर्माण विशेष रूप से नियुक्त की गयी एक समिति तथा जनवादी-कांग्रेस ने किया। उपयुक्त विकसित तथा निर्मित संविधानों के अपने-अपने गुण-दोष भी देखने को मिलते हैं- जैसे विकसित संविधान में गतिशीलता होने की विशेषता है। यह लोगों की आवश्यकताओं तथा

आंकाक्षाओं के अनुकूल सदा परिवर्तन की प्रक्रिया में रहता है, परन्तु दोष इसका यह है कि ये असंख्य अलग-अलग व बिखरे हुए प्रपत्रों तथा राजनीतिक रीति-रिवाजों के रूप में रहता है। अतः इसमें निश्चितता नहीं होती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर टॉमस पैन जैसे एक अमरीकी विचारक तथा डी0टाकविले जैसे एक फ्रांसीसी इतिहासकार ने यह मत प्रकट किया कि 'इंगलैण्ड में कोई संविधान नही हैं।

इसके विपरीत निर्मित संविधान सर्वथा सुनिश्चित होता है। संहिताबद्ध रूप में होने के कारण यह सदा लोगों के लिए महान सुविधा का स्रोत होता है, परन्तु इग्लैण्ड के लोग इस तथ्य के बावजूद अपने संविधान पर गर्व करते हैं।

3.5.2 प्रथाओं और कानूनों के आधार पर

इस आधार पर दो प्रकार के संविधान होते हैं - लिखित संविधान व अलिखित संविधान

लिखित संविधान वे संविधान होते हैं, जिनके प्रावधान विस्तारपूर्वक लिखे होते है। अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड, फ्रांस, रूस, जापान, चीन, भारत आदि देशों के संविधान लिखित-संविधानों के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

अमेरिका का संविधान विश्व का प्रथम लिखित संविधान है, जिसमें केवल 4000 शब्द हैं, जो 10 या 12 पृष्ठों में मुद्रित हैं और जिन्हें आधे घण्टे में पढ़ा जा सकता है। यह विश्व के लिखित संविधानों में सर्वाधिक संक्षिप्त है। इसमें केवल 7 अनुच्छेद हैं। भारत का संविधान विश्व के लिखित संविधानों में सबसे विस्तृत हैं। इसमें कोई 90,000 शब्द हैं। भारतीय संविधान में 445 अनुच्छेद एवं 12 अनुसूचियॉ हैं। भारत के मूल संविधान में 395 अनुच्छेद व 8 अनुसूचियॉ थी। स्विस संविधान में 123 अनुच्छेद है, जो 3 अध्यायों में बॅटा है। चीन के नये संविधान में एक प्रस्तावना तथा 138 अनुच्छेद हैं जो 4 अध्यायों में बॅटा है।

अलिखित संविधान वे संविधान होते हैं, जिसके लिखित प्रावधान बहुत संक्षिप्त होते हैं तथा संविधान के अधिकांश नियमों का अस्तित्व व्यवहारों व प्रथाओं के रूप में होता है। ब्रिटेन का संविधान, अलिखित संविधान का सर्वोत्तम उदाहरण है और अलिखित संविधान की व्यवस्था से ब्रिटेन को कोई हानि न होकर लाभ ही हुआ है।

3.5.3 संविधान में संशोधन के आधार पर

इस आधार पर संविधान के दो भेद हैं - लचीला संविधान और कठोर संविधान।

लचीला संविधान यदि सामान्य कानून और संवैधानिक कानून के बीच कोई अन्तर न हो और संवैधानिक कानून में भी सामान्य कानून के निर्माण की प्रक्रिया से ही संशोधन-परिवर्तन किया जा सके, तो संविधान को लचीला या परिवर्तनशील कहा जायेगा। गार्नर के शब्दों में लचीला संविधान वह है जिसको साधारण कानून से अधिक शक्ति एवं सत्ता प्राप्त नहीं है और जो साधारण-कानून की भॉति ही बदला जा सकता है, चाहे वह एक प्रलेख या अधिकांशत परम्पराओं के रूप में हो।'' लचीले संविधान के उदाहरण स्वरूप हम इंग्लैण्ड के संविधान को ले सकते हैं। इग्लैण्ड में

संसद, जिस प्रक्रिया द्वारा सड़क पर चलने के नियमों या मद्य-निषेध के नियमों में परिवर्तन करती है, बिल्कुल उसी प्रक्रिया के आधार पर संवैधानिक कानूनों में परिवर्तन कर सकती है। दूसरे शब्दों में ये दोनों काम संसद के साधारण बहुमत द्वारा सम्पन्न किये जा सकते हैं।

चीन का संविधान भी इसी श्रेणी में आता है क्योंकि इसमें साधारण कानून निर्माण प्रक्रिया से ही संशोधन किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 64 में संशोधन की प्रक्रिया वर्णित है। संविधान में संशोधन का प्रस्ताव राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की स्थायी समिति द्वारा या राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के 1/5 सदस्यों द्वारा रखा जाना चाहिए तथा यह प्रस्ताव राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के कुल सदस्यों के 2/3 बहुमत से स्वीकृत होना चाहिए।

ज्ञातव्य है कि चीन की राष्ट्रीय-जनवादी कांग्रेस विश्व का सबसे बड़ा एकसदनात्मक विधायी सदन है क्योंकि इसके सदस्यों की उपस्थिति नये संविधान (1982) को स्वीकृत करते समय 3,037 थी।

कठोर संविधान से अभिप्राय उस संविधान से है जिसमें संशोधन के लिये किसी विशेष प्रक्रिया को प्रयुक्त किया जाता है। कठोर-संविधान में संवैधानिक एवं साधारण कानून में मौलिक भेद समझा जाता है तथा इसमें संवैधानिक कानूनों में संशोधन-परिवर्तन के लिए साधारण कानूनों के निर्माण से भिन्न प्रक्रिया, जो साधारण कानून के निर्माण की पद्धति से कठिन होती है, अपनाना आवश्यक होता है। सरल शब्दों में व्यवस्थापिका जिस विधि अथवा प्रक्रिया से साधारण कानूनों को पारित करती है, उसी विधि से संविधान में संशोधन नहीं कर सकती है। कठोर संविधान के उदाहरण स्विट्जरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, रूस, इटली, फ्रांस, डेनमार्क, स्वीडन, नार्वे, जापान तथा भारत के संविधान हैं। किन्तु इसका सबसे अच्छा उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान है। वहॉ पर संविधान में संशोधन के लिए कांग्रेस (प्रतिनिधि सभा 435, सीनेट 100) के 2/3 बहुमत तथा 3/4 राज्यों के विधानमण्डलों की स्वीकृति आवश्यक हैं। इसी का परिणाम यह हुआ है कि 211 वर्षो में केवल 26 संशोधन किये जा सके हैं। यहॉ यह सूच्य है कि अमेरिका में संविधान के अनुच्छेद 5 में संशोधन प्रक्रिया वर्णित है।

स्विट्जरलैण्ड के संविधान में संशोधन की प्रक्रिया भारत से जटिल है किन्तु अमेरिका की तुलना में कम कठोर है। संविधान में संशोधन का प्रस्ताव स्विस व्यवस्थापिका (संघीय सभा) के दोनों सदनो (राष्ट्रीय परिषद 200 एवं राज्य परिषद 44) के बहुमत द्वारा पास होना चाहिए और उसके बाद उसका समर्थन मतदाताओं तथा कैन्टनों (राज्य) के बहुमत से होना चाहिए।

3.6 संवैधानिक सरकार

संविधानिक सरकार से तात्पर्य ऐसी सरकार से है जो संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार गठित, नियंत्रित व सीमित हो तथा व्यक्ति विशेष की इच्छाओं के स्थान पर विधि के अनुरुप ही संचालित होती हो। सामान्यतया ऐसा समझा जाता है कि जिस राज्य में संविधान हो वहॉ संवैधानिक सरकार भी होती है। हर राज्य में किसी न किसी प्रकार का संविधान तो होता ही है पर संविधानिक सरकार भी हो ऐसा आवश्यक नहीं है। हिटलर व स्तालिन के समय जर्मनी व

रुस में संविधान तो थे पर संवैधानिक सरकारें भी थी ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इन देशों का राजनीतिक आचरण संविधान पर आधारित न होकर व्यक्ति या राजनीतिक दल की महत्वाकांक्षाओं पर आधारित थी। संवैधानिक सरकारें विधि के अनुरुप व लोक कल्याण पर आधारित होती हैं। अतः राज्य में केवल संविधान का हेना मात्र सरकार को संवैधानिक नहीं बनाता है। केवल वही सरकार संवैधानिक सरकार कही जायेगी जो संविधान पर आधारित हो। संविधान द्वारा सीमित व नियंत्रित हो व निरंकुशता के स्थान पर विधि के अनुरुप ही संचालित हो।

अभ्यास प्रश्न-

1. ''संविधानहीन राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती, संविधान के अभाव में राज्य, राज्य न

होकर एक प्रकार की अराजकता होगी''। यह कथन किसका है?

क. जैलीनेक ख. शुल्टज ग. डायसी घ. गिलक्राइस्ट

2. संविधान की यह परिभाषा किसने दी ''संविधान ऐसे निश्चित नियमों का संग्रह होता है जिसमें सरकार की कार्य-विधि प्रतिपादित होती है और जिसके द्वारा उसका संचालन होता है।''

क. फाइनर ख. बूल्जे ग. ब्राइस घ. डायसी

3. विश्व का प्रथम लिखित संविधान है?

क. भारत का संविधान ख. ब्रिटेन का संविधान ग. फ्रॉस का संविधान घ.अमेरीका का संविधान

4. डायसी का यह कथन कि ''संविधान उन समस्त नियमों का संग्रह है जिसका राज्य की प्रभुत्व सत्ता के प्रयोग अथवा वितरण पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप से प्रभाव पड़ता है''।

सत्य/असत्य

5. डी0 टाकविले का कथन कि 'इंलैण्ड में संविधान जैसी कोई चीज नहीं है ।' सत्य/असत्य

6. अमेरीकी संविधान विश्व का प्रथम.....संविधान है।

7. लिखित संविधानों में विश्व का सबसे विस्तृत संविधान.....का संविधान है।

3.7 सारांश

निष्कर्षतः, संविधान और संवैधानिक सरकार राष्ट्रों की राजनीतिक प्रणालियों को आकार देने और नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संविधान मौलिक कानूनी ढांचे के रूप में कार्य करते हैं जो सरकार के सिद्धांतों, संरचनाओं और शक्तियों को स्थापित करते हैं, जबकि संवैधानिक सरकारें कानून का शासन सुनिश्चित करती हैं और शक्ति के दुरुपयोग को रोकती हैं।

संविधान लोकतांत्रिक शासन के लिए एक आधार प्रदान करते हैं, पारदर्शिता, जवाबदेही और शक्तियों के पृथक्करण को बढ़ावा देते हैं। वे व्यक्तियों के अधिकारों और जिम्मेदारियों को रेखांकित करते हैं, सरकारी संस्थानों की संरचना को परिभाषित करते हैं, और संघर्षों के शांतिपूर्ण समाधान के लिए तंत्र स्थापित करते हैं। अधिकार के प्रयोग पर स्पष्ट सीमाएँ निर्धारित करके, संविधान अधिनायकवाद और अत्याचार के विरुद्ध ढाल के रूप में कार्य करता है।

इसके अलावा, संवैधानिक सरकारें व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करने और मानवाधिकारों को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक हैं। संविधान मौलिक स्वतंत्रता जैसे भाषण, सभा और धर्म की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करता है, यह सुनिश्चित करता है कि नागरिक प्रतिशोध के डर के बिना खुद को अभिव्यक्त कर सकें। वे अल्पसंख्यक अधिकारों की सुरक्षा के लिए तंत्र भी स्थापित करते हैं, समाज के सभी सदस्यों के लिए समान व्यवहार और प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करते हैं।

हालाँकि, संवैधानिक सरकार की प्रभावशीलता अंततः सरकार और लोगों दोनों की प्रतिबद्धता और पालन पर निर्भर करती है। इसके लिए एक सुविज्ञ और समर्पित नागरिक वर्ग की आवश्यकता है जो लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग ले, कानून के शासन को कायम रखे और अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों को जवाबदेह बनाए। इसके अलावा, संवैधानिक प्रणालियों को बदलते सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी परिदृश्य को प्रतिबिंबित करते हुए, समाज की उभरती जरूरतों और आकांक्षाओं के अनुरूप होना चाहिए।

3.8 शब्दावली

1. संक्षिप्त- छोटा/आकार में कम

2. अवधारणा- विचार/विचारधारा

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-

1. क. जैलीनेक 2. ग. ब्राइस 3. घ. अमेरीकी संविधान 4. सत्य 5. सत्य 6. निर्मित 7. भारत

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधुनिक तुलनात्मक राजनीति- पीटर एच0 मार्कल

राजनीति विज्ञान एक परिचय- पिनांक एवं स्मिथ

संवैधानिक सरकारें और लोकतंत्र- कार्ल जे0 फ्रैडरिक

तुलनात्मक राजनीति एंव राजनीतिक संस्थाएं- सी0बी0 गैना

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक राजनीति एंव राजनीतिक संस्थाएं- सी0बी0 गैना

2. आधुनिक सरकारें- सिद्धान्त एंव व्यवहार- डॉ0 पुष्पेश पाण्डे, डॉ0 विजय प्रकाश पंत एंव घनश्याम जोशी

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. संविधानवाद का अर्थ एवं परिभाषा बतलाते हुए संविधानों के वर्गीकरण को स्पष्ट करें।

2. संविधान की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए संविधान के विकास की व्याख्या करें।

3. संवैधानिक सरकार व संविधानवाद की व्याख्या करें।

इकाई 4 संविधान और संविधानवाद

इकाई की रुपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 संविधान और सांविधानिक सरकार

4.4 संविधानवाद का उद्भव एवं विकास

4.5 संविधानवाद की सामान्य विशेषताएँ

4.6 संविधानवाद की अवधारणाएँ

4.7 संविधानवाद की समस्याएँ

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.13 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संविधानवाद एक व्यापक अवधारणा है, जिसे संविधान या सांविधानिक सरकार का पयार्यवाची समझना उचित नहीं है। प्रारंभ से ही मनुष्य सामाजिक या राजनीतिक संगठन में रहता आया है। अरस्तू के मतानुसार मनुष्य एक सामाजिक एवं राजनीतिक प्राणी है। ज्यों-ज्यों मनुष्य में सामाजिकता का तत्त्व बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों राजनीतिक संगठन की उपयोगिता भी बढ़ती जा रही है। एक ओर मनुष्यों में राजनीतिक संगठन के अंतर्गत रहने की प्रवृत्ति रही है तो दूसरी ओर वे स्वतंत्रता के लिए अधिक-से-अधिक चिंतित रहे हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और राजनीतिक सत्ता के बीच संघर्ष का इतिहास समाज व राज्य की उत्पत्ति के साथ ही प्रारंभ हुआ। राजनीतिक संगठन में रहते हुए व्यक्ति इस बात के लिए सतत प्रयत्नशील रहा है कि सरकार स्वेच्छाचारी या अधिनायकवादी न बन जाए। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जब तानाशाही तथा स्वेच्छाचारी सरकारों ने नागरिकों की स्वतंत्रता का अपहरण करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। फलस्वरूप, यह प्रयास किया जाने लगा कि किसी ऐसे राजनीतिक संगठन की स्थापना की जाए, जिसके अंतर्गत शासकों की शक्ति नियंत्रित तथा मर्यादित रहे और वे उनका सदुपयोग करें, न कि दुरूपयोग। संविधानवाद का इतिहास तथा पृष्ठभूमि यहीं से प्रारंभ होती है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जाएंगे किः

- संविधान और सांविधानिक सरकार की आवश्यकता को बता सकेंगें।
- संविधानवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का वर्णन कर सकेंगे।
- संविधानवाद की अवधारणाएँ की व्याख्या कर सकेंगे।
- संविधानवाद की सामान्य विशेषताएँ के बारे में विवेचना कर सकेंगे।

4.3 संविधान और सांविधानिक सरकार

संविधानवाद किसे कहते हैं, यह प्रश्न तो सरल है, परंतु इसक उत्तर उतना सरल नहीं है। संविधानवाद की कोई निश्चित तथा स्पष्ट परिभाषा नहीं दी जा सकती। संविधानवाद को समझने के लिए संविधान को समझना आवश्यक है। प्रत्येक राज्य में एक संविधान होता है, भले ही वह राज्य लोकतांत्रिक हो या स्वेच्छाचारी। सामान्यतः, संविधान का अभिप्राय एक ऐसे आलेख से होता है, जो निश्चित समय में निर्मित व स्वीकृत हो। कई विद्वानों ने संविधान की इस परिभाषा पर आपत्ति व्यक्त की है। उन्होंने कहा है कि यह कोई आवश्यक नहीं कि संविधान लिखित ही हो। संविधान का अर्थ समझने के क्रम में सांविधानिक सरकार का अर्थ समझ लेना भी आवश्यक हो जाता है। यह कोई आवश्यक नहीं कि जहाँ संविधान हो, वहाँ सांविधानिक सरकार हो। अधिनायकवादी तथा स्वेच्छाचारी शासन-व्यवस्थाओं में भी संविधान होता है, परंतु उस सरकार को सांविधानिक सरकार नहीं कहा जा सकता। हिटलर तथा मुसोलिनी की सरकारों को संविधान रहने के बावजूद सांविधानिक नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि वहाँ शासन का आधार संविधान नहीं था,वरनउन अधिनायकों एवं तानाशाहों की इच्छाएँ और आकांक्षाएँ थीं। अतः राज्य में केवल संविधान के होने मात्र से सरकार सांविधानिक नहीं बन जाती। केवल वह सरकार ही सांविधानिक सरकार कही जाएगी, जो संविधान पर आधृत हो तथा संविधान द्वारा सीमित और नियंत्रित हो।

4.4 संविधानवाद का उद्भव एवं विकास

संविधानवाद की उत्पत्ति और विकास का एक क्रमिक इतिहास है। संविधानवाद को सही रूप से वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए इसके विकास के इतिहास को जानना अत्यावश्यक है। संविधानवाद के विकास का इतिहास राजनीतिक संस्थाओं के विकास के इतिहास से जुड़ा हुआ है। संविधानवाद की उत्पत्ति की एक निश्चित तिथि की ओर इंगित करना कठिन है, फिर भी उस सामान्यकाल का संकेत प्राप्त हो सकता है जहाँ से संविधानवाद एक अवधारणा के रूप में प्रचलित हुआ।

संविधानवाद की उत्पत्ति के संबंध में प्राचीन यूनान के एथेंस नगर का नाम लिया जा सकता है। कहा जाता है कि ईसा के पूर्व 624 से लेकर 724 तक की अवधि में संविधानवाद का जन्म हुआ। इसी काल में संविधानों का प्रणयन हुआ। राज्य के स्वरूप, व्यवस्था तथा इसके कार्यचालन को नियमित करने के लिए नियमों एवं सिद्धांतो का निर्धारण हुआ। यूनानी राजनीतिक चिंतकों ने राज्य-व्यवस्था के स्वरूप को निर्धारित करने के क्रम में संविधानवाद की भी बीज बोया। यूनान की धरती पर उत्पन्न और अंकुरित संविधानवाद की टहनियाँ विश्व के दूसरे-दूसरे देशों में ले जाई गई। शनैः-शनैः संविधानवाद प्रस्फुटित होता गया और अन्य देशों में इसकी जड़ें जमती गईं।

संविधानवाद के जन्म से लेकर आज तक के इतिहास को एक काल या एक चरण में नहीं रखा जा सकता। अनेक चरणों तथा अनेक कालों से गुजरता हुआ संविधानवाद का वर्तमान काल में पदार्पण हुआ। अध्ययन की सुविधा के लिए संविधानवाद के विकास के इतिहास को निम्नलिखित कालों या चरणों में बाँटा जा सकता है। यूनानी संविधानवाद के संबंध में सबसे पहली बात यह कही जा सकती है कि यूनानियों ने राजनीतिक पृथकतावाद के सिद्धांत को अपने जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना था। उन्होंने नगर-राज्य की स्थापना की थी, जिसके अंतर्गत नागरिकता कुछ ही लोगो तक सीमित थी। दास, श्रमिक, औरतों तथा अन्य कई ऐसे वर्ग थे, जिन्हें नागरिकता से वंचित रखा गया था।

नगर-राज्य व्यवस्था के पतन तथा रोमन साम्राज्य की स्थापना के बीच की अवधि में राजनीतिक एवं सांविधानिक स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए। राज्य के साथ-साथ व्यक्ति को भी प्रधानता मिली। नीति और राजनीति का पृथक्करण हो गया। रोमन संविधानवाद ने एक साथ दो सिद्धांत को मान्यता दीः-

(1) सम्राट की इच्छा को कानूनी शक्ति प्राप्त है।

(2) सम्राट की शक्तियों का स्त्रोत जनता है।

रोमन साम्राज्यवाद के पतन के बाद सामंतवाद का उदय हुआ। मध्यकाल सामंतवाद चर्च की प्रधानता के सिद्धांत के साथ जुड़ा हुआ माना जाता है। यूरोप में छोटे-छोटे अनेक सामंतवादी राज्यों की स्थापना हुई। राजनीतिक विचारकों के मतानुसार मध्यकाल 'राज्यविहीन' व्यवस्था का प्रतीक था। मध्यकाल के प्रथम चरण में चर्च की प्रभुता रही, परंतु उत्तरार्द्ध में सम्राटों ने चर्च की प्रधानता को चुनौती दी। इस अवधि में ब्रिटेन, फ्रांस तथा स्पेन की आंतरिक राजनीति में आधुनिक राज्य का बीजारोपण हो गया, जबकि जर्मनी और इटली पर वर्षों तक पवित्र रोमन साम्राज्य का प्रभाव बना रहा। फ्रांस में स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के नारों ने निरंकुश राज्य पर प्रहार किया, जिसके परिणामस्वरूप संविधानवाद के नए आयामों का जन्म हुआ। पुनर्जागरण काल में मानवीय एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जन्म हुआ। कला, साहित्य तथा संस्कृति के क्षेत्र में नए आयाम जुड़े तथा नए मूल्यो का जन्म हुआ। इस काल में असीमित राजतंत्र की स्थापना हुई। कई विद्वानों के अनुसार पुनर्जागरण काल में असीमित राजतंत्र के कारण संविधानवाद का विकास अवरूद्ध हो गया था।

संविधानवाद के उद्भव और विकास के इतिहास का अवलोकन करने के बाद हमारे सम्मुख कुछ बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम, संविधानवाद द्वारा सांविधानिक ढंग से शासन-संचालन की प्रक्रिया की अनुशंसा की गई। दूसरे शब्दों में, शासन-संचालन का आधार विधि का शासन हो। व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह की इच्छाओं और आकांक्षाओं को शासन का आधार नहीं होना चाहिए। द्वितीय, संविधानवाद में तीन तत्त्व निहित हैं। राष्ट्रवाद, लोकतंत्र तथा स्वशासन। तृतीय, शासन की सत्ता जनता में ही निहित होनी चाहिए। चतुर्थ, संविधानवाद के अंतर्गत अंतरराष्ट्रीयता विश्व के देशों के बीच मैत्री और सद्भाव पर टिकी होती है। संविधानवाद वस्तुतः आज भी विकास की अवस्था में ही है। आज भी इस संबंध में नए-नए प्रयोग हो रहे हैं। तृतीय विश्व कहलानेवाले देशों में आज भी संविधानवाद का स्वरूप निश्चित नहीं हो पाया है। इसके सम्मुख अनेक चुनौतियाँ हैं, अनेक बाधाएँ हैं। एक ओर इसे पाश्चात्य लोकतंत्र से बल मिल रहा है तो दूसरी ओर इसे साम्यवाद से खतरा भी पैदा हो रहा है। यद्यपि साम्यवाद को संविधानवाद के मॉडेल के रूप में माना गया है, तथापि अनुभव इस बात साक्षी है कि साम्यवादी व्यवस्था संविधानवाद के विकास के अनुकूल नहीं हो पा रही है। इन देशों में साम्यवादी दल संविधानेतर स्तर पर भूमिका अदा कर संविधानवाद की आत्मा पर आघात कर रहा है।

4.5 संविधानवाद की सामान्य विशेषताएँ

संविधानवाद की व्याख्या के क्रम में संविधानवाद की कुछ विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। यहाँ उन विशेषताओं का उल्लेख किया जाना आवश्यक है:-

(1.)संविधानवाद मूल्य-संबद्ध अवधारणा है- संविधानवाद उन मूल्यों, विश्वासों तथा राजनीतिक आदर्शों की ओर संकेत करता है, जो राष्ट्र और समाज को प्रिय हैं और जिनकी रक्षा, प्राप्ति तथा आवश्यक प्रगति के लिए समाज हर प्रकार का त्याग एवं कुर्बानी कर सकता है। यद्यपि सैद्धांतिक रूप से ये विचार एवं आदर्श अभिजनों द्वारा प्रदान किए जाते हैं, परंतु अंततोगत्वा ये विचार एवं आदर्श व्यवहार में विचारशील वर्ग द्वारा जनता तक पहुँचाए जाते हैं।

(2.)संविधानवाद संस्कृति-संबद्ध अवधारणा है- किसी भी देश के मूल्य, आदर्श एवं विचार वहाँ की संस्कृति से संबद्ध या जुड़े हुए होते हैं। वे वस्तुतः संस्कृति की उपज हैं। इस दृष्टिकोण से संविधानवाद भी संस्कृति से संबद्ध रहता है। यदि किसी राजनीतिक समाज में संस्कृति में विविधता या भिन्न्ता पाई जाती है तो यहाँ संविधानवाद विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय-सूचक माना जाता है।

(3.)संविधानवाद गत्यात्मक अवधारणा है- संविधानवाद की यह एक मुख्य विशेषता है कि यह एक गत्यात्मक अवधारणा है। इसका यह अर्थ नहीं है कि संविधानवाद में स्थिरता है ही नहीं। राजनीतिक विकास के लिए गत्यात्मकता एवं स्थायित्व दोनों आवश्यक हैं। संविधानवाद को स्थायित्वयुक्त गत्यात्मक अवधारणा कहना ज्यादा युक्तिसंगत होगा। संविधानवाद पुराने मूल्यों तथा आदर्शों का संकेत तो है ही, यह एक नए मूल्यों एवं विचारों के निर्माण प्राप्ति का भी साधन है। इसी दृष्टि से इसे गत्यात्मक अवधारणा कहा जाता है।

(4.)संविधानवाद सहभागी अवधारणा है- ऐसा देखा गया है कि एक राष्ट्र के मूल्यों, विश्वासों, राजनीतिक आदर्शों तथा संस्कृति के प्रति कई अन्य राष्ट्रों की निष्ठा या आस्था हो सकती है। कई देशों के मूल्य, संस्कृति तथा राजनीतिक आदर्श एकसमान हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, अनेक पाश्चात्य देशों के मूल्यों, विश्वासों तथा राजनीतिक आदर्शों में समानता पाई जाती है। विकासशील लोकतांत्रिक देशों में यद्यपि कई मुख्य असमानताएँ परिलक्षित होती हैं, तथापि स्थूल रूप से संविधानवाद एस-सा ही कहा जा सकता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि संविधानवाद एक सहभागी अवधारणा है।

(5.)साध्यमूलक अवधारणा- संविधानवाद को एक साध्यमूलक अवधारणा के रूप में भी लिया गया है। इसका यह अर्थ नहीं है कि संविधानवाद में साधनों की उपेक्षा की गई है। कोई भी साध्य साधन के बिना संभव नहीं है। इस संदर्भ में हम इतना कह सकते हैं कि संविधानवाद प्रधानतः एक साध्यमूलक अवधारणा है, जिसमें साधनों को स्थान गौण है।

(6.)संविधानजन्य अवधारणा- संविधानवाद संविधानजन्य अवधारणा है। सामान्यतः हर देश के संविधान में वहाँ की आस्थाओं का उल्लेख रहता है। मूल्यों एवं राजनीतिक आदर्शों से युक्त संविधान संविधानवाद की आधारशिला है, जिस पर संविधानवाद की नींव टिकी रहती है।

4.6 संविधानवाद की अवधारणाएँ

संविधानवाद को किसी एक विचारधारा के अंतर्गत बाँधना उचित नहीं है। कई पाश्चात्य राजनीतिक चिंतकों ने संविधानवाद की एक ही अवधारणा को मान्यता दी है। उनके अनुसार उदार लोकतंत्रीय अवधारणा की संविधान की अवधारणा है। यह मत युक्तिमूलक नहीं कहा जा सकता है। संविधानवाद राजनीतिक समाज के आदर्शों, लक्ष्यों, विश्वासों एवं मूल्यों को परिलक्षित करता है। प्रत्येक राजनीतिक समाज के लक्ष्य, आदर्श एवं विश्वास अलग-अलग होते हैं, इसलिए संविधानवाद की एक अवधारणा की मान्यता सही नहीं है। संविधानवाद के संबंध में अब तक जो अवधारणाएँ उपजी है, उन्हें निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है:-

(1) पाश्चात्य अवधारणा

(2) साम्यवादी देशों की अवधारणा और

(3) विकासशील देशों की अवधारणा।

पाश्चात्य अवधारणा

संविधान की पाश्चात्य अवधारणा इस बात का प्रतिपादक है कि संविधानवाद साध्य भी है और साधन भी। यह मूल्यविहीन तथा मूल्यजन्य दोनों है। कोई भी संविधान आदर्श एवं लक्ष्यों से परे नहीं होता है, इसलिए संविधानवाद को मूल्यविहीन कहना उचित नहीं है। पाश्चात्य अवधारणा के अनुसार संविधानवाद केवल सरकार के अंगों के संगठन एवं शक्तियों का ही उल्लेख नहीं करता,वरनस्वतंत्रता, समानता, न्याय तथा अधिकारों को भी यथोचित महत्त्व देता है।

संविधानवाद का मुख्य लक्ष्य वैसे मूलभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन करना है, जिसके अंतर्गत संविधान और सरकार के बीच के अंतर स्पष्ट रूप से परिलक्षित हों। संविधानवाद सरकार को अपने आदर्शों एवं लक्ष्यों के अनुरूप काम करने के लिए आवश्यक व्यवस्था करता है। यही कारण है कि शासन-संचालन को नियमित करने के लिए संविधान विभिन्न प्रकार के अवरोधों और प्रतिबंधों की व्यवस्था करता है। ये प्रतिबंध सरकार की असीमित एवं स्वेच्छाचारी शक्तियों पर नियंत्रण रखते हैं। सारतः संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा एक ऐसे सांविधानिक राज्य की स्थापना करना चाहती है, जो स्थापित एवं मान्य विधि के सिद्धांतों और अभिसमयों की सीमा के अंतर्गत काम करें। यदि संविधान या सरकार में परिवर्तन होना हो तो वह शांतिपूर्ण ढंग से हो। पाश्चात्य संविधानवाद को 'उदारवाद का दर्शन' कहा जाता है।

साम्यवादी अवधारणा

संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा मार्क्स तथा लेनिन की विचारधारा पर आधृत है। इस विचारधारा के अनुसार राज्य एक शोषण-यंत्र है, जिसके द्वारा पूँजीपतिवर्ग सर्वहारावर्ग या श्रमिकों का शोषण करते हैं। इसी विचारधारा से प्रभावित सोवियत संविधानवाद के प्रवर्तकों का यह मत है कि संविधान एक साधन मात्र है, जिसका उद्देश्य समाजवादी विचारधारा को लागू करना है। संविधान सर्वहारावर्ग एवं साम्यवादी पार्टी का उपकरण है, जिसके द्वारा रूस या चीन में वर्गविहीन तथा राज्यविहीन समाज की स्थापना की जा सके। सोवियत रूस, चीन तथा अन्य साम्यवादी देशों में संविधान का उद्देश्य सरकार की शक्तियों को सीमित करना नहीं,वरनउसमें विस्तार करना है।

साम्यवादी राज्यों में पार्टी का प्रभुत्व रहता है। इन देशो में एकदलीय पद्धति है। साम्यवादी पार्टी सर्वहारावर्ग का संरक्षक एवं प्रतिपालक मानी जाती है। इन देशों में पार्टी की प्रधानता सर्वोच्च है। संविधान गौण है। संविधान का उद्देश्य केवल पार्टी को साम्यवादी लक्ष्यों को पूरा करने में सहायता प्रदान करना है। साम्यवादी देशों में सोवियत व्यवस्था ही प्रतिमान के रूप में स्वीकार किया गया है। चीन और सोवियत रूस के बीच विचारधाराओं की भिन्नता का संकेत है। कुछ पूर्वी यूरोप के राज्यों में भी सोवियत रूस तथा चीन से भिन्न राजनीतिक व्यवस्था स्थापित की गई है। इन भिन्नताओं के बावजूद सोवियत रूस ही साम्यवादी देशों का प्रतिमान है, मॉडेल है।

साम्यवादी विचारकों ने पाश्चात्य संविधानवाद की भर्त्सना की है। उनके मतानुसार पाश्चात्य देशों में सरकार और संविधान शोषण के यंत्र हैं। संसदीय शासन-प्रणाली लोकतंत्र के नाम पर छलावा है। उनका कहना है कि साम्यवादी व्यवस्था वास्तविक रूप में लोकतांत्रिक व्यवस्था है, क्योंकि यहाँ समस्त सर्वहारावर्ग शासन-प्रबंध में सहयोगी है। दूसरी ओर पाश्चात्य विचारकों का यह मत है कि साम्यवादी देश संविधानवाद के अनुकूल नहीं है, क्योंकि यहाँ पार्टी का अधिनायकवाद है। यहाँ संपूर्ण शासन-व्यवस्था पर पार्टी का अधिनायकवाद है।

यह सत्य है कि पश्चिमी देशों की तरह साम्यवादी देश संविधानवाद के लिए अनुकूल वातावरण तैयार नहीं कर पाए हैं, परन्तु आज साम्यवादी देशों को संविधानवाद के इतिहास के पृष्ठों से निकाल फेंकना भी संभव नहीं। लोकतंत्र के झंडे को ऊँचा उठानेवाले पाश्चात्य देश भी यह दावा नहीं कर सकते कि वहाँ शासन-व्यवस्था में अधिक-से-अधिक लोग भाग लेते हैं। आम चुनावों को छोड़कर अधिकांश अवसरों पर कुछ ही लोग निर्णयकारी प्रक्रिया में भाग लेते हैं।

विकासशील देशों में संविधानवाद की अवधारणा

विकासशील देशों में संविधानवाद के स्वरूप की कोई निश्चित पहचान नहीं बनी है। यहाँ संविधानवाद प्रयोगात्मक अवस्था में है। तृतीय विश्व के देशों की समस्याएँ भिन्न-भिन्न हैं। साथ-ही-साथ उनमें परिपक्वता का भी अभाव है। कुछ देश पाश्चात्य संविधानवाद से

प्रभावित दिख पड़ते हैं। कुछ देशों पर साम्यवादी व्यवस्था की छाप दिखाई पड़ती है। कुछ देशों में उथल-पुथल के कारण सैनिक शासन स्थापित हो गया है।

4.7 संविधानवाद की समस्याएँ

संविधानवाद आज इस विकसित और उन्नत अवस्था में पहुँच गया है कि इसके नष्ट होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसका भविष्य भी अंधकारमय नहीं। परंतु, यह भी मान लेना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता कि संविधानवाद का मार्ग कंटकमुक्त है। आज विश्व के राजनीतिक रंगमंच पर इतने उतार-चढ़ाव हो रहे हैं कि यदा-कदा ऐसा लगता है कि संविधान का भविष्य खतरे में है। जिस ढंग से तृतीय विश्व के देशोंमेंसैनिक शासनों की स्थापना हो रही है, उससे कभी कभी संविधानवाद के स्वास्थ्य के संबंध में आशंकाओं का उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं लगता। संविधानवाद के सम्मुख कई समस्याएँ हैं, कई चुनौतियाँ हैं। जब तक इन समस्याओं का सही ढंग से निराकरण नहीं हो पाता, तब तक संविधानवाद का भविष्य आशंकाओं और दुष्यंताओं के झूले में झूलता रहेगा।

अभ्यास प्रश्न

1.“सरकार के निरंकुश कार्यों को सीमित करना संविधान का कार्य है।“ यह विचार किस लेखक का है।

2.कौन-सा विचारक पाश्चात्यक राजनीतिक चिंतन में संविधानवाद् का जनक माना जाता है।

4.8 सारांश

यह सत्य है कि समाजवादी विचारधारा के अंतर्गत कुछ ऐसे तत्त्व हैं। जिनसे संविधानवाद के लिए समस्याएँ पैदा हो सकती है। परंतु, आधुनिक संदर्भ में समाजवाद को संविधानवाद का विरोधी नहीं माना जाता है। आज के युग की तीन मुख्य अवधारणाएँ हैं-राष्ट्रवाद, समाजवाद और लोकतंत्र। संविधानवाद की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि किस सीमा तक इसके अंतर्गत इन धारणाओं का समावेश किया जाता है और इनके बीच समन्वय स्थापित किया जाता है। इंगलैंड के संविधान में फेबियनवाद को स्थान दिया गया है। भारतीय संविधान ने भी लोकतांत्रिक समाजवाद के लिए आधार तैयार किया है। अतः, आधुनिक संविधानवाद को भी नई आर्थिक व्यवस्थाओं को स्थान एवं महत्त्व देना होगा।

समाजवाद-संविधानवाद समीकरण का अतीत भले ही निराशाजनक रहा हो, दोनों में कितनी ही भिन्नता रही हो, आज समाजवाद के सिद्धांतों को लोकतंत्र तथा संविधानवाद के सिद्धांतों से मिलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। आज यह नहीं कहा जा सकता कि सोवियत रूस में संविधानवाद असफल हो गया है या नष्ट हो गया है। सोवियत रूस में साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना हुए साठ वर्ष हो गए, परंतु वहाँ के लोगों में इस व्यवस्था के प्रति न तो असंतोष है और न ही गंभीर विरोध। पाश्चात्य लोकतंत्र के साथ संविधानवाद को मिला देना उचित नहीं है। लोकतंत्र के अनेक प्रतिमान हो सकते हैं। यह सत्य है कि लोकतंत्र संविधानवाद के विकास के लिए ज्यादा अनुकूल है, परंतु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि समाजवाद लोकतंत्र का शत्रु है। आज साम्यवादी देशों में संविधानवाद अपने ढंग से बढ़ रहा है। अतः, आज के संदर्भ में समाजवाद को संविधानवाद का विरोधी कहना उचित नहीं है।

4.9 शब्दावली

1.संविधानवाद-संविधानवाद उन मान्यताओं, आस्थाओं तथा मानव मूल्यों का नाम है, जिनका संविधान में वर्णन तथा समर्थन होता है और जिनकी उपलब्धि तथा सुरक्षा हेतु राजनीतिक शक्ति पर प्रभावशाली नियंत्रणों एवं प्रतिबंधों की व्यवस्था होती है।

2.संविधान- वह विधान, कानून या सिद्धांत जिसके अनुसार किसी राज्य, राष्ट्र या संस्था का संघटन, संचालन तथा व्यवस्था होती है।
3.कानून का शासन- इसका अर्थ है कि कानून सर्वोपरि है तथा वह सभी लोगों पर समान रूप से लागू होती है।

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स्ट्रांग,2. अरस्तू

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. C.F.Strong: Modern Political Constitutuions, 1966, p.11
2. William G.Andrews: Constituion and constitutionsalism, 1971, p. 13
3. Charles h. Macdlwain: Constitutionalism : ancient and modern, 1940, p. 4

4.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. George H. Sabine: A history of political theory
2. Robert Dahl: A preface to democratic theory
3. R.C. Macridis and B.E. Brown: Comparative politics
4. K.C. Wheare: Modern Constitution

4.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संविधानवाद से क्या समझते हैं ? उसकी मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करें।
2. संविधानवाद के मुख्य आधारों का उल्लेख कीजिए तथा संविधान एव संविधानवाद के बीच अन्तर बताइए।
3. संविधानवाद के उद्भव एवं विकास का अनुरेखण करें।
4. संविधानवाद की मुख्य अवधारणाओं का उल्लेख करें।

इकाई 5 संसदात्मक शासन प्रणाली

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 संसदात्मक शासन प्रणाली- अर्थ एवं परिभाषा

5.3 संसदात्मक शासन प्रणाली की विशेषताएं

5.4 संसदीय शासन प्रणाली के गुण

5.5 संसदीय शासन प्रणालीके दोष

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

सभी मानवीय समुदायों ने सामाजिक संबंधो के संयोजन, संघर्षों की रोकथाम और समाधान तथा समाज के समान उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, कोई न कोई नियंत्रण व्यवस्था अपना रखी है। सत्ता और नियंत्रण की इस व्यवस्था को सरकार (शासन) कहा जाता है। मूलतः सरकार (शासन) के तीन कार्य होते हैं। पहला- कानून बनाना, दूसरा- कानून लागू करना और तीसरा-विवादों को सुलझाना। इन कार्यो को पूरा करने वाले सरकार के तीन अंग होते है- विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका। विधानमण्डल व कार्यपालिका के पारस्परिक संबंधों के आधार पर सरकारों का वर्गीकरण करते हुए दो प्रकार की सरकारें होती हैं- 1- संसदीय सरकार और 2- अध्यक्षीय सरकार। इस इकाई के अंतर्गत हम संसदीय शासन व्यवस्था को विस्तृत रूप से समझेंगे।

संसदीय सरकार शासन की एक लोकतांत्रिक प्रणाली है जो किसी देश की कार्यकारी और विधायी शाखाओं के बीच घनिष्ठ संबंध पर जोर देती है। यह यूनाइटेड किंगडम, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, भारत और दुनिया भर के कई देशों में व्यापक रूप से प्रचलित है। संसदीय प्रणाली में, कार्यकारी शाखा, जिसका नेतृत्व प्रधान मंत्री या उसके समान पद पर होता है, विधायी निकाय से उत्पन्न होती है और उसके प्रति जवाबदेह रहती है। संसदीय सरकार की परिभाषित विशेषताओं में से एक कार्यकारी और विधायी शाखाओं के बीच शक्तियों का संलयन है। राष्ट्रपति प्रणाली के विपरीत जहां दो शाखाएं अलग और स्वतंत्र होती हैं, संसदीय प्रणाली दोनों का विलय करती है, जिससे एक अन्योन्याश्रित संबंध बनता है। यह अंतर्संबंध सहयोग, सहकार्यता और अधिक सरल निर्णय लेने की प्रक्रिया को बढ़ावा देता है। निर्वाचित प्रतिनिधियों से बनी संसद, संसदीय सरकार के कामकाज में केंद्रीय भूमिका निभाती है। यह बहस, विधायी गतिविधि और कार्यकारी शाखा की निगरानी के लिए मंच के रूप में कार्य करता है। विभिन्न राजनीतिक दलों और निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले संसद सदस्य, कानूनों को आकार देने और पारित करने, सरकारी कार्यों की जांच करने और सरकार को उसके निर्णयों और नीतियों के लिए जवाबदेह बनाने में योगदान देते हैं।

यदि सामान्य भाषा में हम इसे समझें तो ऐसे समझ सकते हैं, जिस शासन व्यवस्था में कार्यपालिका का जन्म व्यवस्थापिका में से होता है और कार्यपालिका, विधानमण्डल के नियंत्रण में कार्य करती है एवं पूर्णरूप से उसके प्रति ही उत्तरदायी होती है तो ऐसी सरकार (शासन व्यवस्था) को संसदीय सरकार या मंत्रीमण्डलीय शासन या उत्तरदायी शासन कहते हैं।

ब्रिटेन संसदीय शासन का सर्वोत्तम व आदर्श उदाहरण है, वह इस शासन व्यवस्था की जननी भी है। भारत में भी ब्रिटिश संसदीय पद्धति को ग्रहण किया गया है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप जान पाएंगे:

1. संसदात्मक शासन प्रणाली के अर्थ एवं परिभाषा को जान पायेंगे।
2. संसदात्मक शासन प्रणाली के विशेषताओं के विषय में जान पायेंगे।
3. संसदात्मक शासन प्रणाली के गुण एवं दोषों के विषय में विस्तार से जान पायेंगे।

5.2 संसदात्मक शासन प्रणाली- अर्थ एवं परिभाषा

संसदात्मक/संसदीय शासन प्रणाली में कार्यपालिका की शक्तियाँ मंत्रीपरिषद् के हाथों मे रहती है और यह कार्यपालिका व्यवस्थापिका या उसके निचले सदन के प्रति उत्तरदायी होती है, राज्याध्यक्ष नाममात्र का शासक या प्रधान होता है।

प्रो0 गार्नर ने संसदात्मक या मंत्रीमंडलीय सरकार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ''संसदीय सरकार वह प्रणाली है, जिसमें वास्तविक कार्यपालिका (मंत्रीपरिषद्) अपने विधायी और प्रशासनिक कार्यों के लिए प्रत्यक्ष और कानूनी तौर पर, विधानमण्डल अथवा उसके एक सदन (प्रायः लोकप्रिय सदन) के प्रति और राजनीतिक तौर पर निर्वाचक गणों के प्रति उत्तरदायी होती है, जबकि नाममात्र की कार्यपालिका (राज्य का प्रधान) अनुत्तरदायी स्थिति में होता है।''

गैटिल का, संसदात्मक शासन से अभिप्राय, शासन के उस प्रकार से है जिसमें कि प्रधानमंत्री और मंत्रीमण्डल से मिलकर बनने वाली वास्तविक कार्यपालिका अपने कार्यों के लिए व्यवस्थापिका के प्रति वैधानिक रूप से उत्तरदायी होती है।

यहाँ पर मंत्रीमण्डल और मंत्रीपरिषद् शब्दों का प्रयोग हुआ है। दरअसल कार्यपालिका जो वास्तविक शासक या प्रधान और उसके मंत्रियों से मिलकर बनती है में दो स्तर के मंत्री होते हैं। पहला- केन्द्रीय मंत्री और दूसरा- राज्य मंत्री। राज्य स्तर के मंत्री भी दो प्रकार के होते हैं- स्वतंत्र प्रभार के मंत्री और राज्यमंत्री। स्वतंत्र प्रभार के मंत्री उन मंत्रियों को कहा जाता है, जिस विभाग में केन्द्र स्तर का मंत्री न हो और वह अपने विभाग के निणर्य स्वयं ले सकते है। जबकि राज्यमंत्री केन्द्रीय मंत्री के सलाह से ही कार्य करते है और निर्णय लेते है। मंत्रीमण्डल में वास्तविक शासक या प्रधान और केन्द्रीय मंत्री होते हैं, जबकि मंत्रीपरिषद् में वास्तविक शासक या प्रधान और केन्द्र व राज्य स्तरीय सभी मंत्री होते हैं।

5.3 संसदात्मक शासन प्रणाली की विशेषताएं

संसदीय शासन प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. वास्तविक और नाममात्र की कार्यपालिका का भेद- संसदीय प्रणाली में दो प्रकार की कार्यपालिकाएं होती हैं- पहला नाममात्र की कार्यपालिका, और दूसरा वास्तविक कार्यपालिका। राज्य का प्रधान, नाममात्र की कार्यपालिका और प्रधानमंत्री सहित मंत्रीपरिषद् वास्तविक कार्यपालिका होती है। ब्रिटेन में वर्तमान समय में रानी और भारत में

राष्ट्रपति नाममात्र के प्रधान ही हैं। ये मंत्रीपरिषद् के निर्णयों के अनुसार ही अपने कार्य करते है। शासन के अच्छे या बुरे कार्यों का श्रेय मंत्रीपरिषद् को ही मिलता है।

2. कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में अभिन्न संबंध- संसदीय शासन में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में अभिन्न संबंध होता है। कार्यपालिका का व्यवस्थापिका में से चयन होता है। मंत्रीगण व्यवस्थापिका के सदस्य होते है, वे व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं, व्यवस्थापिका वाद-विवाद, प्रश्न पूछकर, काम रोको प्रस्ताव, अविश्वास प्रस्ताव आदि द्वारा मंत्रिपरिषद को नियंत्रित करती है और हटा भी सकती है। दूसरी ओर कार्यपालिका के सदस्य अर्थात मंत्री व्यवस्थापिका की कार्यवाहियों में भाग लेते हैं। व्यवस्थापिका का नेतृत्व करते हैं, अधिकांश कानून उन्हीं की इच्छानुसार बनते हैं। आवश्यकतानुसार मंत्रीपरिषद् निचले अर्थात लोकप्रिय सदन को भंग भी करा सकती है।

3. राज्य के अध्यक्ष द्वारा सरकार के अध्यक्ष की नियुक्ति- राज्य के अध्यक्ष द्वारा सरकार के अध्यक्ष (प्रधानमंत्री) की नियुक्ति की जाती है। यह नियुक्ति लोकसदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता की होती है, लेकिन जब किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो तो ऐसी स्थिति में सबसे बड़े दल के नेता को, एक से अधिक दलों में गठित दल के नेता को अथवा सर्वाधिक संख्या का समर्थन प्राप्त करने वाले नेता को प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त किया जाता है। पिछले अनेक वर्षों से यह परम्परा सी बन गई है।

4. कार्यपालिका की अवधि की अनिश्चितता- जैसा कि स्पष्ट है, इस शासन में मंत्रीपरिषद् का कार्यकाल निश्चित नहीं होता है, मंत्रीपरिषद्उसी समय तक रह सकती है जब तक कि उसे निचले सदन में बहुमत का समर्थन प्राप्त है।

5. सामूहिक उत्तरदायित्व- इसका अर्थ यह है कि किसी एक मंत्री के कार्य के लिए अकेला वही उत्तरदायी नहीं, वरन् समस्त मंत्रीपरिषद् उत्तरदायी होती है। कारण यह है कि मंत्रिपरिषद में निर्णय सामूहिक रूप से ही होते है। इस प्रकार सामूहिक उत्तरदायित्व के कारण एक अच्छे शिक्षा मंत्री को बड़े व असफल रहे अन्य मंत्री के कारण त्यागपत्र देना पड़ सकता है। संक्षेप में मंत्रीगण एक साथ तैरते हैं, एक साथ डूबते हैं, वे सब एक के लिए है, और एक सब के लिए।

6 राजनीतिक सजातीयता- इसका अर्थ यह है कि सभी मंत्री एक ही राजनीतिक विचार और सिद्धान्त के हों , इसके लिए आवश्यक है कि साधारणतः वे एक ही राजनीतिक दल के हों, यद्यपि असाधारण स्थिति में मिली-जुली मंत्रीपरिषद्भी बनती है। गंभीर संकट के समय अन्य दल के लोगों को लेकर राष्ट्रीय सरकार बनायी जा सकती है। जब संसद में कोई दल स्पष्ट बहुमत में न हो तो दो या दो से अधिक दल मिलकर मिली जुली सरकार का गठन कर सकते हैं। मंत्रीपरिषद्की सजातीयता, उसकी एकता व सामूहिक उत्तरदायित्व की दृष्टि से आवश्यक है।

7. मंत्रीमण्डल की एकता- मंत्रीमण्डल एक इकाई है, इसलिए मंत्रीमण्डल में जो निर्णय बहुमत से हो जाते है, उन्हें प्रत्येक मंत्री को स्वीकार करना पड़ता है या उन्हें मंत्री पद से त्यागपत्र देना पड़ता है। इस प्रकार मंत्रीमण्डल में रहते हुए

कोई मंत्री किसी मतभेद को संसद में या सार्वजनिक रूप से प्रकट नहीं कर सकता है। सभी मंत्री एक ही स्वर में बोलते हैं।

8. प्रधानमंत्री का नेतृत्व- संसदीय सरकार में प्रधानमंत्री का विशिष्ट स्थान होता है। वह मंत्रीपरिषद्का नेता होता है, उसका कप्तान होता है, मंत्रीमण्डल का आधार स्तम्भ होता है, लोकसदन का नेता होता है, राष्ट्रीय प्रशासन का संचालक होता है। मंत्रियों की नियुक्ति व निष्कासन करता है, विभागों में परिवर्तन करता है। प्रधानमंत्री मंत्रीपरिषद् का न केवल निर्माण करता है, वरन् वह उसके जीवन तथा मृत्यु का केन्द्र-बिन्दु भी है। प्रधानमंत्री किसी मंत्री से असंतुष्ट होने पर उससे त्यागपत्र मॉग सकता है। लार्ड मॉर्ले ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री को ''मंत्रीमण्डल रूपी भवन की आधारशिला कहा है''।

9. गोपनीयता- मंत्रीमण्डल की कार्यवाही गुप्त रहती है। सभी मंत्री गोपनीयता की शपथ ग्रहण करते हैं। मंत्रिगण मंत्रिमंडल के निर्णयों को या मतभेदों को संसद में या सार्वजनिक रूप से प्रकट नहीं कर सकते। मंत्री उचित समय पर ही कैबिनेट के निर्णयों को जनता तक पहुँचाते हैं।

5.4 संसदीय शासन प्रणाली के गुण

संसदात्मक शासन प्रणाली के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं।

1. कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के बीच संघर्ष नहीं - संसदीय शासन प्रणाली का एक गुण यह है कि व्यवस्थापिका (संसद) और कार्यपालिका में मतैक्य रहता है संघर्ष नहीं। दोनों अंग एक दूसरे की आवश्यकता और उपादेयता को समझते हैं, मंत्री व्यवस्थापिका में बैठते हैं, इच्छानुसार विधेयक व बजट आदि पारित कराते हैं, और संसद के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पालन करते हैं। ब्रिटेन में संसद व कैबिनेट के बीच संघर्ष देखने को नहीं मिलता है, जबकि अमेरिका में, जहॉ कि अध्यक्षीय शासन है, कॉग्रेस (व्यवस्थापिका) ओर राष्ट्रपति में संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है।

प्रो0 डायसी ने लिखा है कि ''मंत्रीमण्डलात्मक सरकार की स्थापना कार्यपालिका और विधायिका शक्तियों के संयोजन पर आधारित है, साथ ही वह इन दोनों के बीच समरूप संबंधों को बनाये रखती हैं।''

2. शीघ्र निर्णय- शक्तियॉ मंत्रिमंडल में निहित होती हैं, जिसका संसद में बहुमत होता है। अतः वह शीघ्र निर्णय लेने में सक्षम हैं, दल का बहुमत होने के कारण वह आवश्यक कानून बनवा सकती है।

3. कार्यपालिका निरंकुश नहीं हो सकती- संसदीय सरकार का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसमें कार्यपालिका निरंकुश नहीं हो सकती है। दूसरे शब्दों में यह सरकार उत्तरदायी सरकार है, जिसमें संसद मंत्रीपरिषद्से प्रश्न व पूरक प्रश्न पूछकर, काम रोको प्रस्ताव व अविश्वास प्रस्ताव द्वारा उसे नियंत्रित करती है। किसी मंत्री के कार्यो के लिए वह जॉच समिति भी नियुक्त कर सकती है। निःसंदेह यह शासन प्रजातंत्र शासन के अधिक निकट है।

4. उत्तरदायित्व का निर्धारण सरलता से- संसदीय शासन में उत्तरदायित्व का निर्धारण भी सरलता से हो जाता है, क्योंकि विधि निर्माण व प्रशासन का कार्य एक ही दल के हाथों में रहता है।

5. उच्चकोटि का शासक वर्ग- संसदीय सरकार की बागडोर प्रतिष्ठित व योग्य व्यक्तियों के हाथों में रहती है। लास्की ने ब्रिटेन के संदर्भ में लिखा है कि ''मंत्री लोग माने हुए संसदीय नेता होते हैं, मंत्री बनने से पूर्व वे संसद सदस्यों के रूप में राजनीतिक जीवन का अच्छा अनुभव कर चुके होते हैं।'' मंत्रियों को अपनी योग्यता दिखाने का भी अवसर मिलता है और वे स्वंय भी लोकप्रिय होने के लिए जनहित में कार्य करते हैं। अध्यक्षीय शासन में मंत्री, राष्ट्रपति के केवल सहालकार मात्र होते हैं।

6. लचीली व्यवस्था- प्रो0डायसी के अनुसार लचीलापन, संसदीय शासन का महत्वपूर्ण गुण है। यह शासन नयी परिस्थितियों व संकटकाल का सामना आसानी व कुशलता से कर सकता है। बेजहॉट के शब्दों में '' इस प्रणाली के अन्तर्गत लोग, अवसर के योग्य ऐसा शासक निर्वाचित कर सकते हैं जो राष्ट्रीय संकट में से राज्य के जहाज को सफलतापूर्वक ले जाने में विशिष्ट रूप में दक्ष हो।'' यह उल्लेखनीय है कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटेन में चेम्बरलेन के स्थान पर चर्चिल को प्रधानमंत्री बनाया गया था, ऐसा परिवर्तन अध्यक्षीय शासन में सम्भव नहीं है। इसमें गम्भीर संकट के समय राष्ट्रीय सरकार बनाने की व्यवस्था होती है।

7. राजनीतिक चेतना और शिक्षा- इस शासन से जनता में राजनीतिक चेतना पैदा होती है, लोगों को राजनीतिक प्रशिक्षण भी मिलता है, न केवल चुनावों के अवसर पर, वरन् राजनीतिक दल समय-समय पर विभिन्न विचारधाराओं व समस्याओं को जनता के समक्ष रखते हैं और अपना मत प्रकट करते हैं, जो समाचार पत्रों, सभा-सम्मेलनों, दलीय प्रत्रिकाओं आदि के माध्यम से जनता तक पहुँचते हैं और उन्हें जागरूक रखते हैं।

8. राज्याध्यक्ष, दलबन्दी से दूर- संसदीय प्रणाली में राज्य के प्रधान का पद बहुत हितकारक होता है, क्योंकि वह राजनीतिक दलबन्दी से परे रहता है। वह राष्ट्र की एकता का प्रतीक रहता है, वह सरकार के आलोचनात्मक मित्र के रूप में कार्य करता हैं।

9. वैकल्पिक शासन की व्यवस्था- संसदीय शासन का एक गुण यह भी है कि यदि किसी कारणवश सत्तारूढ़ दल अपना त्यागपत्र दे दे तो तुरन्त ही विरोधी दल को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करके वैकल्पिक सरकार बन सकती है। शासन के कार्यों में रूकावट पैदा नहीं होती है। सरकार का परिवर्तन बहुत ही स्वाभाविक ढंग से हो जाता है। सन् 1979 में देसाई सरकार का पतन व विरोधी दल के नेता चरणसिंह को सरकार बनाने हेतु आमंत्रित किया गया।

10. जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व - डायसी के शब्दों में ''संसदीय प्रणाली के मंत्रीमण्डल को जनमत के प्रति बहुत सचेत रहना पड़ता है। मंत्रीमण्डल जनता की इच्छा व उसकी आलोचनाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता है या शासन व्यवस्था जनता के प्रति उत्तरदायी होती है।

5.5 संसदीय शासन प्रणाली के दोष

संसदीय शासन प्रणाली के दोष निम्नलिखित हैं।

1. अस्थिर शासन- संसदीय शासन का पहला दोष यह है कि यह अस्थिर शासन है, क्योंकि मंत्रीपरिषद् का कार्यकाल निश्चित नहीं होता है। बार-बार मंत्रीपरिषद् के बदलने से प्रशासनिक नीतियों में भी स्थिरता नहीं रहती और इस प्रकार जनता के हितों को हानि पहुँचती है। यदि किसी देश में बहुदलीय प्रणाली है तो वहाँ के लिए तो यह स्थिति और भी भयंकर हो जाती है। फ्रांस के तीसरे और चौथे गणतंत्र इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। ब्रिटेन में सरकार की स्थिरता के पीछे वहॉ की द्विदलीय प्रणाली है।

2. दुर्बल कार्यपालिका- अध्यक्षीय शासन की अपेक्षा संसदीय शासन में कार्यपालिका दुर्बल रहती है, क्योंकि पदच्युत् होने के डर से वह संसद को प्रसन्न करने में लगी रहती है। मंत्रिपरिषदीय नीतियों का प्रयोग साहसपूर्वक नहीं कर पाती है।

3. विधानमण्डल में समय और शक्ति का दुरूपयोग- संसदीय शासन में विभिन्न राजनीतिक दलों का पारस्परिक विरोध उग्र रूप धारण कर लेता है। विरोधी दल की आलोचना भी सदैव रचनात्मक नहीं होती हैं। सत्तारूढ़ दल और विरोधी दलों में आरोपों और प्रत्यारोपों का दौर चलता ही रहता है। इसके कई बडें परिणाम निकलते हैं। जैसे विधानमण्डल में समय नष्ट होता है, कानून बनाने में विलम्ब होता है ओर जनता में उदासीनता आती है।

4. उग्र राजनीतिक दलबन्दी- संसदीय शासन राजनीतिक दलबन्दी को प्रोत्साहन देता है। **लार्ड ब्राइस** के शब्दों में ''यह प्रथा दलबन्दी की भावना में वृद्धि करती है और इसे सदैव उबलती रखती है। यदि राष्ट्र के सामने महत्वपूर्ण नीति संबंधी विषय न हो तो भी इसमें पद प्राप्त करने की लड़ाई बनी रहती है। एक दल के पास पद होता है, दूसरा इसे लेने की इच्छा रखता है और यह झगड़ा चलता रहता है क्योंकि पराजित होने के शीघ्र बाद ही हारा हुआ दल जीते हुए दल को हटाने के लिए अभियान आरम्भ कर देता है।''

5. बहुमत दल की निरंकुशता का भय- संसदीय शासन में बहुमत दल संसद और देश में निरंकुशता का व्यवहार करता है। ब्रिटेन और भारत में प्रायः कैबिनेट के अधिनायकतंत्र की बात कही जाती है। **प्रो0 लास्की** ने ब्रिटिश कैबिनेट के संदर्भ में कहा है कि ''यह निश्चय ही कार्यपालिका को अत्याचारी बनने का अवसर देती है। यदि कार्यपालिका चाहे तो छोटे से छोटे विषय को विश्वास का प्रश्न बनाकर संसद को अपनी बात को मानने वाले केवल एक अंग मात्रा बनने के लिए बाध्य कर सकती है।'' रैम्जैम्योर तो संसदीय शासन को कैबिनेट की नहीं केवल एक व्यक्ति-प्रधानमंत्री की तानाशाही मानता हैं।

6. शक्ति पृथक्करण, सिद्धान्त की उपेक्षा- क्योंकि संसदीय शासन में व्यवस्थापिका और कार्यपालिका में समन्वय रहता है। अतः शक्ति पृथक्करण के अभाव में न केवल व्यवस्थापिका की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है वरन् नागरिकों

की स्वतंत्रता के अपहरण का डर भी बना रहता है।

7. संकट के समय दुर्बल शासन- डायसी जैसे विचारकों का मत है कि युद्ध या राष्ट्रीय संकट के समय संसदीय शासन अनुपयुक्त रहता है। कारण यह है कि निर्णय लेने से पूर्व मंत्रीमण्डल में पर्याप्त वाद-विवाद करना पड़ता है। मतभेद होने की स्थिति में प्रधानमंत्री को निर्णय लेने में कठिनाइओं का सामना करना पड़ता है। अधिकांश समय विचार-विमर्श व वाद-विवाद में नष्ट हो जाता है। मंत्रीपरिषद् का अधिकांश समय संसद में अपनी नीतियों को स्पष्ट करने, संसद सदस्यों के प्रश्नों के उत्तर देने तथा वाद-विवाद में व्यतीत हो जाता है। प्रो0 गिलक्राइस्ट के शब्दों में ''शान्ति के समय में वाद-विवाद करना संसदीय शासन का गुण है, परन्तु युद्धकाल में यह इसके सबसे बड़े दोषों में से एक है।''

8**. नौकरशाही का शासन पर अनुचित प्रभाव**- संसदीय शासन में मंत्री पद उनको दिया जाता है जो दल में अपना प्रभाव रखते हैं, जिन्हें राजनीतिक हथकंडे आते हैं। योग्यता के आधार पर तो कम लोगों को ही मंत्री पद मिलता है। फिर मंत्रियों का अधिकांश समय संसदीय वाद-विवादों में, दल की बैठकों में, उद्घाटन समारोह आदि में व्यतीत होता है। फलस्वरूप मंत्री नौसिखिए बने रहते हैं और विशेषज्ञों अर्थात सिविल सेवकों के हाथों में वे कठपुतली बने रहते हैं। रैम्जेम्यूर ने ब्रिटेन के संदर्भ में लिखा है कि ''मंत्री उत्तरदायित्व की आड़ में नौकरशाही पनपती है।''

9. निजी कार्यक्षेत्र में विमुखता- सिजविक के अनुसार संसदीय प्रणाली का एक दोष यह है कि कई बार कार्यपालिका अपने प्रशासनिक कार्यों से विमुख होकर विधायनी कार्यों में जुट जाती है, इसी प्रकार संसद कानून बनाने से विमुख होकर शासन कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप करने लगती है।

10. देश-हित का उल्लंघन- आलोचकों का यह भी कहना है कि संसदीय शासन सत्तारूढ़ दल के द्वारा अपने दलीय स्वार्थ में ही होता है। इस शासन में राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा का भय सदैव बना रहता है। अपने दल के हितों को ध्यान में रखकर ही मामलों का निपटारा होता है। फलस्वरूप प्रजातंत्र का ह्रास होता है।

11. बहुदलीय प्रणाली में सरकार बनाने में कठिनाई- संसदीय शासन उन देशों के लिए उपयुक्त नहीं है जहाँ कि बहुदलीय प्रणाली है। कारण यह है कि एक दल को जब स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता तो मिली-जुली सरकार बनती है जो कि असफल सिद्ध होती है। फ्रांस ने बहुदलीय प्रणाली के कारण संसदीय प्रणाली को छोड़ दिया क्योंकि इसके कारण यहाँ सरकार में अस्थिरता बनी रहती थी। पिछले कुछ वर्षो से भारत में केन्द्र में यह स्थिति बनी हुई है।

अभ्यास प्रश्न-

1. संसदात्मक शासन प्रणाली का जनक किस देश को माना जाता है?

क. भारत ख. अमेरिका ग. ब्रिटेन घ. जापान

2. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली का जनक किस देश को माना जाता है?

क. अमेरिका ख. भारत ग. ब्रिटेन घ. फ्रान्स

5.6 सारांश

निष्कर्षतः, संसदीय सरकार दुनिया भर के कई देशों में लोकतांत्रिक शासन के एक प्रमुख और सफल मॉडल के रूप में खड़ी है। इसकी शक्तियों का संलयन, कार्यकारी और विधायी शाखाओं के बीच सहयोग पर जोर, और संसद के प्रति जवाबदेही निर्णय लेने और शासन में इसकी प्रभावशीलता में योगदान करती है। आम सहमति-निर्माण, लचीलेपन और स्थिरता को बढ़ावा देकर, संसदीय प्रणाली समावेशी और उत्तरदायी शासन को बढ़ावा देती है जो लोगों के विविध हितों और दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करती है। जबकि पार्टी अनुशासन और कार्यकारी प्रभुत्व जैसी चुनौतियाँ मौजूद हैं, संसदीय सरकार एक लचीली और अनुकूलनीय प्रणाली बनी हुई है जो प्रतिनिधित्व, जवाबदेही और लोकतांत्रिक भागीदारी के सिद्धांतों को कायम रखती है।

5.7 शब्दावली

संयोजन- व्यवस्थित करना, विशिष्ट- प्रमुख/मुख्य या महत्वपूर्ण, सजातीयता- एक जाति विशेया का होना/समान्ता,

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग 2. क

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधुनिक तुलनात्मक राजनीति- पीटर एच0 मार्कल

राजनीति विज्ञान एक परिचय- पिनांक एवं स्मिथ

संवैधानिक सरकारें और लोकतंत्र- कार्ल जे0 फ्रैडरिक

तुलनात्मक राजनीति एंव राजनीतिक संस्थाएं- सी0बी0 गैना

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक राजनीति एंव राजनीतिक संस्थाएं- सी0बी0 गैना

2. आधुनिक सरकारें- सिद्धान्त एंव व्यवहार- डॉ0 पुष्पेश पाण्डे, डॉ0 विजय प्रकाश पंत एंव घनश्याम जोशी

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. संसदात्मक शासन प्रणाली को स्पष्ट करते हुए इसके गुण-दोषों को स्पष्ट कीजिए।

2. संसदात्मक शासन प्रणाली की अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओं की विस्तार से चर्चा काजिए।

इकाई 6 अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली: अर्थ एवं परिभाषा

6.3 अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की विशेषताएं

6.4 अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के गुण

6.5 अध्यक्षात्मक शासन प्रणालीके दोष

6.6 संसदात्मक व अध्यक्षात्मक सरकारों में अंतर

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.12 निबंधात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

सरकार का अध्यक्षीय स्वरूप लोकतांत्रिक शासन की एक प्रणाली है जो संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, ब्राजील और कई अन्य सहित दुनिया भर के कई देशों में प्रचलित है। इसकी विशेषता कार्यकारी और विधायी शाखाओं के बीच शक्तियों का पृथक्करण है, जिसमें प्रत्येक शाखा की भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के बीच स्पष्ट अंतर होता है। यदि विधानमण्डल और कार्यपालिका एक दूसरे से पृथक व स्वतंत्र होकर कार्य करते हैं, दोनों समकक्ष दर्जे के होते हैं, दूसरे शब्दों में ये दोनों शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के आधार पर काम करते है, तो ऐसी सरकार को अध्यक्षात्मक सरकार कहते है।

राष्ट्रपति प्रणाली में, कार्यकारी शाखा का नेतृत्व एक राष्ट्रपति करता है जो सीधे लोगों द्वारा या निर्वाचक मंडल के माध्यम से चुना जाता है। राष्ट्रपति राज्य के प्रमुख और सरकार के प्रमुख दोनों के रूप में कार्य करता है, कार्यकारी प्राधिकार का प्रतीक है और महत्वपूर्ण शक्तियों का प्रयोग करता है। संसदीय प्रणाली के विपरीत, जहां कार्यकारी शाखा विधायिका के भीतर से बनती है, राष्ट्रपति प्रणाली में राष्ट्रपति विधायिका से स्वतंत्र होता है।

विधायिका, जिसे अक्सर संसद या कांग्रेस के रूप में जाना जाता है, सरकार की एक अलग और स्वतंत्र शाखा है। यह कानून बनाने, लोगों के हितों का प्रतिनिधित्व करने और कार्यकारी शाखा पर नियंत्रण और संतुलन प्रदान करने के लिए जिम्मेदार है। हालाँकि राष्ट्रपति कानून का प्रस्ताव कर सकते हैं, लेकिन बहस करना, संशोधन करना और कानून पारित करना अंततः विधायिका पर निर्भर है।

बेजहॉट ने संसदीय व अध्यक्षीय सरकारों का अन्तर इस प्रकार स्पष्ट किया है- ''व्यवस्थापिका और कार्यपालिका शक्तियों की एक दूसरे से स्वतंत्रता, अध्यक्षीय शासन का विशेष लक्षण है और इन दोनों का एक दूसरे से संयोग तथा घनिष्ठता संसदीय शासन का लक्षण है।''

6.1 उद्देश्य

1. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के अर्थ एवं परिभाषा को जान पाएंगे।

2. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की विशेषताओं को जान पाएंगे।

3. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के गुण- दोषों को जान पाएंगे।

4. संसदात्मक और अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के मध्य अंतर को समझ पाएंगे।

6.2 अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली: अर्थ एवं परिभाषा

जहां संसदीय सरकार सत्ता के संयोजन के सिद्धान्त पर आधारित होती है, वहीं अध्यक्षयात्मक/अध्यक्षीय शासन प्रणाली शक्ति विभाजन सिद्धान्त पर आधारित है। अध्यक्षीय शासन प्रणाली का आधार शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त है। इसमें व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सभी एक दूसरे से पृथक व स्वतन्त्र रहकर अपने कार्य करते हैं। कार्यपालिका शक्तियॉं राष्ट्रपति में ही निहित होती हैं जिनका प्रयोग वह स्वतन्त्रतापूर्वक करता है। राष्ट्रपति या उसके मंत्री व्यवस्थापिका के न तो सदस्य होते हैं और न उसकी कार्यवाहियों में भाग लेते हैं। राष्ट्रपति का कार्यकाल भी निश्चित होता है। व्यवस्थापिका उसे अविश्वास प्रस्ताव द्वारा नहीं हटा सकती हैं। इसी प्रकार व्यवस्थापिका भी अपने गठन, कार्य तथा कार्यकाल की दृष्टि से कार्यपालिका से पृथक व स्वतंत्र होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका का अनुकरण करते हुए कई क्षेत्रों में, खासकर, लेटिन अमेरिकी देशों ने अपनी परिस्थितियों के अनुरूप इस शासन प्रणाली को अपनाया है। इनमें ब्राजील, अर्जनटाईना, चिली मैक्सिको तथा एशियाई देश, फिलीपिन्स, दक्षिण कोरिया आदि प्रमुख हैं।

प्रो0गार्नर ने अध्यक्षीय सरकार की परिभाषा इस प्रकार की है- ''यह वह प्रणाली है जिसमें कार्यपालिका (मंत्रियों सहित राज्य का प्रधान) संवैधानिक रूप से अपने कार्यकाल के संबंध में और राजनीतिक नीतियों के संबंध में व्यवस्थापिका से स्वतंत्र होती है। इस प्रकार की प्रणाली में राज्य का प्रधान नाममात्र की कार्यपालिका नही होता, वरन् वास्तविक कार्यपालिका होती है और उन शक्तियों का वास्तव में प्रयोग करता है, जो संविधान व कानून के अनुसार उसको प्राप्त होती है।''

6.3 अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की विशेषताएं

अध्यक्षीय शासन प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएं हैं:

1. राज्य के अध्यक्ष की स्थिति- राष्ट्रपति सरकार व राज्य दोनों का प्रधान- अध्यक्षीय शासन में राष्ट्रपति राज्य व सरकार दोनों का ही प्रधान होता है। वह राष्ट्रीय नीति का निर्माण करता है। सेनाओं के संचालन का ओदश देता है। आपातस्थिति की घोषणा कर सकता है तथा देश में व्यवस्था बनाए रखने हेतु कानूनों के प्रवर्तन के लिए सभी आवश्यक कदम उठाता है। इस प्रकार ऐसे शासन में ससंदीय शासन की तरह दो कार्यपालिकाएं (नाममात्र की व वास्तविक) नहीं होती हैं। संविधान द्वारा कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति को प्राप्त होती हैं, साथ ही उसकी यह शक्तियॉं वास्तविक भी होती हैं।

2. राष्ट्रपति का निश्चित कार्यकाल- अध्यक्षीय सरकार में राष्ट्रपति एक निश्चित अवधि के लिए निर्वाचित किया जाता है। अमेरिका में राष्ट्रपति का कार्यकाल चार वर्ष के लिए निश्चित है, इस अवधि से पहले व्यवस्थापिका उसे महाभियोग के अलावा अन्य किसी तरह से नहीं हटा सकती है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में महाभियोग का कार्य ''हाऊस आफ रिप्रेजंटेटिव'' (प्रतिनिधि सदन) से आरम्भ होता है तथा राष्ट्रपति अपना स्पष्टीकरण देता है। विवाद का

निर्णय सीनेट में पूरे सदन के 2/3 बहुमत से होता है। अब तक केवल एक बार अमेरिका में सन् 1867 में राष्ट्रपति जानसन के विरूद्ध महाभियोग लगाया गया लेकिन सीनेट में यह प्रस्ताव एक मत से पास होने से रह गया और राष्ट्रपति को पद से नही हटाया जा सका।

3. राष्ट्रपति व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं- अध्यक्षीय शासन में राष्ट्रपति, व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है तथा राष्ट्रपति(कार्यपालिका), व्यवस्थापिका को भंग नही कर सकता है। राष्ट्रपति तथा उसके मंत्री व्यवस्थापिका की कार्यवाहियों में भाग नहीं लेते। राष्ट्रपति व्यवस्थापिका में कोई महत्वपूर्ण भाषण देने हेतु जा सकता है अथवा वह अपना संदेश भेज सकता है जिसे व्यवस्थापिका स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। मंत्रीगण भी व्यवस्थापिका के सत्र में उपस्थित हो सकते है परन्तु मतदान का अधिकार नहीं होता। राष्ट्रपति या उसके मंत्री न तो व्यवस्थापिका के सदस्य होते हैं और न उन्हें अपने कार्यों के लिए व्यवस्थापिका के समर्थन पर निर्भर रहना पड़ता है, यानि व्यवस्थापिका भी कार्यपालिका को भंग नही कर सकती।

4. मंत्रीमण्डल का अभाव- अध्यक्षीय शासन में वैसा मंत्रीमण्डल नहीं होता, जैसा संसदीय शासन में होता है। राष्ट्रपति को सहायता व परामर्श देने के लिए कुछ सचिव होते हैं। इन सचिवों को सामूहिक नाम से 'राष्ट्रपति की कैबिनेट' कह दिया जाता है। परन्तु सच्चे अर्थो में यह कैबिनेट नहीं है, न तों यह कैबिनेट एक इकाई के रूप में कार्य करती हैं, न वह विधायिका के प्रति उत्तरदायी है, न उसकी तानाशाही है। व्यवस्थापिका से मंत्रियों को कुछ लेना-देना नहीं है, राष्ट्रपति ही उनका 'स्वामी' है।

5. शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त पर आधारित- अध्यक्षीय सरकार की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित है। सरकार के तीनों अंग एक दूसरे से पृथक व स्वतंत्र होते है। कार्यपालिका के सदस्य न तो व्यवस्थापिका के सदस्य होते है और न वे कानून निर्माण में भाग लेते हैं, इसी प्रकार व्यवस्थापिका केवल कानून बनाती है। वह राष्ट्रपति या उसके मंत्रियों से न तो प्रश्न पूछ सकती है और न अविश्वास प्रस्ताव द्वारा पदच्युत कर सकती है।

6. संसदीय शासन में जिस प्रकार प्रधानमंत्री की महत्ता है वैसे ही अध्यक्षीय शासन में राष्ट्रपति की महत्ता होती है।

6.4 अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के गुण

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. स्थायी एवं दृढ़ शासन- अध्यक्षीय शासन का सबसे महत्वपूर्ण गुण है-शासन में स्थायित्व। निश्चित कार्यकाल के कारण राष्ट्रपति अधिक आत्म-विश्वास के साथ नीतियों का निर्माण व उन पर अमल कर सकता है। इसका कार्यकाल चार वर्ष, दो बार से अधिक नही हो सकता है, यानि कार्यपालिका का भाग्य व्यवस्थापिका के परिवर्तनशील मत पर निर्भर नही होता है। अतः सरकार स्थिर नीति का पालन कर सकती है। उसे अपने कार्यों को पूरा करने के लिए

व्यवस्थापिका की ओर ताकने की आवश्यकता नहीं होती है। अमेरिका में कॉग्रेस राष्ट्रपति के कार्यो में बहुत कम हस्तक्षेप कर सकती है।

2. अधिक कुशल शासन- शक्ति पृथक्करण पर आधारित होने के कारण यह शासन संसदीय शासन की तुलना में अधिक कुशल होता है। इसका कारण बताते हुए मैरियट ने लिखा है कि ''शासन की इस व्यवस्था में प्रशासन में वास्तविक रूप से कुशलता आती है क्योंकि मंत्रियों को हर समय व्यवस्थापिका में उपस्थित रहने में समय लगाना नहीं होता और व्यवस्थापन कार्य भी कुशलता से होता है, क्योंकि व्यवस्थापिका के सदस्यों के मस्तिष्क अपने विशिष्ट कार्य में ही लगे रहते हैं।''

3. दलबन्दी का अभाव- अध्यक्षीय शासन में दलबन्दी का उग्र व दूषित वातावरण वैसा नहीं रहता, जैसा संसदीय शासन में देखा जाता है। इस प्रणाली में कार्यपालिका (राष्ट्रपति) व व्यवस्थापिका के निर्वाचनों के समय ही राजनीतिक दल सक्रिय रहते हैं, हर समय नहीं क्योंकि बीच में राष्ट्रपति को हटाया नही जा सकता है। अनावश्यक विरोध भी नही होता है और न राष्ट्रपति का दल उसका अन्धानुकरण करता है। निर्वाचन की समाप्ति के बाद राष्ट्रपति यदि चाहे तो अपने राजनीतिक दल से मुक्त होकर स्वतंत्र नीति पर चल सकता है। राजनीतिक दल प्रशासन पर अनुचित प्रभाव डालने में सक्षम नही हो पाते क्योंकि विरोधी दल के सामने ऐसा कोई लालच नहीं होता कि सदन के ज्यादा सदस्य यदि उसकी तरफ आ जाएँ तो वर्तमान सरकार टूट जायेगी और उसके स्थान पर दूसरी सरकार कायम हो सकेगी। यही कारण है कि दलबंदी की भावना जितनी संसदात्मक प्रणाली मे है, उतनी अध्यक्षीय प्रणाली में नही।

4. संकटकाल के लिए उपयुक्त- यह शासन संकटकाल के लिए सर्वाधिक उपयुक्त शासन है। कारण यह है कि कार्यपालिका शक्तियॉ सैद्धान्तिक व व्यावहारिक दोनों दृष्टियों में राष्ट्रपति में ही निहित होती हैं। अतः किसी संकट के समय में वह अकेला निर्णय लेने में समर्थ है।

5. राष्ट्रीय एकता की सुदृढ़ता- अध्यक्षीय शासन का एक गुण यह भी है कि राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ रहती है। राष्ट्रपति पूरे देश का नेता है, एक दल का नहीं। इसलिए भी उससे बुद्धिपूर्ण न्यायोचित और राष्ट्रहित की अपेक्षा लोगों को रहती है।

6. निरंकुशता का अभाव- इस शासन प्रणाली में शक्ति-पृथक्करण होता है। अतः शक्तियॉ एक स्थान पर केन्द्रित न होने के कारण जनता के अधिकारों व स्वतंत्रताओं को संसदीय शासन की अपेक्षा कम खतरा रहता है। अध्यक्षीय शासन में जैसा कि अमेरिका में है अवरोध और सन्तुलन की प्रणाली'' के द्वारा, एक सरकार का अंग दूसरे अंग को नियंत्रित करता रहता है। जैसे राष्ट्रपति द्वारा की गई सभी नियुक्तियॉ व विदेशों के साथ संधियॉ, सीनेट द्वारा पुष्ट की जाती हैं। कांग्रेस द्वारा निमित कानून तथा कार्यपालिका के आदेश न्यायालय द्वारा इस आधार पर रदद् किए जा सकते हैं कि वे संविधान के विरूद्ध हैं। साथ ही राष्ट्रपति को भी इतनी व्यापक शक्तियॉ प्राप्त हैं कि व्यवस्थापिका और न्यायपालिका भी तानाशाह बनने का स्वप्न नहीं देख सकते।

7. योग्य और अनुभवी व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त किया जा सकता है- अध्यक्षीय शासन में राष्ट्रपति मंत्रियों को योग्यता व अनुभव के आधार पर नियुक्त करने के लिए स्वतंत्र है। राष्ट्रपति निकसन तथा जेराल्ड फोर्ड के शासनकाल में हेनरी कीसिंगर विदेश मंत्री बनाये गये जो पहले हारवर्ड विश्व विद्यालय में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रोफेसर थे। परन्तु संसदीय सरकार में प्रधानमंत्री के ऊपर कई प्रकार के बन्धन होते हैं और वह मंत्रियों की नियुक्ति केवल योग्यता व अनुभव के आधार पर ही नही करता है।

8. बहुदलीय प्रणाली वाले देशों के लिए उपयुक्त- उन देशों के लिए जहॉ बहुदलीय प्रणाली है, अध्यक्षीय शासन अधिक लाभकारी हो सकता है, कारण स्पष्ट है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निश्चित समय के लिए हो जायेगा, संसदीय सरकार की तरह मिले-जुले मंत्रीमण्डलों के बदलने का भय समाप्त हो जायेगा।

9. विशाल राष्ट्रों के लिए उपयुक्त- विशाल और विभिन्नतापूर्ण राष्ट्रों के लिए अध्यक्षीय शासन अच्छा है। जिस देश में भाषा, जाति व संस्कृति की विभिन्नता हैं, उसमें संसदीय शासन की तुलना में अध्यक्षीय शासन अधिक सफल हो सकता है।

6.5 अध्यक्षात्मक शासन प्रणालीके दोष

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के दोष निम्नलिखित हैं:

1. अनुत्तरदायी एवं निरंकुश शासन- अध्यक्षीय शासन का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें राष्ट्रपति का कार्यकाल निश्चित होने के कारण उसके निरंकुश होने का खतरा बना रहता है। इसीलिए आलोचक इस प्रणाली को ''निरंकुश, गैर जिम्मेदार एवं खतरनाक'' कहते हैं। उसे महाभियोग की अत्यधिक कठिन प्रक्रिया होने के कारण आसानी से नहीं हटाया जा सकता। अतः वह एक अधिनायक की तरह शासन कर सकता है। बेजहॉट ने कहा है कि ''आपने अपनी सरकार (अध्यक्षीय) के संबंध में अग्रिम निर्णय कर दिया है, भले ही वह आपको पसन्द है अथवा नहीं, वह आपकी इच्छा की है या नहीं, आपको कानूनन उसे रखना ही होगा।''

2. सहयोग का अभाव- अध्यक्षीय शासन में शक्ति पृथक्करण के कारण सरकार के विभिन्न अंगो में सहयोग नहीं रह पाता है, प्रत्येक अंग एक दूसरे से ईर्ष्या रखता है व संघर्ष के लिए तैयार रहता है। राष्ट्रपति न तो व्यवस्थापिका की समस्या को समझ पाता है और न व्यवस्थापिका राष्ट्रपति की समस्या को। कभी-कभी इन कारणों से शासन में मतभेद व गतिरोध पैदा हो जाता है। विशेष रूप से उस समय जबकि राष्ट्रपति के दल का व्यवस्थापिका में बहुमत न हो। वास्तव में राष्ट्रपति की शक्तियॉ चाहे जितनी व्यापक हो, परन्तु कांग्रेस यदि वित्तीय मॉगों का अनुमोदन न करें तो कार्यपालिका विषम हो जाती है। ऐसा कई बार हुआ है।

3. कठोर शासन प्रणाली- अध्यक्षीय शासन में लचीलेपन का गुण नहीं होता है जोकि संसदीय शासन में होता है। इसके तीन कारण हैं, प्रथम, शासन संबंधी सभी बाते संविधान में निश्चित होती हैं। दूसरे, जब कोई संवैधानिक विवाद

पैदा होता है तो न्यायालय की शरण ली जाती है, जिसका रवैया कठोर ही रहता है। तीसरे, संविधान कठोर होता है, अतः आवश्यकतानुसार संशोधन नही किये जा सकते हैं। यह सब बातें अमेरिका में पायी जाती हैं।

4. उत्तरदायित्व के निर्धारण की समस्या- अध्यक्षीय शासन में जब कोई गलत कार्य होता है, तो कार्यपालिका व व्यवस्थापिका इसका उत्तरदायित्व एक दूसरे पर थोपने का प्रयास करते है। संसदीय शासन की तरह यह उत्तरदायित्व कार्यपालिका के पास निश्चित नहीं होता है। चूँकि राजसत्ता बँट जाती है। अतः यह पता नही चलता कि शासन की बुराई के लिए कार्यपालिका दोषी है अथवा विधानमंडल। राष्ट्रपति को शिकायत रहती है कि जिन कानूनों को वह जरूरी समझता है, उन्हे कांग्रेस या विधानमंडल पारित नहीं कर रहा है। दूसरी ओर विधानमंडल के नेता, यह कहते है कि कानूनों को ईमानदारी के साथ लागू नहीं किया जा रहा है।

5. वैदेशिक नीति की दुर्बलता- अमरीकन अध्यक्षीय शासन के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति स्वतंत्र व सुदृढ़ वैदेशिक नीति पर नहीं चल सकता, क्योंकि व्यवस्थापिका उसके कार्यो में बांधा डालती है। 1919 में राष्ट्रपति विलसन द्वारा की गई 'वार्साय की संधि' को अमरीकन सीनेट ने ठुकरा दिया था।

6. शक्ति-पृथक्करण की अव्यावहारिकता- अध्यक्षीय शासन शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित है, परन्तु यह सिद्धान्त अव्यावहारिक है। शासन के कार्यों का पूर्ण पृथक्करण न तो सम्भव है और न वॉछनीय ही समस्त शासन मनुष्य के शरीर के समान है जिसके कई अंग कर देने से वह बेकार हो जाता है। शक्ति पृथक्करण के कारण कभी-कभी सरकार के अंगों में अनावश्यक मतभेद व गतिरोध होता है, जिससे प्रशासन निष्क्रिय हो जाता है।

7. एक व्यक्ति पर उत्तरदायित्व- अध्यक्षीय शासन का एक दोष यह भी है कि शासन का पूरा भार एक ही व्यक्ति राष्ट्रपति पर होता है। अतः शासन की सफलता या विफलता उसी के गुणों व अवगुणों पर निर्भर रहती है।

8. अत्यधिक खर्चीली- इस व्यवस्था में चुनाव बहुत खर्चीला होता है तथा आम-चुनावों के समय राजनीतिक दल पूर्ण रूप से सक्रिय होते हैं। वहीं सामान्य काल में महत्वहीन रहते हैं और राजनीतिक चेतना को प्रदीप्त करने का महत्वपूर्ण कार्य नही कर पाते।

6.6 संसदात्मक व अध्यक्षात्मक सरकारों में अंतर

1.संसदीय सरकार का आधार शक्तियों का संयोजन है, जबकि अध्यक्षीय सरकार का आधार है- शक्ति पृथक्करण।

2.संसदीय सरकार में राज्य का प्रधान (राजा या राष्ट्रपति) नाममात्र का होता है। प्रधानमंत्री सहित मंत्रीपरिषद्वास्तविक कार्यपालिका होती है, अध्यक्षीय शासन में राष्ट्रपति ही राज्य व सरकार दोनों का प्रधान होता है। अतः एक ही कार्यपालिका होती है।

3.संसदीय सरकार में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका से स्वतंत्र नही रहती, अध्यक्षीय शासन में वह व्यवस्थापिका से स्वतंत्र रहती है। अध्यक्षीय शासन में व्यवस्थापिका व कार्यपालिका दोनों के कार्यक्षेत्र अलग-अलग रहते हैं।

4.संसदीय शासन में कार्यपालिका तभी तक अपने पद पर है जब तक कि उसे संसद (प्रायः निचले) मे बहुमत का समर्थन प्राप्त है, परन्तु अध्यक्षीय शासन में कार्यपालिका (राष्ट्रपति) का कार्यकाल संविधान द्वारा निश्चित होता है। इससे पहले केवल महाभियोग की कार्यवाही से ही उसे पदच्चुत किया जा सकता है।

5.संसदीय शासन में मंत्रिगण व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी रहते हैं, परन्तु अध्यक्षीय शासन में केवल राष्ट्रपति के प्रति।

6.संसदीय शासन में मंत्रिगण आवश्यक रूप से व्यवस्थापिका के सदस्य होते हैं और उनकी कार्यवाहियों में भाग लेते हैं। इतना ही नही वे व्यवस्थापिका का मार्ग-निर्देशन व नेतृत्व भी करते हैं। अध्यक्षीय शासन में मंत्री राष्ट्रपति के अधीनस्थ होते हैं।

7.संसदीय सरकार में प्रधानमंत्री और अध्यक्षीय शासन में राष्ट्रपति देश का नेतृत्व करता है।

अभ्यास प्रश्न-

1.निम्नांकित में से कौन सा एक अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली का आधारभूत तत्व है?

क. संविधान की कठोरता ख. एकल कार्यपालिका ग. व्यवस्थापिका की सर्वोच्चता घ. अवशिष्ट अधिकार राज्यों के पास होना

2. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली का जनक किस देश को माना जाता है?

क. अमेरिका ख. भारत ग. ब्रिटेन
घ. फ्रान्स

3. निम्नलिखित में से कौन अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था का लक्षण नहीं है?

क. स्थिरता ख. समस्त शक्तियाँ राज्याध्यक्ष के पास ग. शक्ति पृथक्करण घ. नाममात्र और वास्तविक कार्यपालिका

6.7 सारांश

राष्ट्रपति शासन प्रणाली शक्तियों का स्पष्ट पृथक्करण प्रदान करता है, जिसमें सीधे निर्वाचित राष्ट्रपति राज्य और सरकार के प्रमुख के रूप में कार्य करता है। इससे स्थिरता और जवाबदेही आ सकती है, क्योंकि राष्ट्रपति सीधे लोगों के प्रति जवाबदेह होता है। हालाँकि, राष्ट्रपति प्रणाली की कुछ कमियाँ भी हैं: शक्तियों के पृथक्करण के परिणामस्वरूप

कभी-कभी गतिरोध और राजनीतिक ध्रुवीकरण हो सकता है, क्योंकि राष्ट्रपति और विधायिका अलग-अलग राजनीतिक दलों से संबंधित हो सकते हैं और उनके परस्पर विरोधी एजेंडे हो सकते हैं। यह प्रभावी शासन और आवश्यक कानून पारित करने में बाधा उत्पन्न कर सकता है।

अंततः, राष्ट्रपति शासन प्रणाली की सफलता इसके संस्थानों और अभिनेताओं की एक साथ काम करने, लोकतांत्रिक सिद्धांतों को बनाए रखने और लोगों के सर्वोत्तम हितों की सेवा करने की क्षमता पर निर्भर करती है। प्रणाली का लगातार मूल्यांकन और सुधार करके, इसकी कमियों को दूर करके, और सहयोग और समावेशिता के माहौल को बढ़ावा देकर, राष्ट्रपति शासन प्रणाली शासन की एक प्रभावी और उत्तरदायी प्रणाली हो सकती है।

6.8 शब्दावली

सामूहिक उत्तरदायित्व- सब की जिम्मेदारी, शक्ति पृथक्करण- शक्ति का बंटा होना, बहुदलीय- एक से अधिक दल, आपात स्थिति- संकट का समय

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख 2. क 3. सत्य

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधुनिक तुलनात्मक राजनीति- पीटर एच0 मार्कल

राजनीति विज्ञान एक परिचय- पिनांक एवं स्मिथ

संवैधानिक सरकारें और लोकतंत्र- कार्ल जे0 फ्रैडरिक

तुलनात्मक राजनीति एंव राजनीतिक संस्थाएं- सी0बी0 गैना

6.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक राजनीति एंव राजनीतिक संस्थाएं- सी0बी0 गैना

2. आधुनिक सरकारें- सिद्धान्त एंव व्यवहार- डॉ0 पुष्पेश पाण्डे, डॉ0 विजय प्रकाश पंत एंव घनश्याम जोशी

6.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. अध्यक्षीय शासन प्रणाली से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए इसके गुण-दोष बताइये।

2. संसदात्मक व अध्यक्षात्मक शासन प्रणालियों को स्पष्ट करते हुए, दोनों शासन प्रणालियों में अंतर को स्पष्ट करें।

इकाई 7 एकात्मक शासन प्रणाली

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 एकात्मक शासन- अर्थ एवं परिभाषा

7.3 एकात्मक शासन की विशेषताएँ

7.4 एकात्मक शासन के गुण-दोष

7.5 एकात्मक शासन के गुण

7.6 एकात्मक शासन के दोष

7.7 सारांश

7.8 पारिभाषिक शब्दावली

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

वर्तमान में छोटे राज्यों के साथ बड़े राज्य भी अस्तित्व में हैं। इन बड़े और विस्तृत राज्यों का शासन एक केन्द्रीय आधार पर या एक स्थान से कुशलता के साथ नहीं किया जा सकता। इसीलिए शासन की सुविधा की दृष्टि से समस्त राज्य को कई इकाइयों में बांट दिया जाता है। तत्पश्चात केन्द्र एवं इकाइयों में शक्तियों का विभाजन किया जाता है। संविधान द्वारा क्षेत्र के आधार पर शक्तियों का जो केन्द्रीकरण या वितरण किया जाता है और देश के शासन में केन्द्रीय और स्थानीय इकाइयों के बीच जों सम्बन्ध होता है,उसके आधार पर शासन व्यवस्थाओं को एकात्मक और संघात्मक दो रूपों में वर्गीकृत किया जाता है। इस इकाई के अंतर्गत हम एकात्मक शासन प्रणाली को समझेंगे।

सरकार के एकात्मक रूप में, शक्ति और अधिकार राष्ट्रीय या केंद्रीय स्तर पर केंद्रित होते हैं, जहां एक ही सरकार सभी प्रशासनिक प्रभागों पर नियंत्रण रखती है और पूरे देश को प्रभावित करने वाले निर्णय लेने की क्षमता रखती है। यह केंद्रीय प्राधिकरण अंतिम शक्ति रखता है और स्थानीय या क्षेत्रीय सरकारों को कुछ जिम्मेदारियाँ सौंप सकता है, लेकिन आवश्यक समझे जाने पर ऐसे प्रतिनिधिमंडल को रद्द करने या संशोधित करने की क्षमता रखता है। एकात्मक प्रणाली की परिभाषित विशेषताओं में से एक पूरे देश में कानूनों और नीतियों की एकरूपता है। केंद्र सरकार ऐसे कानून स्थापित और लागू करती है जो सभी क्षेत्रों में समान रूप से लागू होते हैं, जिससे शासन में स्थिरता और सुसंगतता सुनिश्चित होती है। यह केंद्रीकृत निर्णय लेने की संरचना त्वरित और कुशल नीति कार्यान्वयन की अनुमति देती है और केंद्र सरकार को राष्ट्रीय संकटों या आपात स्थितियों पर तेजी से प्रतिक्रिया करने में सक्षम बनाती है।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के उपरान्त आप समझ पायेंगे-

1. एकात्मक शासन प्रणाली की अर्थ और परिभाषा समझ पायेंगे।
2. एकात्मक शासन प्रणाली की विशेषताओं को जान पायेंगे।
3. एकात्मक शासन प्रणाली के गुण व दोष जान पायेंगे।

7.2 एकात्मक शासन प्रणाली का अर्थ एवं परिभाषा

एकात्मक शासन व्यवस्था में, शक्तियों का केन्द्रीकरण होता है। संविधान द्वारा शासन की समस्त शक्तियॉं केवल केन्द्रीय सरकार को ही सौंपी जाती हैं तथा इकाइयों को शासन की शक्तियाँ केन्द्र से प्राप्त होती हैं। स्थानीय अथवा इकाइयों की सरकारों का अस्तित्व एवं शक्तियॉं केन्द्रीय सरकार की इच्छा पर निर्भर करती है। एकात्मक शासन व्यवस्थाओं के प्रमुख उदाहरण हैं- ब्रिटेन, फ्रांस,चीन और बेल्जियम।

विभिन्न विद्वानों ने एकात्मक शासन की परिभाषाएँ दी हैं-

सी0एफ0स्ट्रांग के अनुसार ''एकात्मक शासन में केन्द्रीय सरकार सर्वोच्च होती है तथा सम्पूर्ण शासन एक केन्द्रीय सरकार के अधीन संगठित होता है और उसके अधीन जो भी क्षेत्रीय प्रशासन कार्य करता है, उसकी शक्तियॉं उसे केन्द्र सरकार से प्राप्त होती हैं।''

फाइनर के शब्दों में ''एकात्मक शासन वह शासन है जिसमें सम्पूर्ण सत्ता, शक्ति, केन्द्र में निहित होती है और जिसकी इच्छा एवं अभिकरण पूर्ण क्षेत्र पर वैद्य रूप से मान्य होते हैं।''

प्रो0गार्नर के अनुसार ''एकात्मक शासन, शासन का वह रूप है जिसमें शासन की सर्वोच्च शक्ति संविधान के माध्यम से एक केन्द्रीय सरकार को प्राप्त होती है तथा केन्द्र एवं स्थानीय सरकार के बीच संवैधानिक शक्ति का विभाजन नही होता और केन्द्र सरकार से ही स्थानीय सरकारों को शक्ति एवं स्वतंत्रता प्राप्त होती है।''

डायसी के शब्दों में ''एकात्मक राज्य में कानून बनाने की समस्त शक्तियॉं केन्द्रीय सत्ता के हाथों में निवास करती हैं।''

विलोबी के शब्दों में ''एकात्मक शासन में शासन के सम्पूर्ण अधिकार मौलिक रूप से एक केन्द्रीय सरकार में निहित रहते हैं तथा केन्द्रीय सरकार अपनी इच्छानुसार शक्तियों का वितरण इकाइयों में करती है।''

7.3 एकात्मक शासन प्रणाली के विशेषताएं

एकात्मक शासन प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

1. शासन की पूर्ण शक्ति केन्द्र में निहित- एकात्मक शासन की प्रमुख विशेषता यह है कि शासन कार्य की समस्त शक्तियॉं केन्द्रीय सरकार में निहित रहती हैं। शासन की सुविधा के लिए राज्य को प्रदेशों एवं प्रान्तों में बॉंटा जा सकता है किन्तु इन प्रदेशों व प्रान्त सरकारों को शासन कार्य के लिए स्वतंत्र शक्तियॉं प्राप्त नहीं होती। केन्द्र ही उन्हें आवश्यकतानुसार शक्तियॉं देता है। उन्हें केन्द्र के अधीन रहकर ही कार्य करना होता है और इनका अस्तित्व पूर्णतः केन्द्र सरकार की इच्छा पर निर्भर रहता है।

2. इकहरी नागरिकता- एकात्मक शासन में नागरिकों को इकहरी नागरिकता (केन्द्र की) प्राप्त होती है। जबकि संघात्मक शासन में केन्द्र व राज्यों की पृथक-पृथक यानि दोहरी नागरिकता प्राप्त होती है।

3. एक संविधान- एकात्मक शासन में सम्पूर्ण राष्ट्र का एक संविधान होता है। इकाइयों के लिए कोई अलग संविधान नहीं होता। संघात्मक शासन में कहीं-कहीं पर इकाइयों के अलग-अलग संविधान भी होते हैं। जैसे भारत में जम्मू-कश्मीर राज्य का अलग संविधान हैं। एकात्मक शासन वाले राज्यों में ऐसा नहीं होता।

4. कुशल निर्णय लेना: एकात्मक प्रणाली की केंद्रीकृत प्रकृति त्वरित और कुशल निर्णय लेने की अनुमति देती है। नीति कार्यान्वयन को सुव्यवस्थित किया जा सकता है क्योंकि सरकार के कई स्तरों के बीच बातचीत या समन्वय की कोई आवश्यकता नहीं है। केंद्र सरकार अंतर-सरकारी विवादों से बाधित हुए बिना राष्ट्रीय संकटों या आपात स्थितियों पर तुरंत प्रतिक्रिया दे सकती है।

5. सुव्यवस्थित नौकरशाही: एकल शासकीय प्राधिकारी के साथ, एकात्मक प्रणाली में आम तौर पर एक सुव्यवस्थित नौकरशाही होती है। सरकार की कई परतों की अनुपस्थिति प्रशासनिक जटिलताओं को कम करती है और अधिक कुशल संसाधन आवंटन और सेवा वितरण को जन्म दे सकती है।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि सरकार के एकात्मक स्वरूप की विशेषताएं विशिष्ट देश और उसकी राजनीतिक संरचना के आधार पर भिन्न हो सकती हैं। विभिन्न देश अलग-अलग डिग्री के केंद्रीकरण या विकेंद्रीकरण को अपना सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप एकात्मक प्रणाली की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ होती हैं।

7.4 एकात्मक शासन व्यवस्था के गुण-दोष

एकात्मक प्रणाली एक शासन संरचना है जहां शक्ति और अधिकार राष्ट्रीय या केंद्रीय स्तर पर केंद्रीकृत होते हैं, जिसमें क्षेत्रीय या स्थानीय सरकारों को सीमित स्वायत्तता दी जाती है। सरकार के किसी भी रूप की तरह, एकात्मक प्रणाली की भी अपनी ताकत और कमजोरियां हैं, जिन्हें हम इस इकाई में समझेंगे।

7.5 एकात्मक शासन व्यवस्था के गुण

1. शासन में एकरूपता व शक्ति सम्पन्नता- एकात्मक शासन व्यवस्था में शासन में एकरूपता पाई जाती है। सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए एक सा कानून होता है और केन्द्र के निर्देशन में उसे समान रूप से सर्वत्र लागू किया जाता है। फलतः पूरे राष्ट्र के शासन कार्यों में एकरूपता बनी रहती है। शासन की इस एकरूपता के कारण शासन-शक्ति संगठित रहती है, शासन कार्यों में दृढ़ता एवं मजबूती आ जाती है और संकट के समय यह शीघ्र निर्णय लेने के लिए सक्षम हो जाता है।

2. राष्ट्रीय एकता में वृद्धि- एकात्मक शासन व्यवस्था में सम्पूर्ण राज्य में एक सा कानून, एक सी शासन व्यवस्था होने तथा सभी को एक समान न्याय मिलने के कारण, आपसी मतभेद पैदा नहीं हो पाते। सभी के साथ एक सा व्यवहार होने के कारण नागरिकों में राष्ट्र के प्रति सम्मान पैदा होता है और राष्ट्रीय एकता में वृद्धि होती हैं।

3. संकटकाल के लिए उपयुक्त- एकात्मक शासन व्यवस्था में शासन की शक्ति एक ही स्थान पर केन्द्रीत होने के कारण संकट के समय यह शीघ्र निर्णय लेने में सक्षम होता है। इन निर्णयों को गुप्त भी रखना होता है और शीघ्र ही कार्यान्वित भी करना पड़ता है, इस हेतु एकात्मक शासन ही सक्षम होता है।

4. मितव्ययता- एकात्मक शासन व्यवस्था में एक ही स्थान से शासन का संचालन होने और राज्य इकाइयों में अलग से कोई मंत्रिमण्डल व व्यवस्थापिका का गठन न करने से काफी खर्च बच जाता है। इस दृष्टि से यह मितव्ययी शासन व्यवस्था है।

5. छोटे राज्यों के लिए उपयोगी- एकात्मक शासन व्यवस्था छोटे राज्यों के लिए बहुत ही उपयोगी है, क्योंकि इसमें सम्पूर्ण शासन का संचालन एक ही स्थान से किया जाता है।

6. नीति संबंधी निर्णय में एकरूपता- एकात्मक शासन प्रणाली में नीति संबंधी जो भी निर्णय लिए जाते हैं उनमें एकरूपता बनी रहती है क्योंकि ये निर्णय एक स्थान से अर्थात केन्द्र से लिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त नीति-संबंधी निर्णयों के लिए केन्द्र को राज्य सरकारों से कोई भी राय व सहमति नहीं लेनी होती है, जिस कारण नीति संबंधी निर्णयों में एकरूपता आ जाती हैं।

7. आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त- एकात्मक शासन व्यवस्था में एक ही स्थान से निर्णय लिये जाने के कारण पूरे राष्ट्र की आर्थिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निर्णय लिए जा सकते हैं, जिस कारण यह व्यवस्था आर्थिक विकास के लिए उपयोगी होती हैं।

8. सुदृढ़ अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति- एकात्मक शासन की स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में काफी सुदृढ़ रहती है, क्योंकि इसके अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में शीघ्रता से निर्णय लिया जा सकता है, समान रूप की नीति का अनुसरण किया जा सकता है और अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों को अधिक कुशलता के साथ निभाया जा सकता है।

9. संघर्ष की सम्भावना नहीं- एकात्मक शासन में शासन की समस्त शक्तियॉ केन्द्र के हाथों में रहती हैं तथा इकाइयॉ केन्द्र के पूर्णतः अधीन होकर कार्य करती हैं, जिस कारण केन्द्र तथा इकाइयों के बीच संघर्ष की सम्भावना नहीं रहती है। प्रशासनिक निर्णय लेने में आसानी होती है।

10. स्पष्ट पदानुक्रम और जवाबदेही: एकात्मक प्रणाली की केंद्रीकृत प्रकृति सत्ता का एक स्पष्ट पदानुक्रम स्थापित करती है, जिससे निर्णय लेने और नीति कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार लोगों की पहचान करना और उन्हें जवाबदेह बनाना आसान हो जाता है। इससे शासन में पारदर्शिता, प्रभावशीलता और जवाबदेही बढ़ती है।

7.6 एकात्मक शासन प्रणाली के दोष

1. शासन कार्य में कुशलता की कमी- एकात्मक शासन में शासन कार्यों का सम्पूर्ण संचालन एक ही स्थान अर्थात केन्द्र से संचालित होता है, जिसे शासन कार्य की कुशलता के लिए उपर्युक्त नहीं कहा जा सकता, क्योंकि एक ही स्थान से केन्द्रीय सरकार पूरे देश में कुशल शासन संचालन कर ले यह सम्भव नहीं है। अतः देश के सभी भागों के हितों व आवश्यकताओं की पूर्ति केन्द्र द्वारा नहीं हो सकती।

2. लोकतंत्र की भावना के विरूद्ध- एकात्मक शासन व्यवस्था लोकतंत्र की भावना के विरूद्ध हैं क्योंकि इसमें प्रान्तीय अथवा स्थानीय स्वशासन को वो महत्ता नहीं मिलती जो लोकतंत्र में मिलती है।

3. शासन की निरंकुशता की सम्भावना- एकात्मक शासन व्यवस्था में शासन की निरंकुशता का भय बना रहता है क्योंकि शासन की समस्त शक्तियॉ केन्द्र में ही निहित होती हैं। केन्द्र अपनी शक्तियों को बढ़ा कर निरंकुश न हो जाए और शासन के सभी क्षेत्रों में अपनी मनमानी न करने लगे, इस बात की सम्भावना बनी रहती हैं।

4. विविधताओं वाले राष्ट्रों में असफल- एकात्मक शासन व्यवस्था विविधताओं वाले राष्ट्रों में असफल रहती हैं, छोटे-छोटे राज्यों के लिए यह शासन व्यवस्था सफल हो सकती है, बड़े व विविधताओं वाले राष्ट्रों में नहीं, क्योंकि एक ही स्थान से शासन चलाने पर विभिन्न जाति, धर्म, भाषाओं व नस्लों के लोगों के हितों की पूर्ति सम्भव नहीं हो सकती।

5. स्थानीय संस्थाओं के क्रिया-कलापों पर प्रतिबन्ध- एकात्मक शासन व्यवस्था में, शासन में इतनी कठोरता और अंकुश रहता है कि इससे स्थानीय संस्थाओं के क्रिया-कलापों पर प्रतिबन्ध लग जाते हैं उनकी स्वायत्तता लगभग समाप्त ही हो जाती है।

6. शासन कार्यो के प्रति उदासीन जनता- एकात्मक शासन-व्यवस्था में जनता को सार्वजनिक कार्यो में भागीदारी का पूर्ण अवसर प्राप्त नहीं होता, जिस कारण जनता सार्वजनिक कार्यों के प्रति उदासीन रहती हैं। जनता को प्रशासनिक कार्यो में भाग लेने का अवसर प्राप्त न होने के कारण उन्हें राजनीतिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता है।

7. क्रान्ति का भय- एकात्मक शासन पर अनुदार होने का आरोप लगाया जाता है, क्योंकि प्रशासनिक अधिकारियों का अपरिवर्तनशील श्रंखलाबद्ध शासन स्थापित हो जाता है। अपनी उदारता के कारण यह प्रगति विरोधी हो जाता है तथा नई योजनाओं को जल्दी क्रियान्वित नहीं करता। फलस्वरूप इस शासन व्यवस्था में क्रान्ति का भय उत्पन्न हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न- 1

1. एकात्मक शासन प्रणाली में शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होता है। सही/गलत

2. एकात्मक शासन प्रणाली की यह परिभाषा किसने दी ‘‘एकात्मक शासन वह शासन है जिसमें सम्पूर्ण सत्ता, शक्ति, केन्द्र में निहित होती है और जिसकी इच्छा एवं अभिकरण पूर्ण क्षेत्र पर वैद्य रूप से मान्य होते हैं।‘‘

क. फाइनर ख. गार्नर ग. डायसी घ. लास्की

3. इकहरी नागरिकता..... पायी जाती है।

क. एकात्मक शासन प्रणाली में ख. संघात्मक शासन प्रणाली में

ग. मिश्रित शासन प्रणाली में घ. इनमें से कोई नहीं

7.7 सारांश:

सरकार का एकात्मक स्वरूप दुनिया भर के कई देशों में शासन के लिए एक प्रमुख मॉडल के रूप में खड़ा है। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, एकात्मक प्रणाली निर्णय लेने में दक्षता और स्पष्टता को बढ़ावा देती है। एक संकेंद्रित प्राधिकार के साथ, विकेंद्रीकृत प्रणालियों में उत्पन्न होने वाली जटिलताओं के बिना, नीतियों और कानूनों को तेजी से लागू किया जा सकता है। निर्णायक रूप से कार्य करने की यह क्षमता सरकारों को स्थिरता और प्रगति को बढ़ावा देते हुए चुनौतियों और अवसरों पर तुरंत प्रतिक्रिया देने में सक्षम बनाती है।

एकात्मक प्रणाली की सफलता सुनिश्चित करने के लिए, केंद्रीकृत प्राधिकार और सत्ता के हस्तांतरण के बीच संतुलन बनाना महत्वपूर्ण है। स्थानीय शासन पर जोर देने से एकात्मक संरचना की दक्षता और एकता लाभ को बनाए रखते हुए क्षेत्रीय असमानताओं की चिंताओं को दूर करने में मदद मिल सकती है।

सरकार का एकात्मक स्वरूप कई संदर्भों में एक व्यवहार्य और प्रभावी मॉडल बना हुआ है, जो स्थिर शासन, त्वरित निर्णय लेने और राष्ट्रीय एकता के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है। हालाँकि, नीति निर्माताओं के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने नागरिकों की उभरती जरूरतों और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए प्रणाली का लगातार आकलन करें और उसे अनुकूलित करें, जिससे केंद्रीय प्राधिकरण और क्षेत्रीय स्वायत्तता के बीच सामंजस्यपूर्ण संतुलन सुनिश्चित हो सके।

7.8 शब्दावली

केन्द्रीकरण- एक स्थान पर एकत्र होना

अपरिवर्तनशील- जो परिवर्तित (बदल) ना हो सके

प्रभुत्व शक्ति- सर्वोच्च शक्ति, प्रभावी शक्ति

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. गलत 2. क 3. क

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. इंटर-गवर्मेन्ट रिलेशन इन इंडिया ए स्टडी ऑफ फैडरलिज्म- अमल राय

2. फैडरल गवर्मेन्ट- के0 सी0 व्हीयर

3. तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं- सी0बी गैना

7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं- सी0बी गैना

2. आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त- डॉ0 पुष्पेश पाण्डे, डॉ विजय पंत एवं घनश्याम जोशी

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. एकात्मक शासन प्रणाली के अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट करते हुए इसके गुण-दोष बतलाइये।

2. एकात्मक शासन प्रणाली की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिये।

इकाई 8: संघात्मक शासन प्रणाली

इकाई संरचना

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 संघात्मक शासन प्रणाली: अर्थ, परिभाषा

8.3 संघात्मक शासन की विशेषताएँ

8.4 संघात्मक शासन के गुण-दोष

8.5 संघात्मक शासन के गुण

8.6 संघात्मक शासन के दोष

8.7 संघ के लिए अपेक्षित शर्तें

8.8 एकात्मक व संघात्मक शासन प्रणाली में अंतर

8.9 सारांश

8.10 शब्दावली

8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामाग्री

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

संघीय सरकार प्रणाली शासन का एक मॉडल है जिसे दुनिया भर के कई देशों द्वारा व्यापक रूप से अपनाया जाता है। यह केंद्रीय या राष्ट्रीय सरकार और क्षेत्रीय या राज्य सरकारों के बीच शक्ति और अधिकार को विभाजित करने के सिद्धांत पर आधारित है। इस प्रणाली में, सरकार के दोनों स्तरों पर प्रभाव के अलग-अलग और स्वतंत्र क्षेत्र होते हैं, और वे एक ही राजनीतिक इकाई के तहत सह-अस्तित्व में होते हैं।

संघीय सरकार के पीछे मुख्य विचार केंद्रीकृत प्राधिकरण के लाभों और क्षेत्रीय स्वायत्तता के लाभों के बीच संतुलन बनाना है। शक्ति को क्षैतिज रूप से वितरित करके, यह एक ही राष्ट्र के भीतर विविध आबादी, अलग-अलग हितों और अद्वितीय क्षेत्रीय आवश्यकताओं द्वारा उत्पन्न चुनौतियों का समाधान करना चाहता है।

8.1 उद्देश्य

1. संघात्मक शासन प्रणाली की परिभाषा, उसकी विशेषताएँ व गुण- दोष के विषय में जान पाएंगे।

2. संघ के लिए अपेक्षित शर्तों के विषय में जानकारी ले पाएंगे।

3. एकात्मक व संघातमाक शासन प्रणाली में अंतर को जान पाएंगे।

8.2 संघात्मक शासन प्रणाली: अर्थ और परिभाषा

संघात्मक शासन प्रणाली में संविधान के द्वारा केन्द्र व उसकी इकाइयों के बीच शक्तियों का विभाजन किया जाता है। इस शासन में संघीय (केन्द्रीय) सरकार और राज्य सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में संविधान द्वारा दी गई शक्तियों के आधार पर शासन कार्य करती हैं। दोनों सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र होकर कार्य करती हैं। 'संघ' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के फोएड्स शब्द से हुई हैं, जिसका अर्थ है, 'समझौता' या 'संधि'। इस अर्थ के आधार पर समझौता या सन्धि द्वारा निर्मित राज्य को 'संघ' कहा जाता है। वर्तमान विश्व में संघीय राज्यों की संख्या दो दर्जन से ज्यादा नहीं है किन्तु ये राज्य-विश्व के बहुत बड़े हिस्से पर फैले हैं। विश्व के 06 बड़े राज्यों में 05 संघीय राज्य हैं, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका ,कनाडा, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, रूस। भारत, जर्मनी, दक्षिण अफ्रीका, व स्विट्जरलैण्ड आदि अन्य प्रमुख देश हैं। ज्ञातव्य है कि संघीय व्यवस्था ऐसा बना बनाया ढॉचा नहीं है जिसे भिन्न-भिन्न देशों में ज्यों का त्यों लागू किया जा सके। भिन्न-भिन्न देशों में अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार संघीय व्यवस्था अपने-अपने ढंग से विकसित हुई है।

परिभाषाएँ

फाइनर के अनुसार ''संघात्मक राज्य वह है, जिसमें सत्ता शक्ति का एक भाग इकाइयों में निहित रहता है, दूसरा भाग केन्द्र में, जो क्षेत्रीय इकाइयों के लोगों द्वारा जान-बूझकर संगठित की जाती है।''

गार्नर के अनुसार, ''संघ एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारें एक ही प्रभुत्व शक्ति (संविधान) के अधीन होती हैं तथा ये सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में संविधान द्वारा दी गई शक्तियों के आधार पर ही कार्य करती हैं।''

स्ट्रांग के शब्दों में, ''एक संघात्मक राज्य कई राज्यों के मेल से बना एक प्रभुत्व-सम्पन्न राज्य है जिसकी अपनी सत्ता ,मेल करने वाले राज्यों से प्राप्त होती है और जिसमें वे राज्य इस प्रकार बँधे होते हैं कि एक राजनीतिक इकाई का निर्माण होता है।''

8.3 संघात्मक शासन की विशेषताएँ

संघात्मक शासन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. लिखित एवं कठोर संविधान- संघीय शासन का संविधान लिखित एवं कठोर होता है, ऐसा इसलिए कि इकाइयों के अहित में संविधान में कोई संशोधन न हो सके।

2. संविधान की सर्वोच्चता- संघात्मक शसन में संविधान सर्वोच्च होता है। केन्द्र एवं राज्य सरकारें संविधान द्वारा प्राप्त शक्तियों के आधार पर ही कार्य करती हैं, वे संविधान के प्रतिकूल कोई कार्य नहीं कर सकती हैं।

3. सम्प्रभु शक्ति का दोहरा प्रयोग- संघीय शासन में सम्प्रभुता अविभाजित होती है किन्तु एक संघीय राज्य में सम्प्रभुता की अभिव्यक्ति केन्द्र सरकार व राज्य सरकार को प्राप्त शक्तियों के आधार पर होती है तथा दोनों ही अपनी शक्तियॉं संविधान से प्राप्त करती हैं।

4. कार्यों एवं शक्ति का विभाजन- संघीय शासन व्यवस्था में शासन की शक्तियों का विभाजन संविधान द्वारा केन्द्र व राज्य सरकारों के बीच किया जाता है। शक्तियों के वितरण के साथ ही दोनों सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करने को भी स्वतंत्र होती हैं।

5. स्वतंत्र एवं सर्वोच्च न्यायपालिका- संघीय शासन में सर्वोच्च न्यायालय स्वतंत्र होता है। उस पर सरकार के किसी भी अंग (व्यवस्थापिका व कार्यपालिका) का न तो कोई प्रभाव होता है न ही कोई दबाव। संविधान के संरक्षक के रूप में होने के कारण यह सर्वोच्च होता है।

6. दोहरी नागरिकता- संघीय शासन-व्यवस्था में नागरिकों को दोहरी नागरिकता प्राप्त होती है, एक तो केन्द्र की व दूसरी राज्यों (इकाइयों) की किन्तु भारतीय संघ इसका एक अपवाद है। यहॉं नागरिकों को संघ की ही नागरिकता प्राप्त हैं।

7. संबंध विच्छेद की स्वीकृति नहीं- संघीय शासन व्यवस्था में संघ एक स्थाई राज्य होता है। इसलिए किसी भी संघात्मक राज्यों में इकाइयों केा केन्द्र से अलग होने की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती है।

8. द्विसदनीय विधानमण्डल- संघीय शासन में द्विसदनीय विधानमण्डल (संसद) की व्यवस्था होती है। एक सदन-जिसमें राष्ट्र का प्रतिनिधित्व होता है और दूसरा सदन-जिसमें संघ की इकाइयों को प्रतिनिधित्व दिया जाता है। अमरीकी 'प्रतिनिधि सभा' व भारत की 'लोकसभा' समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती हैं, जबकि 'सीनेट' व 'राज्य सभा' इकाइयों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

8.4 संघात्मक शासन के गुण-दोष

वर्तमान में शासन व्यवस्था का सर्वाधिक प्रचलित रूप संघात्मक शासन है। इसीलिए 'सिजविक' का कथन है कि ''जब हम शासन व्यवस्था के स्वरूप के संबंध में भूत से भविष्य की ओर नजर दौड़ाते हैं तो हमें संघात्मक शासन-व्यवस्था के विकास की सबसे अधिक सम्भावना प्रतीत होती है। लास्की भी इसके समर्थन में कहते हैं कि सम्पूर्ण विश्व समाज संधात्मक शासन-व्यवस्था की ओर बढ़ रहा है।

8.5 संघात्मक शासन के गुण

1. विविधता वाले राष्ट्रों के लिए उपयोगी- संघात्मक शासन व्यवस्था विविधता वाले राष्ट्रों के लिए उपयोगी है। जिस राष्ट्र में धर्म, जाति, वर्ग व भाषा के आधार पर विविधता पायी जाती है, उस राष्ट्र में यह शासन व्यवस्था इन विविधताओं की रक्षा करते हुए उपयोगी सिद्ध होती है। इस शासन व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय एकता एवं स्थानीय शासन दोनों के ही हित सम्भव है। भारत जैसे देश में जहॉ इतनी विविधता पायी जाती है संघीय शासन पद्धति श्रेष्ठता के साथ कार्य कर रही हैं।

2. छोटे व कमजोर राज्यों के लिए उपयुक्त- संघीय शासन व्यवस्था में छोटे व कमजोर राज्य संगठित होकर शक्तिशाली राज्य बन सकते हैं क्योंकि संघीय शासन व्यवस्था में छोटे व कमजोर राज्यों की स्वतंत्रता और उनका पृथक अस्तित्व बना रहता है और उन्हें आर्थिक विकास व सुरक्षा के पूर्ण अवसर प्राप्त होते हैं।

3. सार्वजनिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण- संघीय शासन व्यवस्था सार्वजनिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण है। इस व्यवस्था में नागरिकों को राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में विकास के पूर्ण अवसर प्राप्त होते हैं तथा संघ व राज्य इकाइयों को सार्वजनिक जीवन को उपयोगी बनाने हेतु सभी तरह के प्रयोग करने की स्वतंत्रता होती है।

4. बड़े राष्ट्रों के लिए उपयोगी- संघीय शासन प्रशासनिक क्षमता की दृष्टि से बड़े राष्ट्रों के लिए उपयोगी है। संघीय शासन में केन्द्र व राज्य इकाइयों के बीच शासन कार्यो की शक्तियों का बंटवारा होने के कारण यह शासन विशाल राज्यों के लिए उपयुक्त है।

5. नागरिक अधिकारों की सुरक्षा- संघीय शासन में नागरिक अधिकारों की सुरक्षा बनी रहती है क्योंकि इस शासन व्यवस्था में शासन की निरंकुशता पर नियंत्रण लगाये जाते हैं, जिससे नागरिक अधिकार सुरक्षित रहते हैं।

6. आर्थिक रूप से लाभकारी- संघात्मक शासन आर्थिक रूप से लाभकारी है। इस शासन व्यवस्था में केन्द्र तथा राज्य इकाइयों को अपने-अपने आर्थिक संसाधनों को विकसित करने का अवसर मिलता है। संघात्मक शासन मितव्ययी भी है। सेना, रेल, डाक एवं तार तथा अन्य व्यवस्थाओं के एक हो जाने से व्यय में बहुत कमी आ जाती है।

7. सार्वजनिक कार्यों के प्रति उत्साह- संघात्मक शासन में नागरिकों की राजनीतिक चेतना के कारण सार्वजनिक कार्यों के प्रति उनमें उत्साह रहता है। संघात्मक शासन में नागरिकों को शासन-कार्यों में भागीदारी प्राप्त होती है, जिस कारण नागरिक समस्याओं के समाधान में अधिक रूचि लेते हैं, और उनमें आत्म-सम्मान व अभिरूचि की भावना का विकास होता है।

8. प्रजातंत्र के लिए उपयोगी- संघात्मक शासन-व्यवस्था प्रजातंत्र के लिए उपयोगी है, क्योंकि इसमें सत्ता के विकेन्द्रीकरण के कारण स्थानीय स्वशासन की भावनाओं का विकास होता है, जो प्रजातंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है। स्थानीय स्वशासन के विकास के कारण नागरिकों को राजनीतिक ज्ञान मिलता है, उनमें राजनीतिक चेतना का विकास होता है।

9. निरंकुशता की सम्भावना नहीं- संघात्मक शासन व्यवस्था में सरकार के निरंकुश होने की सम्भावना नहीं रहती। इस शासन व्यवस्था में केन्द्र व राज्य इकाइयों के बीच शासन-सत्ता का स्पष्ट विभाजन रहने के कारण केन्द्रीय सरकार निरंकुश और स्वेच्छाचारी नहीं बन सकती है। संविधान तथा न्यायपालिका का उनकी शक्तियों पर नियंत्रण रहता है। केन्द्र तथा स्थानीय सरकारें कोई भी एक-दूसरे के कार्य-क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। स्थानीय स्वशासन के संबंध में राज्य इकाइयों को बहुत स्वतंत्रता रहती है, जिस कारण तानाशाही की सम्भावना नहीं रहती।

8.6 संघात्मक शासन के दोष

उपरोक्त गुणों के बावजूद संघात्मक शासन में अनेक दोष पाए जाते हैं-

1. संगठन व कार्य-पद्धति में भिन्नता- संघीय शासन प्रणाली में प्रशासनिक संगठन व कार्य-पद्धति में भिन्नता पाई जाती है क्योंकि केन्द्र एवं राज्यों को अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करने के लिए स्वतंत्रता और शक्तियॉं प्राप्त होती हैं। कई बार ऐसे विषय होते हैं जो सामान्य महत्व के होते है लेकिन राज्यों को शक्ति प्राप्त होने के कारण अलग-अलग राज्यों द्वारा उस विषय पर अलग-अलग नियम बनाए जाते हैं, जो कठिनाई पैदा करते हैं।

2. जटिल और खर्चीली शासन प्रणाली- संघीय शासन व्यवस्था में संविधान कठोर होने के कारण इसमें आसानी से संशोधन नहीं किया जा सकता, जिस कारण कई बार शासन कार्यो में परेशानी आ जाती है और शासन कार्य जटिल हो जाता है। केन्द्र व राज्यों में दोहरी शासन प्रणाली होने के कारण यह व्यवस्था बहुत ही खर्चीली हो जाती है।

3. केन्द्र व राज्य सरकारों में विवाद- इस शासन व्यवस्था में कई बार संघ व राज्य सरकारों में शासन कार्यों के विषय में विवाद उत्पन्न हो जाता है। कुछ विषय ऐसे होते है जिन पर कानून बनाने व कार्य करने की शक्ति दोनों सरकारों को प्राप्त होती है। ऐसे विषयों पर केन्द्र व राज्य सरकारों में विवाद उत्पन्न हो जाता है।

4. संकट-काल में अनुपयुक्त- संघीय शासन प्रणाली में संविधान संशोधन की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल होती है जिस कारण यह शासन-प्रणाली संकटकाल के लिए उपयोगी नहीं होती।

5. प्रशासन कार्यों में एकरूपता का अभाव- संघीय शासन में केन्द्र व राज्य सरकारों को अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करने के लिए स्वतंत्रता व शक्तियॉं प्राप्त होती हैं और वे अपने-अपने राजनीतिक हितों और सुविधाओं के अनुसार कार्य करती हैं, कभी-कभी एक राज्य की नीति दूसरे राज्य पर गलत प्रभाव डालती है। अतः प्रशासनिक कार्यो के संबंध में इनमें (केन्द्र व राज्यों में) एकरूपता नहीं पायी जाती है।

6. विद्रोह की सम्भावना- संघात्मक शासन में यह आशंका बनी रहती है कि इकाई राज्यों की सरकारें विद्रोह कर सकती हैं और विरोधी हितों की रक्षा के लिए राज्य इकाइयों में फूट और कलह हो सकता है। गृह-युद्ध की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है।

8.7 संघ के लिए अपेक्षित शर्ते

संघ निर्माण के लिए कुछ अपेक्षित शर्तों या तत्वों का होना आवश्यक है। इन शर्तों की पूर्ति होने पर ही संघ का निर्माण सम्भव है। संघ की सफलता या असफलता इन शर्तों पर ही निर्भर करती है। संघ निर्माण के लिए केन्द्र तथा इकाइयों के बीच शासन-शक्तियों का स्पष्ट विभाजन होना चाहिए। साथ ही केन्द्र और इकाइयों की सरकारें एक-दूसरे से स्वतंत्र और एक-दूसरे के समकक्ष होनी चाहिए।

संघ निर्माण तथा उसकी सफलता के लिए निम्नलिखित शर्तें अनिवार्य है:

1. भौगोलिक सामीप्य- संघीय राज्य का क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से सम्पर्कयुक्त होना चाहिए, यदि संघीय राज्य के भाग या इकाइयॉं जल अथवा भूमि द्वारा बड़ी दूरी से एक-दूसरे से कटे होंगे, तो संघीय-व्यवस्था को सफलतापूर्वक नहीं चलाया जा सकेगा। भौगोलिक दृष्टि से निकटता होने पर राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से राष्ट्रीय प्रगति तेजी से हो सकती है। सैनिक दृष्टि से भी भौगोलिक समीपता का विशेष महत्व है। भारत व अमेरिका के संघीय शासन की सफलता का एक बड़ा कारण यह भी है कि भौगोलिक दृष्टि से इकाइयॉं एक दूसरे के निकट हैं। स्विट्जरलैण्ड व आस्ट्रेलिया के संघों में भी यह गुण मौजूद है।

2. संघ की इकाइयों में समानता- संघीय राज्य के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि संघ की इकाइयों को शक्तियों के स्तर में समानता प्राप्त होनी चाहिए, चाहे उनका प्रादेशिक और जनसंख्या संबंधी आकार कुछ भी हो ।सभी इकाइयों को शक्तियों का वितरण समानता के आधार पर प्राप्त होना चाहिए। शक्तियों के असमान वितरण से इकाइयों

में असंतोष पनप सकता है और यह संघ निर्माण के लिए उचित नहीं हो सकता। इस संबंध में मिल का कथन है कि ''संघ का सार यह है कि, कोई एक इकाई राज्य अन्य की अपेक्षा इतना अधिक शक्तिशाली और सम्पन्न न हो कि वह उन्हें दबाए और केन्द्रीय शासन को भी प्रभावित करने का प्रयास करे।

3. राजनीतिक तथा सामाजिक संस्थाओं में समानता- संघ के निर्माण की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि केन्द्र तथा राज्य स्तरों पर प्रशासनिक व्यवस्थाओं की शैली समान हो, भारत तथा आस्ट्रेलिया में केन्द्र तथा राज्यों के स्तर पर शासन का संघीय रूप है। यदि सामाजिक व राजनीतिक दृष्टि से संस्थाओं में समानता नहीं होगी तो संघ का संगठित रहना कठिन हो जायेगा।

4. सामाजिक एवं आर्थिक विकास- संघीय शासन व्यवस्था सफलता पूर्वक कार्य करे इसके लिये यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण संघ का आर्थिक एवं सामाजिक विकास हो। यदि संघ का कोई भी क्षेत्र आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़ा एवं अविकसित होगा तो यह संघीय व्यवस्था के लिए क्षेत्रीय असन्तुलन पैदा कर देगा और यह स्थिति संघ की सफलता के लिए उचित नहीं है।

5. राजनीतिक योग्यता आवश्यक- संघ की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि राजनीतिक नेतृत्व कुशल होना चाहिए और जन-जागरूकता होनी चाहिए। असफल नेतृत्व संघीय व्यवस्था को कमजोर कर सकता है।

6. केन्द्र-राज्य समन्वय- संघ निर्माण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि केन्द्र तथा राज्य इकाइयों के बीच सुखद समन्वय होना चाहिए तथा संघ का चरित्र प्रतियोगी नहीं सहयोगी होना चाहिए ,उसे अपनी नीतियों के प्रति कठोर नहीं नरम होना चाहिए। संघ की क्रिया दमनकारी नहीं बल्कि सहयोग पूर्ण होनी चाहिए।

7. धर्म, संस्कृति, भाषा आदि में समानता- संघ की सफलता में समान संस्कृति, भाषा, धर्म का बड़ा योगदान होता है क्योंकि भौगोलिक दृष्टि से नजदीक राज्य अपनी संस्कृति, भाषा, धर्म की एकता व सुरक्षा के लिए एकत्र होकर संघ बना लेते हैं और यही एकता व समानता संघ की सफलता है।

8. संसाधनों की उपलब्धता- संघीय व्यवस्था में प्रत्येक इकाई की सरकार को मिलने वाले संसाधन एवं विषय पर्याप्त होने चाहिए। जिन राज्य इकाइयों में इन संसाधनों की कमी होती है उन्हें केन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है जिससे संघ की व्यवस्था डगमगा जाती है। अतः संघीय व्यवस्था में संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता होनी चाहिए।

9. राजनीतिक एवं राष्ट्रीय एकता- संघ की सफलता या निर्माण के लिए संघीय राज्य के नागरिकों को राष्ट्रीय रूप में व राजनीतिक दृष्टि से एकताबद्ध होना चाहिए तथा राष्ट्र का राजनीतिक स्वरूप इस तरीके से तैयार होना चाहिए कि पूर्ण राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता और राज्य इकाइयों से संबंधित लोंगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सके। अतः जब तक लोगों में अपनी राजनीतिक व्यवस्था के मूल्यों के प्रति अपनी

निष्ठाएँ व वचनबद्धताएँ नहीं होगीं, तब तक कोई राजनीतिक व्यवस्था सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती। संघीय राज्य के लिए यह अति आवश्यक है ताकि लोग दोहरे शासनों के प्रति अपनी निष्ठा को कायम रख सकें।

10. राजनीतिक जागृति- संघ के निर्माण एवं सफलता के लिए उसके नागरिकों में सक्षम राजनीतिक चेतना होनी चाहिए। संघ के नागरिकों को, संघ और इकाई राज्यों के प्रति अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान आवश्यक है। संघ की सफलता उसके नागरिकों की राजनीतिक जागृति पर बहुत निर्भर करती है।

8.8 एकात्मक व संघात्मक शासन प्रणाली में अंतर

एकात्मक और संघात्मक शासन प्रणालियों में निम्नलिखित आधारों पर अन्तर पाया जाता है-

1. कार्यों और शक्तियों के विभाजन के आधार पर- एकात्मक शासन प्रणाली में शक्ति का स्रोत केन्द्र ही होता है। स्थानीय सरकारों को जो भी शक्ति प्राप्त होती हैं वह केन्द्र के द्वारा ही होती है और शासन कार्यों में किसी भी प्रकार का विभाजन नहीं होता। किन्तु संघात्मक शासन में शासन शक्तियॉ केन्द्र में निहित न होकर क्षेत्रीय सरकारों में भी वितरित होती है ओर इन शक्तियों का स्रोत संविधान होता है।

2. सरकारों की स्थिति के आधार पर अन्तर- एकात्मक शासन व्यवस्था मे केन्द्र सरकार के पास शासन की समस्त शक्तियॉ होती हैं तथा स्थानीय सरकारें केन्द्र के अधीन रह कर कार्य करती हैं। अतः इस शासन व्यवस्था में स्थानीय सरकारों का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। इसके विपरीत संघात्मक शासन में केन्द्र के साथ-साथ स्थानीय सरकारों को भी शासन शक्तियॉ प्राप्त होती हैं तथा वे केन्द्र से स्वतंत्र होकर संविधान की सीमाओं में रहकर कार्य करती हैं।

3. नागरिकता के आधार पर अन्तर- एकात्मक शासन वाले राज्यों में नागरिकों की एक ही नागरिकता होती हैं अर्थात राष्ट्रीय नागरिकता होती है, जबकि संघात्मक राज्यों में नागरिकों को राष्ट्रीय नागरिकता के साथ-साथ इकाइयों की नागरिकता भी प्राप्त होती है अर्थात संघात्मक राज्यों में दोहरी नागरिकता प्राप्त होती है।

4. संविधान की स्थिति के आधार पर अन्तर- एकात्मक शासन वाले राज्यों मे संविधान लिखित और अलिखित दोनों प्रकारों का हो सकता है, जबकि संघात्मक शासन वाले राज्यों में शासन की शक्ति केन्द्र व राज्य सरकारों में विभाजित होती है ओर उस विभाजन को स्पष्ट करने की दृष्टि से संविधान का लिखित होना अनिवार्य है।

5. न्यायपालिका के कार्य संबंधी अंतर- संघात्मक शासन में न्यायपालिका को केन्द्र व इकाइयों, इकाई व इकाई के पारस्परिक अधिकारों संबंधी विवादों का निर्णय करना होता है, जबकि एकात्मक शासन में न्यायपालिका का कार्य मात्र यह देखना होता है कि व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानून कितनी ईमानदारी से लागू हो रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. संघात्मक शासन प्रणाली में संविधान के द्वारा केन्द्र व उसकी इकाइयों के बीच शक्तियों का विभाजन किया जाता है। सही/गलत

2. 'संघ' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के ''फोएड्स'' शब्द से हुई हैं। सही/गलत

3. संघात्मक शासन प्रणाली की यह परिभाषा किसने दी कि ''संघ एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारें एक ही प्रभुत्व शक्ति (संविधान) के अधीन होती हैं तथा ये सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में संविधान द्वारा दी गई शक्तियों के आधार पर ही कार्य करती हैं।''

क. लास्की ख. फाइनर ग. गार्नर घ. ब्राइस

4. किस शासन प्रणाली में दोहरी नागरिकता पायी जाती है?

क. एकात्मक शासन प्रणाली में ख. संघात्मक शासन प्रणाली में

ग. मिश्रित शासन प्रणाली में घ. इनमें से कोई नहीं

8.9 सारांश

मानव सभ्यता के विकास क्रम में किसी न किसी रुप में शासन का संचालन होता आया है। शासन संचालन के ये रुप समय व आवश्यकता के अनुसार बदलते रहे हैं। वर्तमान समय में शासन के दो रुपों एकात्मक व संघात्मक शासन प्रणाली की विशेष चर्चा है। एकात्मक शासन प्रणाली शासन के सभी अधिकार केन्द्र के हाथों में रहते है और वहीं से शासन का संचालन होता है। तथा केन्द्रीय सरकार अपनी इच्छा अनुसार शक्तियों का वितरण करती है। प्रजातंत्रीय शासन प्रणाली में एकात्मक शासन प्रणाली अधिक प्रभावी नहीं है। लेकिन संघीय शासन प्रणाली में केन्द्र व स्थानीय सरकारों में शक्ति का विभाजन होता है। विश्व के बड़े राज्यों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका ,कनाडा, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, रूस ने संघात्मक शासन प्रणाली को अपनाया है।

8.10 शब्दावली

सामीप्य- सुलभता, संगमता

समन्वय- सहयोग, सामंजस्य

8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सही 2. सही 3. ग. 4. ख.

8.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. इंटर-गवर्मेन्ट रिलेशन इन इंडिया ए स्टडी ऑफ फैडरलिज्म- अमल राय

2. फैडरल गवर्मेन्ट- के0 सी0 व्हीयर

3. तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं- सी0बी गैना

8.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं- सी0बी गैना

2. आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त- डॉ0 पुष्पेश पाण्डे, डॉ विजय पंत एवं घनश्याम जोशी

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. संघात्मक शासन प्रणाली से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए इसके गुण-दोष बतलाइये।

2. एकात्मक व संघात्मक शासन प्रणाली को स्पष्ट करते हुए एकात्मक व संघात्मक शासन प्रणाली में अंतर को स्पष्ट करें।

इकाई 9: लोकतंत्र और अधिनायकतंत्र

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 लोकतंत्र का अर्थ एवं परिभाषा
9.4 लोकतंत्र की विशेषताएं
9.5 लोकतंत्र के भेद
9.6 लोकतंत्र के गुण
9.7 लोकतंत्र के दोष व आलोचना
9.8 अधिनायकतंत्र
9.9 अधिनायकतंत्र की विशेषताएं
9.10 अधिनायकतंत्र के गुण व दोष
9.11 सारांश
9.12 शब्दावली
9.13 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
9.14 संदर्भ ग्रन्थ
9.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.16 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

बीसवीं सदी से, लोकतंत्र को शासन के सर्वश्रेष्ठ रूप में सार्वभौमिक स्वीकृति प्राप्त है। यह विचार कि लोगों को स्वयं शासन करना चाहिए, इतना आशाजनक है कि उदारवादी, रूढ़िवादी, समाजवादी, साम्यवादी, यहां तक कि फासीवादी भी हर जगह खुद को लोकतांत्रिक घोषित करने के लिए उत्सुक रहते हैं। ऐसे में लोकतंत्र और उसकी विशेषताओं को समझना अनिवार्य है जो लोकतंत्र को आधुनिक समाज में इतना लोकप्रिय बनाती है।

इस इकाई में हम लोकतंत्र और अधिनायकतंत्र पर विचेचना करेंगे। जहाँ लोकतंत्र का शाब्दिक अर्थ जनता की शक्ति होता है, उसके ही विपरीत, अधिनायकतंत्र एक ऐसी शासन प्रणाली है जिसमें शासन का संचालन सत्ताधारी व्यक्ति की इच्छा के अनुसार होता है। आज के समय में दोनों के बीच अंतर करना बहुत ही आवश्यक है। इस इकाई में लोकतंत्र और अधिनायकतंत्र की प्रमुख विशेषताएं, विभिन्न प्रकार और उनके गुण व दोष पर विस्तार से चर्चा की गई है।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1.लोकतंत्र का अर्थ और परिभाषा समझ सकेंगे।

2.लोकतंत्र की अनेक विशेषताएं स्पष्ट कर सकेंगे।

3.अधिनायकतंत्र का अर्थ और परिभाषा समझ सकेंगे।

4.अधिनायकतंत्र की विशेषताएं समझ सकेंगे।

5.लोकतंत्र और अधिनायकतंत्र के गुण, दोष और आलोचनाओं को जान सकेंगे।

9.3 लोकतंत्र का अर्थ एवं परिभाषा

आधुनिक समाज में लोकतंत्र एक विवादास्पद फिर भी उपयोगी शासन प्रणाली साबित हुई है। जहां यह अस्तित्व में नहीं है, वहां लोग इसके लिए लड़ रहे हैं और जहां यह पहले से ही मौजूद है, वहां लोग इसे परिपूर्ण बनाने का प्रयास कर रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका स्वयं को लोकतंत्र कहता है और पाकिस्तान भी स्वयं को लोकतंत्र कहता है, यहां तक कि अधिनायकवादी राज्य भी स्वयं को लोकतंत्र कहलाना पसंद करते हैं।

लोकतंत्र की जड़ें प्राचीन ग्रीस में पाई जा सकती हैं। अंग्रेजी शब्द डेमोक्रेसी (लोकतंत्र) प्राचीन ग्रीक शब्द 'क्रेटोस'- जिसका अर्थ 'शक्ति' या 'शासन' है- को डेमोस शब्द से मिला कर बनाया गया है, जिसका अर्थ 'जनता' है। इस प्रकार डेमोक्रेसी या लोकतंत्र का शाब्दिक अर्थ 'डेमोस द्वारा शासन' या जनता की शक्ति पर आधारित शासन है।

प्राचीन ग्रीस में, लोकतंत्र को स्वतंत्रता और ज्ञान का दुश्मन माना जाता था। अपने आधुनिक उपयोग के विपरीत वह एक नकारात्मक व अपमानजनक शब्द था, जो संपत्तिहीन और अशिक्षित जनता के शासन को दर्शाता था। इसलिए अरस्तू को डर था कि अनियंत्रित लोकतंत्र 'भीड़ शासन' के रूप में बदल जाएगा। बीसवीं सदी तक आते आते इस धारणा में परिवर्तन आया और लोकतंत्र सक्षम शासन प्रणाली के रूप में देखा जाने लगा।

सदियों से विद्वानों ने लोकतंत्र को अलग-अलग ढंग से समझा और उसकी परिभाषा दी। अब्राहम लींकन के शब्दों में "लोकतंत्र शासन का वह रूप है जिसमें जनता का शासन,जनता द्वारा, जनता के लिए होता है"।

सीले की परिभाषा लें तो "लोकतंत्र एक ऐसी सरकार है जिसमें प्रत्येक का हिस्सा है"।

ब्राइस के अनुसार "यह शासन का वह प्रकार है जिसमें राज्य की शासन शक्ति किसी एक वर्ग या वर्गों के हाथ में नहीं, वरन समुदाय में एक समिष्टके रूप में निहित होती है"।

लैकि के अनुसार "लोकतंत्र अधिकतम निर्धन, अज्ञानी और अयोग्य व्यक्तियों की सरकार है जो की अनिवार्य रूप से बहुत अधिक हैं"।

डायसी के शब्दों में "लोकतंत्र शासन का वह प्रकार है, जिसमें प्रत्येक शासक वर्ग सम्पूर्ण राष्ट्र का तुलनात्मक रूप से एक बड़ा अंश"।

हर्नशॉ ने लिखा है की "लोकतंत्र राज्य जनसाधारणतः वह है, जिसमें प्रभुत्व शक्ति समिष्ट रूप में जनता के हाथ में रहती है, जिसमें जनता शासन सम्बन्धी मामले पर अपना अंतिम नियंत्रण रखती है तथा यह निर्धारित करती है की राज्य में किस प्रकार का शासन-सूत्र स्थापित किया जाए। राज्य के प्रकार के रूप में लोकतंत्र शासन की ही एक विधि नहीं है,अपितु वह सरकार की नियुक्त करने, उस पर नियंत्रण रखने तथा इसे अपदस्थ करने की विधि भी है"। डायसी हर्नशॉ ब्राइस

कई विचारक शासन से आगे बढ़कर, लोकतंत्र को उसके व्यापक अर्थ में देखते हैं। जैसे गिडिंग्स की परिभाषा में प्रजातंत्र केवल सरकार का ही रूप नहीं है वरन राज्य और समाज का रूप अथवा इन तीनों का मिश्रण है"।

सही मायनों में लोकतंत्र शासन का एक ऐसा प्रकार है जो समाज को भी उतना ही प्रभावित करता है। डा. बेनीप्रसाद के अनुसार, लोकतंत्र एक जीवन शैली है।

9.4 लोकतंत्र की विशेषताएँ

लोकतंत्र की लोकप्रियता के पीछे क्या कारण हैं वह निम्नलिखित विशेषताओं से समझा जा सकता हैं।

लोकतंत्र सरकार का एक ऐसा रूप है जिसमें सत्ता लोगों में निहित होती है, जो इसका प्रयोग सीधे या निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से करते हैं। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था जनप्रभुता के विचार पर आधारित है। जनप्रभुता का अर्थ है कि 'सत्ता लोगों से उत्पन्न होती है और लोगों में ही निवास करती है'। लोक प्रभुता को प्राप्त करने के लिए नियम कालिन चुनाव व सरकार का जनता के प्रति उत्तरदायित्व अनिवार्य होता हैं। साथ ही, लोकतंत्र में राजनीतिक और नागरिक स्वतंत्रताएँ लोकतंत्र को मज़बूत रखती हैं, जहाँ सभी नागरिकों को राजनैतिक व आर्थिक समानताएँ प्राप्त हो वह लोकतंत्र सफल माना जाता है। इस में मतदान का अधिकार, भाषण और सभा की स्वतंत्रता का अधिकार, राजनितिक दलों या हित समूहों के साथ जुड़ने का अधिकार, प्रेस की स्वतंत्रता, शासन के कार्यों का विरोध करने का अधिकार इत्यादि सम्मिलित है। स्वतंत्रता के अतिरिक्त लोकतंत्र में राजनितिक व नागरिक समानता भी निहित होती है और कानून के समक्ष सभी व्यक्ति समान होते है। लोकतंत्र में धर्म, जाति, वंश, वर्ण, भाषा, लिंग तथा क्षेत्र के आधार पर भेदभाव नहीं होता है। सैधांतिक रूप से, सामाजिक और आर्थिक समानता को लोकतंत्र का उद्देश्य समझा जा सकता है क्योंकि यह प्रत्येक व्यक्ति के विकास के लिए महत्वपूर्ण है। जब एक व्यक्ति को राजनैतिक समानता प्राप्त होती है तभी वह नागरिक के तौर पर राजनीतिक भागीदारी कर सकते हैं।

व्यक्ति का सर्वांगीण विकास लोकतंत्र का मुख्य ध्येय है। लोकतंत्र अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करता है और यह सुनिश्चित करता है कि बहुसंख्यक व्यक्ति या समूह अल्पसंख्यकों के अधिकारों का उल्लंघन न पाए। लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति के सम्मान और गौरव को महत्ता दी जाती है जिस से स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व की स्थिति प्राप्त हो पति है।

लोकतंत्र की एक विशेषता संविधानवाद भी है। संविधानवाद यानि 'सीमित शक्तियों वाला शासन' जहाँ सरकार संविधान और कानूनों से बंधी हो और सरकारी अधिकारियों सहित सभी व्यक्ति कानून के अधीन हों। लोकतंत्र कानून के शासन द्वारा शासित होते हैं, जिसका अर्थ है कि कानून सरकारी अधिकारियों सहित सभी व्यक्तियों पर समान रूप से लागू होते हैं। यह कानूनी ढाँचे को पारदर्शी बनाता है और मनमाने कानूनों और निरंकुश सत्ता द्वारा शासित नहीं होता। यह शक्ति विभाजन और न्यायपालिका की स्वतंत्र से भी संभव होता है। लोकतंत्र में शासन के अंगों के मध्य शक्तियों का कार्यकारी, विधायी और न्यायिक शाखाओं के बीच विभाजित किया जाता है। शक्तियों का यह विभाजन यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी एक शाखा बहुत अधिक शक्तिशाली न हो जाए और प्रत्येक शाखा दूसरों पर अंकुश लगाने का काम करे, जिससे शक्ति का दुरुपयोग रोका जा सके। लोकतंत्र में अक्सर सत्ता का विकेंद्रीकरण शामिल होता है, जिससे स्थानीय सरकारों और समुदायों को कुछ हद तक स्वायत्तता और निर्णय लेने का अधिकार मिलता है।

लोकतंत्र कई राजनीतिक दलों और विविध दृष्टिकोणों के अस्तित्व की अनुमति देता है। कई राजनीतिक दल और समूह सत्ता के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, नागरिकों को विविध विकल्प और प्रतिनिधित्व प्रदान करते हैं। यह राजनीतिक बहुलवाद स्वस्थ राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, बहस और समाज के भीतर विभिन्न हितों के प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देता है।

यह विशेषताएं समग्र रूप से एक लोकतांत्रिक प्रणाली में योगदान करती हैं जिसका उद्देश्य व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रता की सुरक्षा करते हुए लोगों के कल्याण और हितों को बढ़ावा देना है।

9.5 लोकतंत्र के भेद

प्रमुख तौर पर लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था के दो भेद माने गये है- प्रत्यक्ष लोकतंत्र व अप्रत्यक्ष या प्रतिनिध्यातमक लोकतंत्र। जब जनता शासन के कार्यों में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेती है, नीति निर्धारण करती है और कानून बनाती है, उसे प्रत्यक्ष लोकतंत्र कहा जाता है। हर्नशा के अनुसार "शुद्ध रूप से लोकतंत्र शासन वह होता है, जिसमें सम्पूर्ण जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से बिना कार्यवाहकों या प्रतिनिधियों के प्रभुसत्ता का प्रयोग करती है।" अर्थात लोकतंत्र में जनता संप्रभु होती है।

अप्रत्यक्ष लोकतंत्र से तात्पर्य है जिसमें जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से सत्ता में भागीदार न होकर, अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन के कार्यों में भाग लेती है। मिल के अनुसार "अप्रत्यक्ष लोकतंत्र वह होता है जिसमें सम्पूर्ण जनता अथवा उसका बहुसंख्यक भाग शासन की शक्ति का प्रयोग अपने उन प्रतिनिधियों द्वारा करती है, जिनका वह समय-

समय पर चुनाव करती हैं। हर्नशा के शब्दों में "यह प्रतिनिधियों के माध्यम से सर्वोच्च सत्तावान जनता का शासन होता है।"

अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र प्रतिनिधिवादी लोकतन्त्र भी कहलाता है। इसकी व्याख्या करते हुए ब्लंशली ने लिखा है, "एक प्रतिनिधिवादी लोकतन्त्र में नियम है कि जनता अपने अधिकारियों के द्वारा शासन करती है और अपने प्रतिनिधियों के द्वारा कानून बनाती तथा प्रशासन का नियंत्रण करती है।" आधुनिक लोकतन्त्रों में उसका यही प्रकार प्रचलित है। अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र के आजकल कई प्रकार पाये जाते हैं जैसे, संसदात्मक जिसमें कि संसद प्रधान होती है, अध्यक्षात्मक (Presidential) जिसमें कि अध्यक्ष को विशेष अधिकार मिले होते हैं, एकात्मक जिसमें केंद्रीय सरकार मुख्य होती है और संघात्मक जिसमें अनेक राज्यों की सरकारें मिलकर एक संघ सरकार बनाती हैं और राज्य सरकार तथा संघ सरकार दोनों के काम बँटे हुए होते हैं।

9.6 लोकतंत्र के गुण

प्रो० डब्ल्यू. ई० हाकिंग ने लोकतन्त्र व्यवस्था के पक्ष को पुष्ट करते हुए यहां तक कहा है कि 'लोकतन्त्र चेतन और उप-चेतन मन की एकता है।' संक्षेप में, लोकतंत्र के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं:-

लोकतन्त्र का सबसे बड़ा योगदान जनता को स्वतन्त्रता और समानता के अधिकार देना है। लोकतंत्र में व्यक्ति के साथ जाति, धर्म, नस्ल, लिंग व क्षेत्र के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता, वे कानून के सामने समान माने जाते हैं तथा जितनी स्वतंत्रता जनता को लोकतंत्र में प्राप्त होती है, उतनी अन्य शासन व्यवस्थाओं में नहीं होती।

लोकतंत्र सार्वजनिक जन शिक्षण का श्रेष्ठतम माध्यम है। लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था में जनता अपने सार्वजानिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहती है क्योंकि उन्हें मताधिकार व विचारों की अभिव्यक्ति द्वारा सभी क्षेत्रों में भागीदारी का मौका मिलता है। इस कारण जनता को प्रशासनिक, आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक सभी प्रकार का शिक्षण प्राप्त होता है। लोकतंत्र की सफलता के लिए जनता का शिक्षित होना अत्यन्त आवश्यक है। सी० डी० बर्न के अनुसार, "समस्त सरकार शिक्षा की एक प्रणाली है, परन्तु सर्वोत्तम शिक्षा आत्म शिक्षा है, इसलिये सर्वोत्तम सरकार स्वशासन है, जोकि जनतन्त्र है।" लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था विचार-विमर्श व समझौते की भावना पर आधारित होती है जो उच्च कोटि का राष्ट्रीय चरित्र विकसित करने में सहायक होती है।

लोकतंत्र एक लोकप्रिय शासन व्यवस्था होती है क्योंकि सत्ता जनता के ही सक्रीय भागीदारी द्वारा चुनी जाती है। इसमें जनता उदासीन दर्शक मात्र नहीं होती वह अपने अधिकारों का प्रयोग करके देश के सार्वजनिक क्षेत्र में सक्रीय भाग लेती है। अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति सजग रहती है कि उसके प्रतिनिधि उनके हित में कार्य कर भी रहे है या नहीं। लोकतंत्र में यह आभाष रहता है कि यदि कोई कानून जनता के हित में न हो तो जनता उन कानूनों को अस्वीकृत कर देगी।

लोकतंत्र में स्वशासन होने के कारण क्रांति से सुरक्षा प्रदान होती है और नागरिकों में देशभक्ति का विकास होता है। मिल के अनुसार, "जनतन्त्र देश के लिए प्रेम को मजबूत बनाता है क्योंकि नागरिक यह अनुभव करते हैं कि सरकार स्वयं उनकी सृष्टि है और न्यायाधीश उनके मालिक न होकर सेवक हैं"। जनता की सक्रिय भागीदारी से उनका राज्य के प्रति लगाव बना रहता है और इस लगाव से देशभक्ति की भावना जागृत होती है। लोकतंत्र में क्रान्ति की सम्भावना नहीं रहती क्योंकि शासन द्वारा सारे कार्य जनता के हित में ही किये जाते है तथा जनता की सुरक्षा शासन का कर्तव्य है। इस सम्बन्ध में गिलक्राइस्ट का कहता है की "लोकप्रिय शासन जन सहमति का शासन है। स्वभाव से ही वह क्रान्तिकारी नहीं हो सकता।"

लोकतंत्र किसी भी दूसरी शासन व्यवस्थाओं से अधिक कार्यकुशल होता है। शासन सम्बन्धी कोई भी कार्य लोकहित को ध्यान में रखकर किया जाता है। जनता की सरकार होने के कारण लोकतंत्र में जनता स्वेच्छापूर्वक कानून का पालन करती है। लोकतन्त्र में शासन पर जनता का नियन्त्रण रहता है और वह जब चाहे बहुमत से शासन में परिवर्तन कर सकती है।

9.7 लोकतंत्र के दोष व आलोचना

लोकतंत्र की प्रशंसा के साथ उसकी कड़ी आलोचना करना भी अति आवश्यक है। कुछ विद्वान लोकतन्त्र को सही अर्थों में भीड़तन्त्र कहते है। कुछ विचारकों का कहना है की यह अयोग्य व्यक्तियों का शासन है जहाँ योग्यता से अधिक संख्या बल को महत्व दिया जाता है। सभी मतदान योग्यता के आधार पर नहीं होते क्योंकि कई बार जनता राजनीतिक समस्याओं और लोक हित को समझने में असमर्थ होती है। इस सम्बन्ध में कार्पय्ल का कहना है कि 'विश्व में एक योग्य व्यक्ति के साथ लगभग 9 मूर्ख होते है और सभी को समान राजनीतिक शक्ति देने का परिणाम, मूर्खों की सरकार की स्थापना होता है।' अनेक विचारकों ने लोकतन्त्र को भीड़ का शासन बतलाया है क्योंकि इसमें बहुमत शासन करता है और इसलिये भीड़ का मनोविज्ञान काम करता है।

क्षेत्र व जनसंख्या की दृष्टि से आधुनिक राज्यों में प्रतिनिधियात्मक प्रजातंत्र के संचालन के लिए दलीय-प्रणाली एक अनिवार्य आवश्यकता है। किन्तु दल प्रणाली अपने व्यवहार के द्वारा लोकतंत्र को भ्रष्ट कर देती है। व्यवहार में इन राजनीतिक दलों का निर्माण सत्ता हथियाने के लिए व अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए होने लगा है। नेताओं द्वारा दूसरे दल के नेताओं पर छीटाकसी, सत्ता हथियाने के साधन बन गये है, जिस कारण नागरिकों के हितों की अनदेखी होती है।

लोकतंत्र पर यह आरोप लगते रहे है कि यह धनवानों का शासन है जहाँ पैसों के बल पर चुनाव जीते जाते हैं जिस कारण साधारण व्यक्ति को प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता। लोकतंत्रीय व्यवस्था में कानून निर्माण की प्रक्रिया इतनी लम्बी होती है कि कानूनों के निर्माण में वर्षों लग जाते हैं जिसमें सार्वजनिक धन और समय की बरबादी होती है। चुनावों के समय में भी सार्वजनिक धन की बहुत बरबादी होती है।

आलोचकों का मानना है लोकतंत्र के सिद्धांत और व्यवहार में अंतर पाया जाता है, क्योंकि सामान्यतः बहुमत दल शासन अपनी इच्छानुसार चलाता है और वो अपने हितों की पूर्ति व अपने घनिष्ठों के निजी स्वार्थ सिद्धि में ही शासन का संचालन करता है। इसलिए लोकतंत्रीय शासन भ्रष्ट हो जाता है।

जहाँ लोकतंत्र समानता के आदर्श पर आधारित है, वहीं व्यवहार में चुनाव धन और बल से सम्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में एक सामान्य व निर्धन व्यक्ति के चुनाव में खड़े होने और विजयी होने की आशा नहीं की जा सकती है। बारकर के शब्दों में, "लोकतन्त्र में कुछ ऐसे चालाक व्यक्तियों का शासन होता है जो बड़ी सफलता से जनता के मतों को अपने पक्ष में कर लेते हैं।"

राजनितिक दल निर्वाचन के समय राजनीतिक समस्याओं का बड़ा ही विकृत रूप सामने रखते हैं। धर्म, जाति, क्षेत्र व भाषा के आधार पर जनता को बॉट बैंक मात्र समझा जाता है और अपना राजनीतिक स्वार्थ पूरा किया जाता है। इन कारणों से मतदाताओं में उदासीनता उत्पन्न होती है। इस प्रकार राजनैतिक शिक्षा के स्थान पर जनता को राजनैतिक और सामाजिक दोनों प्रकार की कुशिक्षा प्राप्त होती है।

लौर्ड ब्रोहम का कहना है कि जनतन्त्र में, "न तो विदेशी और न आन्तरिक मामलों में किसी स्थायी और समीचीन नीति की सुरक्षा होती है। सरकारें बदलती रहती हैं और उनके साथ-साथ आन्तरिक और बाहरी नीतियाँ भी बदलती रहती हैं जिससे जनता को अत्यधिक कष्ट होता है।

लोकतंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि ईमानदार व योग्य व्यक्ति राजनीति में भाग लें। इन दोषो के बावजूद भी इस तथ्य को स्वीकार किया जाता है की लोकतंत्र अन्य शासन व्यवस्थाओं, राजतंत्र व अधिनायक तंत्र के स्थान पर बेहतर विकल्प है। लोकतंत्र एक लोकप्रिय शासन-व्यवस्था है, जिसमें नागरिकों के अधिकार सुरक्षित रहते है।

9.8 अधिनायकतंत्र

अधिनायकतंत्र, लोकतंत्र के विरूद्ध एक शासन प्रणाली है। अधिनायकतंत्र में एक ही व्यक्ति में सम्प्रभुता निहित होती है और उसके इच्छानुसार ही शासन का संचालन किया जाता है। कई विद्वानों ने अधिनायकतंत्र को परिभाषित किया है। फोर्ड ने अधिनायकतंत्र की परिभाषा करते हुए कहा कि "राज्य के प्रमुख द्वारा असीमित सत्ता प्राप्त कर लेना ही अधिनायकतंत्र है"। न्यूमैन ने अनुसार "अधिनायकतंत्र से आशय एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के शासन करने से है।"

सोल्टाऊ के शब्दों में "अधिनायकतंत्र एक व्यक्ति का शासन है, जो अपनी सत्ता को वंश-परम्परा के साथ-साथ शान्ति व सहमति के आधार पर भी प्राप्त करता है और वह सत्ता प्राप्त व्यक्ति या संगठन पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न होता है, जिस प्रभुसत्ता का प्रयोग वह मनमाने आदेश जारी करके करता है।"

9.9 अधिनायकतंत्र की विशेषताएं

विद्वानों ने अधिनायकतंत्र को अपने अपने ढंग से समझा है। अधिनायकतंत्र की कुछ ख़ास विशेषताऐं और लक्षण हैं। अधिनायकतंत्र को लोकतंत्र के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में देखा जाता है और यह स्वभावतः लोकतंत्र का विरोध करता है। अधिनायकतंत्र के समर्थक लोकतंत्र को घृणा की दृष्टि से देखते है। वह संसद को 'बकवास की दुकान' और लोकतंत्र को एक 'सड़ा हुआ शव' कहते सामने आए हैं।

अधिनायकतंत्र के समर्थक एक ही व्यक्ति की सत्ता को स्वीकार करते हैं तथा उसे ही प्रभुसत्ता सम्पन्न मानते है। वे शक्ति के केन्द्रीकरण का समर्थन करते हैं। शक्ति केन्द्रित राज्य या सर्वाधिकारवादी राज्य में विश्वास अधिनायकतंत्र का एक प्रमुख लक्षण है। इस प्रणाली में शासन वर्ग सर्व शक्तिशाली होता है जो नागरिक जीवन के सभी पक्षों पर नियंत्रण रखता है। यह मुसोलीनी के इस कथन से भी स्पष्ट होता है की "सब कुछ राज्य के अन्तर्गत है, न राज्य के बाहर कुछ है और न राज्य के विरूद्ध कुछ है"। एक दल व एक नेतृत्व में विश्वास।

अधिनायकतंत्रीय शासन व्यवस्था में एक दल व एक व्यक्ति की सरकार होती है जो कि स्वाभाविक रूप से व्यक्तिगत स्वतंत्रता का समर्थन नहीं करती और उसका पुरज़ोर के विरोध करती है। अधिनायकवादी शासन एक निरंकुश शासन होता है जो जनता द्वारा अपना विरोश पसंद नहीं करते। व्यक्तिगत स्वतंत्रता अधिनायकतंत्र के लिए एक बड़ा खतरा माना जाता है। स्वतंत्रता और जनमत को दबाने के लिए जनमत के माध्यम, जैसे समाचार पत्र, टी०वी०, रेडियो, साहित्य व चलचित्र आदि, पर कठोर प्रतिबन्ध लगाते है और इन माध्यमों पर अपने पक्ष में प्रचार कराने के लिए दबाव बनाते है।

अधिनायकवादी शासन सत्ता में अपनी पकड़ बनाये रखने के लिए जनता में उग्र राष्ट्रवाद की भावना भड़काते है और जनता को देश प्रेम के नाम पर अंध भक्त बना देते हैं जहाँ वे अपने शासक का पूर्ण समर्थन करते है।

9.10 अधिनायकतंत्र के गुण व दोष

अधिनायकतंत्र का प्रमुख गुण है शासन व्यवस्था में कुशलता व एकता बनाये रखना। अधिनायकवादी शासन व्यवस्था में सम्पूर्ण शासन एक ही व्यक्ति के हाथों में होने के कारण कानूनों के निर्माण व शासन के निर्णयों में अतिशीघ्रता होती है और उसका विरोध नहीं होता है। अधिनायकतंत्रीय शासन में सत्ता के कार्यों का विभाजन नहीं होता और सभी कार्यों को एक ही व्यक्ति सम्पादित करता है। इस कारण निर्णय निर्माण की प्रक्रिया सरल हो जाती है। संकटकाल में घड़ी में भी अधिनायकतंत्र अधिक सक्षम और उपयुक्त होता है क्योंकि आन्तरिक व वाह्य सभी तरह के निर्णय एक ही व्यक्ति द्वारा लिए जाते हैं। इटली व जर्मनी के प्रमाण देखें तो यह भी स्पष्ट है की अधिनायकतंत्रीय शासन व्यवस्था राष्ट्रीयवादी भावनाओं को जाग्रत करने में बहुत प्रभावशाली होती है।

उपरोक्त गुणों के बावजूद अधिनायकतंत्र में कुछ दोष भी पाए जाते हैं जैसे की इसमें व्यक्ति और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की कोई महत्ता नहीं है। व्यक्ति अपनी योग्यता व विवेक के बल पर समाज व राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। किन्तु इस शासन व्यवस्था में व्यक्ति पर अनेक अंकुश होते है जो मानव विवेक, तर्क और योग्यता का अंत कर देते है। अधिनायकवादी राज्य जनता को युद्ध के लिए उत्साहित रखता है। अधिनायकवादी शासन अपने समर्थन को मजबूत करने के लिए एक शत्रु देश या विशेष समुदाय के प्रति द्वेष पर निर्भर करते हैं जिससे युद्ध की प्रवृति को प्रोत्साहन मिलता है।

इस शासन व्यवस्था में सम्पूर्ण शक्ति एक ही व्यक्ति में केन्द्रित होने के कारण सत्ता का दुरूपयोग होता है और सत्ताधिकारी निरंकुश होता है। इस कारण अधिनायकतंत्रीय शासक अत्याचार और अनैतिकता का रास्ता अपना लेता है। यह शासन व्यवस्था अपना विरोध स्वीकार नहीं करती और एक योग्य उत्तराधिकारी को उठने का अवसर नहीं प्रदान करती। ऐसे में अच्छे प्रशासन को बनाये नहीं रखा जा सकता।

इस सम्बन्ध में लार्ड एक्टन का कथन उचित है कि "शक्ति भ्रष्ट करती है और निरंकुश शक्ति पूर्णतया भ्रष्ट करती है।"

अभ्यास प्रश्न

1) "प्रजातंत्र केवल सरकार का ही रूप नहीं है वरन राज्य और समाज का रूप अथवा इन तीनों का मिश्रण है"- यह किसने परिभाषित किया।

   i)गिडिंग्स ii) डायसी iii) हर्नशॉ iv)ब्राइस

2) "लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था जनप्रभुता पर आधारित है"- सही / गलत

3) अधिनायकतंत्र का सबसे बड़ा योगदान जनता को स्वतन्त्रता और समानता प्रदान करना है- सही/गलत

9.11 सारांश

लोकतंत्र की कमियों को ध्यान में रखते हुए अनेक विचारक इस बात का समर्थन करते हैं कि लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था के स्थान पर अधिनायकतंत्रीय शासन व्यवस्था को ग्रहण कर लिया जाना चाहिए। यही शासन व्यवस्था प्रशासन में सुधार कर नागरिकों के प्रति विश्वास पैदा कर सकती है। किन्तु यह व्यवस्था किसी भी स्थिति में स्थाई रूप से सुधार करने में समर्थ नहीं हो सकती क्योंकि अधिनायकवादी शासकों के पास निरंकुश शक्ति होने के कारण वह कुछ समय बाद भ्रष्ट व अत्याचारी हो जाते है। इसलिए लोकतंत्र में व्याप्त कमियों को दूर करने की आवश्यकता है, न कि लोकतंत्र के स्थान पर अधिनायकतंत्र को अपनाने की आवश्यकता है। लोकतंत्र में चाहे कितनी भी खामियों हो, अधिनायकतंत्र उसका स्थान नहीं ले सकता क्योंकि लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था ही मानव की गरिमा, उसके

व्यक्तित्व के सम्मान और शासन कार्य में उसकी सहभागिता सम्भव बनाने का श्रेष्ठतम साधन है। इस सम्बन्ध में स्मिथ का कथन है "लोकतंत्र की सभी कमियों का निदान लोकतंत्र के द्वारा ही सम्भव है।"

लोकतन्त्र केवल शासन का ही रूप नहीं, यह जीवन का ढंग भी है। इसमें व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास संभव है। यह व्यक्ति जीवन के विभिन्न पहलुओं को अलग-अलग करके नहीं, सम्मिलित रूप से विकसित होने का अवसर प्रदान करने वाली व्यवस्था है। इक्कीसवीं सदी में लोकतंत्र की वैधता और लोकप्रियता इससे स्पष्ट होती है की प्रशासनिक अकुशलता, भ्रष्टाचार इत्यादि जैसी आलोचनाओं के बावजूद कुछ राज्य अधिनायकतंत्र होते हुए भी लोकतांत्रिक होने का दावा करते हैं।

9.12 शब्दावली

लोकप्रिय संप्रभुता- ऐसी संप्रभुता जो जनसहमती पर आधारित हो।

संप्रभुता – राज्य को प्राप्त सर्वोच्च्ज शक्ति जिसके कारण वह अपने आतंरिक तथा बाह्य मामलों में पूर्णतः स्वतंत्र होता है।

निरंकुश- जिस पर किसी भी प्रकार का अंकुश न हो।

संविधान- राज्य की मूल विधि जो राज्य और सरकार का आधार होती है।

9.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- गिडिंग्स

2- सही

3- गलत

9.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लास्की -----द प्राब्लम्स आफ सावरिन्टी

2. हेसिये ----पॉलिटिकल प्लूरेलिज्म

3. ज्ञान सिंह सन्धु -- राजनीति के सिद्धान्त, ग्रन्थ विकास, जयपुर

4. डॉ0वी0एल साह व डॉ नीता बोरा, राजनीतिक विज्ञान का परिचय, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी।

5. ओम प्रकाश गाबा, राजनीतिक सिद्वान्त की रूपरेखा, मजूर पे परबैम्स नोएडा।

6. डॉ पुष्पेश पाण्डे व डॉ विजय प्रकाश पन्त, राजनीतिक सिद्वान्त,जगदम्बा पब्लिसिंग कम्पनी नई दिल्ली।

7. तिवारी, बी.के. (2005) राजनीती विज्ञान के सिद्धांत, न्यू रॉयल बुक कंपनी

9.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. राजनीति के सिद्धान्त, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय

2. जे0सी0जौहरी एवं सीमा चौधरी ----आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त , स्टर्लिंग पब्लिकेशन प्रा0 लि0 नयी दिल्ली

9.16 निबंधात्मक प्रश्न

लोकतंत्र से आप क्या समझते हैं? लोकतंत्र के गुण और दोषों का आलोचनात्मक विश्लेषण करें।

विकासशील देशों में लोकतंत्र के सामने आने वाली चुनौतियों का मूल्यांकन करें।

लोकतंत्र के विकल्प के रूप में अधिनायकतंत्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।

इकाई 10 व्यवस्थापिका – एक सदनीय, द्विसदनीय, व्यवस्थापिका का पतन

इकाई संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 व्यवस्थापिका : संगठन एवं कार्य

10.4 एकसदनात्मक व्यवस्थापिका

10.5 द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका: गुण एवं दोष

10.6 व्यवस्थापिका के कार्य

10.7 राजनीतिक व्यवस्थाओं में व्यवस्थापिका की भूमिका एवं पतन के कारण

10.8 सारांश

10.9 शब्दावली

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.12 सहायक उपयोगी सामग्री

10.13निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

सरकार राज्य का एक प्रमुख तत्त्व है अर्थात हम कह सकते है कि राज्य की कल्पना सरकार के बिना नहीं की जा सकती। सरकार के कार्यों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जहां तक व्यवस्थापिका का संबंध है तो इसका प्रमुख कार्य देश के लिए कानूनों का निर्माण करना होता है जिसके आधार पर शासन व्यवस्था का संचालन किया जाता है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जाएंगे किः

- सरकार के प्रमुख अंगों में व्यवस्थापिका के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
- व्यवस्थापिका के संगठन एवं कार्यों के बारे में विस्तार से अध्ययन सामग्री प्राप्त कर सकते हैं।
- व्यवस्थापिका के पतन के क्या कारण हैं उसका भी तुलनात्मक अध्ययन प्राप्त किया जा सकता है।

10.3 व्यवस्थापिका: संगठन एवं कार्य

सरकार के तीन अंग हैं-व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। कार्यों की प्रकृति एवं सार्वजनिक उत्तरदायित्व के दृष्टिकोण से व्यवस्थापिका तीनों अंगों में सर्वोच्च है। व्यवस्थापिका का कार्य है-विधिनिर्माण करना। तुलनात्मक राजनीति की आधुनिक शब्दावली के अंतर्गत व्यवस्थापिका के स्थान पर नियम-निर्माण विभाग का प्रयोग किया जाता है।

व्यवस्थापिका के संगठन के कई आधार है। अलग-अलग देश मेंव्यवस्थापिका के संगठन के लिए अलग-अलग आधार अपनाया जाता है। कुछ देशों में व्यवस्थापिका का संगठन प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है तथा कुछ देशों में व्यवस्थापिका का संगठन अप्रत्यक्ष रूप से होता है। आमतौर से द्वितीय सदन के संगठन का आधार अप्रत्यक्ष होता है।

आधुनिक युग में व्यवस्थापिका के निर्वाचन का आधार राजनीतिक दल है। राजनीतिक दलों के आधार पर ही व्यवस्थापिका का संगठन होता है।व्यवस्थापिका के संगठन में उम्र, लिंग, स्थान आदि तत्त्वों को भी ध्यान में रखा जाता है। आमतौर से विश्व के अधिकांश देशो में प्रथम सदन के संगठन में वयस्क मताधिकार को ही आधार माना जाता है। कुछ विशेष प्रकार के हितों तथा अल्पसंख्यकों को मान्यता देने के लिए कुछ विशेष प्रकार की व्यवस्थाएँ अपनाई जाती है, जैसे आरक्षण, मनोनयन आदि।

व्यवस्थापिका के संगठन का विश्लेषण करने के क्रम में एकसदनात्मक एवं द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका का उल्लेख करना आवश्यक है।

10.4 एकसदनात्मक व्यवस्थापिका

जिस व्यवस्थापिका में एक सदन हो उसे एकसदनात्मक व्यवस्थापिका कहा जाता है। अनेक विद्वानों का मत है कि एकसदनात्मक व्यवस्थापिका ही लोकतंत्र के लिए उपयुक्त है। फ्रांस के विद्वान विधिवेत्ता ऐबे सिएज के कथनानुसार द्वितीय सदन एक अनावश्यक सदन है। उसने द्वितीय सदन की अनुपयोगिता की चर्चा करते हुए कहा है, "द्वितीय सदन यदि प्रथम सदन से सहमति व्यक्त करता है तो यह अनावश्यक है और यदि असहमति व्यक्त करता है तो शैतानी करता है" सिएज ने यह भी कहा है कि कानून लोगों की इच्छा का फल है। लोग एक ही समय में एक ही विषय पर दो भिन्न इच्छाएँ नहीं कर सकते।

फ्रांस और इंगलैंड में क्रमशः 1891 तथा 1651 ई0 में एकसदनात्मक व्यवस्थापिका अपनाने का प्रयोग किया गया था, परंतु कई कारणों से वह प्रयोग सफल नहीं हो सका।

एकसदनात्मक व्यवस्थापिका की उपयोगिता के संबंध में यह कहा जाता है कि यह लोकतंत्र के अनुकूल है तथा इसके अंतर्गत दो सदनों के बीच पारस्परिक संघर्ष या तनाव का वातावरण नहीं रहता। आज अधिकांश विद्वानों की यह मान्यता है कि कई दृष्टियों से द्विसदनात्मक व्यवस्था ज्यादा उपयुक्त और उपयोगी है। आज यद्यपि चीन, यूनान, इस्टोनिया, युगोस्लाविया तथा कुछ अन्य देशों में एकसदनात्मक व्यवस्थापिका बनी हुई है, तथापि अधिकांश देशों में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका को ही स्थान दिया गया है।

10.5 द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका: गुण एवं दोष

दो सदनों वाली व्यवस्थापिका को द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका कहा जाता है। आज विश्व के अधिंकाश देशों में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका का प्रावधान किया गया है। कई विद्वान यह मानते हैं कि द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका इंगलैंड की देन है। विलोबी ने कहा है, "यदि ब्रिटिश संसद द्विसदनात्मक न होती तो शायद विश्व के अन्य विधानमंडल भी द्विसदनात्मक नहीं होते।" पोलॉस्की नामक विद्वान ने कहा है, "यह केवल ऐतिहासिक संयोग की बात है कि इंगलैंड की व्यवस्थापिका द्विसदनात्मक थी और अन्य देशों ने उसी का अनुसरण किया।"

जिन देशों में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की व्यवस्था है, वहाँ एक सदन को प्रथम सदन तथा दूसरे को द्वितीय सदन कहा जाता है। प्राचीन काल में द्वितीय सदन को उच्च सदन कहा जाता था। प्रथम सदन लोकप्रिय सदन होता है तथा द्वितीय सदन विशेष हितों का प्रतिनिधित्व करने वाला सदन है। इंगलैंड की लार्ड्स सभा वहाँ के उच्च घराने के लॉर्डो एवं पियरों का प्रतिनिधित्व करती है। संघात्मक शासन-व्यवस्था के अंतर्गत द्वितीय सदन राज्यों या संघ की ईकाईयों का प्रतिनिधित्व करता है।

उच्च सदन या द्वितीय सदन की रचना में भी भिन्नता पाई जाती है। इंगलैंड में लॉर्ड्स सभा के संगठन का आधार वंश परंपरानुगत सिद्धांत है, अमेरिका, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, पॉलैंड द्वितीय सदन प्रत्यक्ष ढंग से निर्वाचित होता है। भारत में द्वितीय सदन अप्रत्यक्ष ढंग से निर्वाचित होता है तथा इसके कुछ सदस्य मनोनीत भी होते है।

द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के गुण

प्रत्येक व्यवस्था की तरह द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका में भी गुण-दोष पाए जाते हैं। हम सर्वप्रथम इसके गुणों का वर्णन करेंगे।

1.द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत द्वितीय सदन प्रथम सदन की निरंकुशता पर रोक के रूप में काम करता है। यदि एक ही सदन हो तो वह मनमाने ढंग से जन विरोधी कानून भी पारित कर दे सकता है। लिकॉक के कथनानुसार, "एकसदनात्मक व्यवस्थापिका निरंकुश तथा अनुत्तरदायी होती है तथा भावनाओं के प्रवाह में बह जाती है।" जे0 एस0 मिल ने भी कहा है, "द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका का प्रावधान होना चाहिए जिससे कोई भी सदन असीमित शक्तियों के दूषित प्रभाव का शिकार न हो।"

2.आमतौर से प्रथम सदन जल्दबाजी में विधिनिर्माण के क्रम में अनेक प्रकार की भूलें या गलतियाँ कर देता है, जिनका सुधार द्वितीय सदन के द्वारा किया जाता है। लेकी ने कहा है, "द्वितीय सदन कानून पर सुधारात्मक, रोकात्मक तथा क्रमबद्धात्मक प्रभाव डालता है।"

3.लोकप्रिय सदन में, प्रत्यक्ष निर्वाचित सदस्य होने के कारण, अधिकांश सदस्यों को कानूनी भाषा का पूर्ण ज्ञान नहीं रहता जिसके कारण प्रथम सदन द्वारा पारित विधेयकों में भाषा की अनेक अशुद्धियाँ रह जाती हैं, जिसे द्वितीय सदन में दूर करने का प्रयास किया जाता है।

4.एकसदनात्मक व्यवस्थापिका में विशेष हितों का प्रतिनिधित्व संभव नहीं है, क्योंकि इसके अंतर्गत सदन का संगठन प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर होता है। द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत द्वितीय सदन में विशेष हितों का प्रतिनिधित्व आसानी से हो सकता है।

5.कुछ ऐसे लोग होते हैं, जिनकी सेवा या योगदान की व्यवस्थापिका को आवश्यकता होती है, परंतु वे लोग चुनाव लड़कर लोकप्रिय सदन में नहीं आ सकते। भारत में जिस ढंग से तथा जिस आधार पर चुनाव संपन्न होता है, अधिकांश अच्छे लोग बलवती इच्छा एवं

योग्यता रहने के बावजूद चुनाव नहीं लड़ सकते हैं। उस स्थिति में द्वितीय सदनों के माध्यम से ही विशेषज्ञ एवं प्रबुद्ध लोग व्यवस्थापिका में स्थान पाते हैं।

6.एकसदनात्मक व्यवस्थापिका में एक सदन रहने के कारण विधि निर्माण तथा विधियों के संशोधन के संबंध में संपूर्ण भार एक ही सदन पर पड़ जाता है। द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत विधिनिर्माण-संबंधी कार्य दोनों सदनों में बँट जाने के कारण एक सदन पर कार्यभार अधिक नहीं रहता।

7.दो सदन रहने के कारण किसी भी विधेयक या विषय पर वाद-विवाद या विचार-विमर्श का व्यापक अवसर मिलता है। एकसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत किसी विषय या विधेयक पर वाद-विवाद या विचार-विमर्श का अवसर केवल एक ही सदन में रहता है। द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत वाद-विवाद या विचार-विमर्श दोनों सदनों में होने के कारण किसी भी विधेयक पर वाद-विवाद का व्यापक अवसर प्रदान किया जाता है।

8.संघात्मक शासन में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की विशेष उपयोगिता होती है। संघीय शासन के अंतर्गत द्वितीय सदन इकाईयों का प्रतिनिधित्व करता है। प्रथम सदन संपूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है।

9.द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका लोकतंत्र के सिद्धांतों के उपयुक्त है, क्योंकि इसके अंतर्गत शक्तियों या अधिकारों का एक जगह जमाव नहीं हो सकता है। एकसदनात्मक व्यवस्थापिका के अतंर्गत अधिकारों एवं शक्तियों का एक स्थल पर केंद्रित या जमाव होने के कारण लोकतंत्र के सिद्धांतों पर आघात पहुँचने की पूरी संभावना रहती है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की व्यवस्था एकसदनात्मक व्यवस्थापिका की व्यवस्था से श्रेष्ठ है। ब्लंश्ली ने कहा है, " इसमें संदेह नहीं कि एक आँख से दो आँखें अच्छी होती हैं।" गेटेल के कथनानुसार, "दो भवनों के रहने से विचार-विमर्श में सतर्कता एवं सुन्दर संतुलन तथा अधिक सावधानी से विश्लेषित एवं संगृहीत व्यवस्थापन की प्राप्ति होती है।" विश्व के अधिकांश देशों में द्वितीय सदन का अस्तित्व इसकी उपयोगिता का प्रतीक है।

दोष-

द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के कुछ दोष हैं, जिनका उल्लेख किया जाना आवश्यक है-

1.प्रथम सदन लोकप्रिय सदन कहलाता है। इसका संगठन जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर होता है। द्वितीय सदन का संगठन या तो प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर होता है या मनोनयन के आधार पर। द्वितीय सदन द्वारा प्रथम सदन पर किसी भी प्रकार अंकुश लोकप्रिय संप्रभुता के सिद्धांत पर अंकुश कहा जा सकता है।

2.अनेक आलोचकों का यह मत है कि द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत द्वितीय सदन के रहने से अनावश्यक व्यय होता है। कई विद्वानों का मत है कि द्वितीय सदन की कोई विशेष उपयोगिता नहीं होती है, इसलिए उस पर होने वाला व्यय अनावश्यक व्यय है।

3.द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका पद्धति के अंतर्गत द्वितीय सदन को अमीरों तथा कुछ विशेष वर्ग के लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाला सदन कहा जाता है। इंगलैंड की लॉडर्स सभा को 'धनवानों का गढ़' कहा जाता है।

4.द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका पद्धति के अंतर्गत दोनों सदनों के बीच मतभेद या तनाव की स्थिति बनी रहती है। यही कारण है कि प्रत्येक देश के संविधान के अंतर्गत दोनों सदनों के बीच गत्यावरोध की स्थिति को दूर करने के लिए आवश्यक प्रावधान किए गए हैं।

5.द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका प्रणाली के अंतर्गत किसी भी विधेयक को पारित होने में काफी समय लगता है, क्योंकि विधेयक की दो-दो सदनों से एक ही प्रकार की प्रक्रिया अपनाकर पारित किया जाता है। इस प्रकार द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका प्रणाली में समय और अर्थ का दुरूपयोग होता है।

6.आमतौर से द्वितीय सदन की बनावट का आधार अप्रत्यक्ष निर्वाचन या मनोनयन रहता है। यह व्यवस्था लोकतंत्र के सिद्धांत के प्रतिकूल है।

7.कई विचारक यह मानते हैं कि कानून के निर्माण के लिए दो सदनों का होना अत्यावश्यक है। द्वितीय सदन प्रथम सदन की गलतियों एवं त्रुटियों को दूर करता है। यह विचार आधुनिक युग में विशेष महत्व नहीं रखता। **प्रो0 लॉस्की** ने कहा है कि आज किसी विधेयक को कानून का रूप देने के लिए प्रथम सदन में लंबे अरसे तक विचार-विमर्श होता है, इसलिए आज के संदर्भ में कानून-निर्माण में द्वितीय सदन की विशेष उपयोगिता नहीं रह गई है।

द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका प्रणाली के गुण-दोषों पर विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अनेक त्रुटियों के बावजूद आज अधिकांश देशोंमेंद्विसदनात्मक व्यवस्थापिका को मान्यता दी गई है। इसका गुणात्मक पक्ष इसकी कमजोरी या निषेधात्मक पक्ष से कहीं अधिक सशक्त है।

10.6 व्यवस्थापिका के कार्य

व्यवस्थापिका का गठन मूलतः विधिनिर्माण के लिए होता है, परंतु विधिनिर्माण के अतिरिक्त व्यवस्थापिका के अनेक कार्य हैं तथा इसकी शक्तियाँ भी व्यापक हैं। आधुनिक युग में राज्य का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र है, जहाँ व्यवस्थापिक का प्रभाव या संबंध नहीं हो। व्यवस्थापिका की शक्तियों एवं कृत्यों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जाता है-

1. विधिनिर्माण - व्यवस्थापिका का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य विधिनिर्माण है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, विधायिका का संगठन विधिनिर्माण के लिए होता है। जनता की इच्छा को कानून के रूप में अभिव्यक्ति देने के लिए व्यवस्थापिका के अंतर्गत जनता के प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। कुछ बातों को छोड़कर कानून बनाने की प्रक्रिया सर्वत्र एक प्रकार की रहती है। अध्यक्षात्मक एवं संसदीय प्रणलियों में विधिनिर्माण की प्रक्रिया में भिन्नता पाई जाती है।

संसदीय शासन-प्रणाली के अंतर्गत मंत्रिपरिषद के किसी सदस्य के द्वारा ही सार्वजनिक विधेयक प्रस्तावित किए जाते हैं। विरोधी दल या निर्दलीय सदस्य द्वारा प्रस्तावित विधेयकों को गैरसरकारी विधेयक कहा जाता है। आम तौर से सरकारी सदस्यों द्वारा प्रस्तावित विधेयक ही कानून का रूप धारण करते हैं।

साधारण विधेयक द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित होने के बाद विधेयक को राज्याध्यक्ष के पास स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। आमतौर से राज्याध्यक्ष उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर देता है, परंतु कुछ स्थितियों में वह उसे पुनर्विचार के लिए व्यवस्थापिका के पास लौटा देता है। प्रत्येक सदन में विधि निर्माण के संबंध में तीन पठन होते हैं।

द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका प्रणाली के अंतर्गत किसी भी विधेयक के संबंध में दोनों सदनों के बीच गत्यवरोध की स्थिति को दूर करने के लिए अलग-अलग प्रावधान किए गए हैं। भारत में लोकसभा और राज्यसभा के बीच गत्यवरोध को दूर करने के लिए संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था की गई है। इंगलैंड में लार्ड्स सभा किसी विधेयक को एक वर्ष तक अपने पास रोक सकती है। एक वर्ष के बाद

वह उसी रूप में पारित हो जाता है, जिस रूप में कॉमन्स सभा ने उसे पारित किया है। अमेरिका में साधारण विधेयकों के संबंध में प्रतिनिधि सभा और सिनेट के समान अधिकार हैं। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के बाद ही कोई विधेयक कानून का रूप धारण कर सकता है।

इस संबंध में विशेष रूप से एक बात उल्लेखनीय है। संसदीय शासन-प्रणाली के अंतर्गत विधिनिर्माण में प्रमुख जिम्मेदारी कार्यपालिका की रहती है। सभी सार्वजनिक विधेयक मंत्रिपरिषद के सदस्य द्वारा प्रस्तावित किए जाते हैं। इसके विपरीत अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के अंतर्गत विधिनिर्माण में राष्ट्रपति या उसके मंत्रिमंडल के सदस्यों का हाथ नहीं रहता है। अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के अंतर्गत मंत्रिमंडल के सदस्य व्यवस्थापिका के किसी भी सदन के सदस्य नहीं होते।

2.कार्यपालिका पर नियंत्रण-व्यवस्थापिका का दूसरा प्रमुख कार्य कार्यपालिका पर नियंत्रण है। संसदीय शासन-प्रणाली के अंतर्गत व्यवस्थापिका निम्नलिखित ढंग से कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है-

(क) मंत्रिपरिषद के सदस्य सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(ख) व्यवस्थापिका सरकार की आलोचना कर सकती है, सरकारी नीति पर वाद-विवाद कर सकती है तथा सरकार के विरूद्ध निंदा का प्रस्ताव पारित कर सकती है।

(ग) व्यवस्थापिका के सदस्य मंत्रियों से उनके विभागों के बारे में आवश्यक प्रश्न पूछ सकते हैं।

(घ) व्यवस्थापिका के अंतर्गत राज्याध्यक्ष के अभिभाषण पर वाद-विवाद कर भी वह कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है।

(ङ) बजट में कटौती का प्रस्ताव पारित कर भी व्यवस्थापिका कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है।

(च) स्थगन प्रस्ताव के जरिए भी व्यवस्थापिका कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है।

(छ) सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण ढंग कार्यपालिका पर नियंत्रण रखने का है, अविश्वास का प्रस्ताव। व्यवस्थापिका के प्रथम सदन को मंत्रिपरिषद के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित करने का अधिकार है। प्रथम सदन द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पारित किए जाने पर मंत्रिपरिषद अपदस्थ हो जाती है।

अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में व्यवस्थापिका कार्यपालिका पर प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण नहीं रखती है, फिर भी अध्यक्षातम्क शासन-प्रणाली के अतंर्गत नियंत्रण का स्वरूप कहीं अधिक प्रभावशाली है। अमेरिका में राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों एवं संधि के प्रस्तावों पर सिनेट का अनुसमर्थन आवश्यक है। इस प्रकार, अमेरिका की सिनेट राष्ट्रपति के प्रतिद्वंद्वी के रूप में काम करती है।

अन्य शासन-प्रणालियों के अंतर्गत भी कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका का प्रत्यक्ष या परोक्ष नियंत्रण रहता है।

3. वित्तीय कार्य-कार्यपालिका वित्तीय लेन-देन एवं संचालनों के लिए उत्तरदायी है, परंतु अंतिम रूप से व्यवस्थापिका कार्यपालिका के वित्तीय संचालनों पर नियंत्रण रखती है। हर देश में प्रतिवर्ष कार्यपालिका बजट के रूप में अपने आय-व्यय का विवरण व्यवस्थापिका के सम्मुख प्रस्तुत करती है। व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत होने के बाद ही कार्यपालिका टैक्स लगा सकती है तथा विभिन्न मदों पर व्यय कर सकती है। व्यवस्थापिका को बजट में कटौती करने का अधिकार प्राप्त है। अनुदान की माँगे, विनियोग विधेयक आदि पर व्यवस्थापिका की स्वीकृती आवश्यक है। संसदीय शासन-प्रणाली तथा अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली दोनों के अंतर्गत व्यवस्थापिका का वित्तीय

स्थिति पर नियंत्रण रहता है। इंगलैंड की सरकारी वित्तीय स्थिति के संबंध में यह कहा जाता है कि सरकार धन की माँग करती है, कॉमन्स सभा स्वीकार करती है तथा लार्ड्स सभा उसका अनुसमर्थन करती है। यही स्थिति प्रायः सभी देशों में है।

4. विमर्शात्मक कार्य-व्यवस्थापिका एक विमर्शात्मक निकाय के रूप में भी काम करती है। व्यवस्थापिका के अंतर्गत प्रस्तुत किए गए सभी सरकारी प्रस्तावों पर विचार-विमर्श तथा वाद-विवाद किया जाता है। व्यवस्थापिका सरकारी नीतियों पर भी वाद-विवाद करती है।

5. न्यायिक कार्य-कई स्थितियों में व्यवस्थापिका को न्यायिक कार्य भी करने पड़ते हैं। अमेरिका में प्रतिनिधि सभा द्वारा राष्ट्रपति के विरूद्ध लगाए गए महाभियोग के प्रस्ताव के संबंध में द्वितीय सदन सिनेट न्यायालय की तरह सुनवाई करती है। ब्रिटेन में लार्ड्स सभा देश के सर्वोच्च न्यायालय के रूप में भी काम करती है, परंतु इस स्थिति में केवल कानूनी लॉर्ड ही भाग लेते हैं। स्विट्जरलैंड में राष्ट्रीय सभा संविधान की व्याख्या का कार्य करती है, इसलिए इसे न्यायिक कार्य की संज्ञा दी गई है।

6. विविध कार्य-उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त व्यवस्थापिका को और भी कई प्रकार के कार्यों का संपादन करना पड़ता है। संविधान में संशोधन, जनता की शिकायतों की सुनवाई तथा निवारण, राज्याध्यक्षों का चुनाव आदि भी व्यवस्थापिका के मुख्य कार्य है। स्विट्जरलैंड की राष्ट्रीय सभा मंत्रिपरिषद के सदस्यों, न्यायाधीशों तथा प्रधान सेनापति की नियुक्ति करती है। व्यवस्थापिका को नियुक्ति के साथ-साथ पदच्युति का भी अधिकार है। भारत में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने का प्रस्ताव व्यवस्थापिका द्वारा ही पारित होता है। अमेरिका में कांग्रेस ही राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग पारित कर सकती है। ब्रिटेन में कॉमेन्स सभा मंत्रिपरिषद को अविश्वास के प्रस्ताव पर अपदस्थ कर सकती है।

10.7 राजनीतिक व्यवस्थाओं में व्यवस्थापिका की भूमिका एवं पतन के कारण

राजनीतिक व्यवस्थाओं में व्यवस्थापिका की भूमिका के संबंध में कई बातें आती हैं। यों तो प्रायः सभी देशों में व्यवस्थापिका की भूमिका रहती है, परंतु भूमिका के स्तर, भूमिका की गहराई आदि में भिन्नता पाई जाती है। उदाहरण के लिए, संसदीय शासन-प्रणाली में व्यवस्थापिका की भूमिका सशक्त एवं प्रभावशाली रहती है। इंगलैंड की संसद के बारे में कहा जाता है कि वह संप्रभु है। अतः, व्यवस्थापिकाओं की भूमिका को राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। राजनीतिक व्यवस्था के चार प्रतिमान हैं।-

(1) सांविधानिक या लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्थाएँ,

(2) स्वेच्छाचारी राजनीतिक व्यवस्थाएँ,

(3) सर्वाधिकारी राजनीतिक व्यवस्थाएँ,

(4) विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाएँ।

हम अलग-अलग राजनीतिक व्यवस्था में व्यवस्थापिका की भूमिका का मूल्यांकन करेंगे।

लोकतांत्रिक देशों में व्यवस्थापिका की भूमिका

सांविधानिक या लोकतांत्रिक राज्यों में व्यवस्थापिकाएँ प्रमुखतया राजनीतिक व्यवस्था के निवेशों ए निर्गतों तथा प्रतिसंभरणों के बीच संप्रेषक का कार्य करती है। दलीय अनुशासन के कारण नियम-निर्माण में इनकी भूमिका इतनी कम हो गई है कि इस क्षेत्र में

व्यवस्थापिका मात्र औपचारिकता का निर्वाह करती है। यह स्पष्ट है कि आज व्यवस्थापिकाएँ सरकारी एवं सामान्य कार्यों की अपेक्षा राजनीतिक तथा व्यवस्था-संबंधी कार्यों को अधिक करने लगी है। अपनी विशिष्ट संरचना तथा प्रतिनिध्यात्मक प्रकृति के कारण व्यवस्थापिका राजनीतिक प्रक्रियाओं में केंद्रीय भूमिका निभाने की अवस्था में है। संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था में ये ही ऐसी संस्थाएँ हैं, जो जनप्रतिनिधि निकाय की हैसियत से संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को संचालित करने का अधिकार रखती हैं।

इस संबंध में स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि राजनीतिक व्यवस्था में व्यवस्थापिका की भूमिका के अनेक नियामक है, जिनमें सबका उल्लेख करना सहज तथा संभव नहीं। राजनीतिक दल, दबावसमूह, विधायकों के आचरण, निर्वाचन-क्षेत्र तथा अन्य सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक तत्त्व व्यवस्थापिका की भूमिका पर प्रभाव डालते हैं। हम कह सकते हैं कि लोकतंत्र में व्यवस्थापिका की भूमिका बहुत ही पेचीदे तथा एक-दूसरे से उलझे हुए परिवर्त्यों द्वारा नियमित होती हैं।

व्यवस्थापिका की भूमिका कार्यपालिका के प्रभाव एवं प्रभुत्व पर भी निर्भर करती है। संसदीय और अध्यक्षात्मक शासन-प्रणालियों में व्यवस्थापिका का प्रभाव भिन्न होता है। संसदीय शासन-प्रणाली में व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका का घनिष्ठ संबंध रहने के कारण व्यवस्थापिका का प्रभाव कम रहता है। अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में शक्तियों के पृथक्करण के कारण अपने क्षेत्र में व्यवस्थापिका का पूर्ण प्रभाव रहता है।

यह स्पष्ट है कि व्यवस्थापिकाओं की भूमिका में शासनतंत्र की प्रवृत्ति एवं प्रकार का प्रभाव पड़ता है, परतु सभी देशों में व्यवस्थापिका की किसी-न-किसी प्रकार की भूमिका रहती है। यही कारण है कि सभी प्रकार की शासन-व्यवस्थाओं के अंतर्गत व्यवस्थापिका का अस्तित्व रहता है। सांविधानिक व्यवस्था या लोकतंत्र के अंतर्गत व्यवस्थापिका की भूमिका निम्नलिखित प्रकार की है-

(क) वैधीकरण की भूमिका -व्यवस्थापिका सत्ताधारकों को वैधता प्रदान करने की भूमिका अदा करती है। शासन को वैध करार करने की एकमात्र एजेंसी होने के कारण इसका विशेष महत्त्व है। व्यवस्थापिका की वैधीकरण की भूमिका के कारण ही हर शासन-व्यवस्था के शासक व्यवस्थापिका का गठन करना चाहते हैं न केवल लोकतंत्र में,वरन अधिनायक एवं सैनिक शासन भी व्यवस्थापिका के लिए निर्वाचन की घोषणा करते हैं।

(ख)अभिज्ञान की अनुभूति कराने की भूमिका -व्यवस्थापिका अभिज्ञान की अनुभूति कराने की भूमिका करती है। सामान्यतः,सामान्य जनों की कोई विशिष्ट पहचान नहीं होती है। चुनाव के समय व्यवस्थापिका में निर्वाचित होने के लिए उम्मीदवार मतदाताओं से जा-जाकर संपर्क स्थापित करते हैं तथा मत माँगते हैं। इससे मतदाताओं को एहसास होता है कि वे व्यवस्थापिका के निर्माता हैं या उसके गठन में भाग लेते हैं। व्यवस्थापिका के माध्यम से समाज के आम आदमी को देश की सर्वोच्च नियम-निर्मात्री संस्था व्यवस्थापिका के साथ तादात्म्य या अभिज्ञान की अनुभूति होती है।

(ग) अवैध प्रकरणों का पर्दाफाश करने वाली ऐजेंसी की भूमिका-देश में अनेक प्रकार की अनियमितताएँ तथा अनेक प्रकार के अवैध प्रकरण होते रहते हैं। व्यवस्थापिका एक उचित फोरम है, जहाँ विभिन्न प्रकार के कांडों एवं घटनाओं का पर्दाफाश होता रहता है। इस प्रकार के कार्यों में व्यवस्थापिका की प्रमुख भूमिका रहती है। अमेरिका का '**वाटरगेट कांड'**, इंगलैंड का '**परफ्यूमो कांड'**, भारत के मूँधड़ा कांड, जीप कांड आदि के पर्दाफाश में व्यवस्थापिका की प्रमुख भूमिका रही है।

अनेक विद्वान मानते हैं कि सांविधानिक शासन-व्यवस्था के अंतर्गत व्यवस्थापिका की भूमिका का ह्रास हो रहा है। वे औपचारिक निकाय के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह कर रही हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि आजकल कार्यपालिका की विस्तृत शक्तियों की पृष्ठभूमि में व्यवस्थापिका की भूमिका कमजोर होती जा रही है, परंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि व्यवस्थापिका

बिल्कुल निष्क्रिय या अनुपयोगी हो गई है। आज व्यवस्थापिका को कई सीमाओं के अंतर्गत कार्य करना पड़ता है। उन पर अनेक दबाव होते हैं तथा उनके कार्यों एवं शक्तियों के अनेक नियामक होते हैं। इन सीमाओं तथा नियामकों के बावजूद व्यवस्थापिका की अपनी उपयोगिता है, अपनी भूमिका है। यही कारण है कि विश्व के प्रायः सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं के अंतर्गत व्यवस्थापिका का गठन किया जाता है।

अधिनायकवादी देशों में व्यवस्थापिका की भूमिका

आम तौर से यह देखा गया है कि अधिनायकवाद के अंतर्गत व्यवस्थापिका की भूमिका अधिनायकों के हितों की रक्षा करने में निहित रहती है। अधिनायकवाद में व्यवस्थापिका का गठन तो अवश्य किया जाता है, परंतु वह अधिनायकों के हाथ की कठपुतली रहती है। अधिकांश तानाशाह व्यवस्थापिका का गठन कर अपनी सत्ता पर वैधता की मुहर लगाने का प्रयास करते हैं।

विभिन्न अधिनायकवादी देशों में व्यवस्थापिका की भूमिका का विश्लेषण करने के बाद यह कहा जा सकता है कि व्यवस्थापिका की भूमिका व्यवहार में अधिनायको की इच्छा पर निर्भर करती है। पाकिस्तान के अनेक सैनिक शासकों ने व्यवस्थापिका की वैधानिकता की ओट में अपनी शक्ति और सत्ता में वृद्धि की। आमतौर से यह देखा गया है कि प्रत्येक अधिनायक या सैनिक शासक ने तत्कालीन व्यवस्थापिका के दोषों को दूर करने के नाम पर सत्ता पर कब्जा किया तथा नए सिरे से व्यवस्थापिका के गठन की घोषणा की। तानाशाही देशों में व्यवस्थापिका का गठन तथा उसकी भूमिका मात्र औपचारिक होती है।

यह सत्य है कि तानाशाही शासनों में व्यवस्थापिकाएँ मात्र औपचारिकतावश गठित होती है तथा उनकी भूमिका भी अत्यधिक सीमित होती है। परंतु, ये व्यवस्थापिकाएँ भी लंबे दौरान में लोकतंत्र की माँग करती हुई पाई गई हैं। कभी-कभी ये व्यवस्थापिकाएँ अधिनायकों का विरोध करने वाले फोरम के रूप में परिवर्तित हो गई हैं। ये व्यवस्थापिकाएँ प्रत्यक्ष रूप से तानाशाही के विरूद्ध तो आवाज नहीं उठा पातीं, परंतु वहाँ से ऐसी प्रवृत्तियों का जन्म होता है, जो लोकतंत्र की वापसी के लिए आंदोलन का रूप धारण कर लेती हैं। पाकिस्तान में लोकतंत्र की वापसी के आंदोलन में व्यवस्थापिका के अनेक सदस्यों की भी सक्रिय भूमिका रही है। बर्मा में भी व्यवस्थापिका ने इस प्रकार की भूमिका निभाई है।

अनेक अधिनायक अपना प्रभुत्व बनाए रखने हुए व्यवस्थापिका को सम्मान देते हैं जिसके परिणामस्वरूप व्यवस्थापिका के लिए किए गए चुनावों में उन्हें स्पष्ट बहुमत मिलता है। मार्शल टीटो, नेरेरे, फिडेल कैस्ट्रो, केनेथ कौण्डा, सादात आदि ऐसे शासक हुए हैं जिन्होंने अधिनायकवाद की सारी सुविधाओं को भोगते हुए अपनी सत्ता के वैधीकरण के लिए व्यवस्थापिका के प्रति सम्मान का भाव रखा।

निष्कर्षतः हम कह सकते है। कि अधिनायकवाद में व्यवस्थापिका का लोप नहीं होता, परंतु उसकी भूमिका अत्यधिक सीमित एवं औपचारिक हो जाती है। वस्तुतः, अधिनायकवाद के अंतर्गत व्यवस्थापिका की भूमिका मुख्यतया तानाशाह के व्यवस्थापिका के प्रति रवैये पर निर्भर करती है।

सर्वाधिकारी देशों में व्यवस्थापिका की भूमिका

सर्वाधिकारी राज्यों में व्यवस्थापिका की भूमिका न तो उदारवादी लोकतांत्रिक देशों की तरह है और न ही तानाशाही राज्यों की तरह। भूतपूर्व सोवियत संघ, चीन तथा अन्य साम्यवादी राज्य सर्वाधिकारी राज्य की श्रेणी में आते हैं। इन राज्यों में व्यवस्थापिका के गठन का आधार वहीं होता है जो लोकतांत्रिक राज्यों में होता है, यद्यपि एकदलीय प्रभुता के कारण व्यवस्थापिका में चुनाव का तत्त्व मात्र औपचारिक तत्त्व बनकर रह जाता है।

भूतपूर्व सोवियत संघ के संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया था, "राज्य-शक्ति का सर्वोच्च अंग सर्वोच्च सोवियत होगी।" साम्यवादी देशों की व्यवस्थापिकओं के गठन में सैद्धांतिक स्तर पर वहाँ की जनता चुनाव में सहभागी होती है, मतदान करती है। एक दल के होने के कारण दूसरे दल का कोई उम्मीदवार नहीं होता, इसलिए चुनाव मात्र औपचारिक या दिखावा बनकर रह जाता है। सोवियत संघ में साम्यवादी दल सर्वोच्च सोवियत के सदस्यों के नामों की घोषणा करता था और वे व्यक्ति निर्विरोध सर्वोच्च सोवियत के सदस्य निर्वाचित हो जाते थे। एक प्रकार से सर्वोच्च सोवियत के सदस्य साम्यवाद दल के मनोनीत सदस्य होते थे।

जहाँ एक सर्वाधिकारी राज्यों में व्यवस्थापिका की भूमिका का प्रश्न है, सैद्धांतिक रूप से उसकी वही भूमिका निदेशित है, जो लोकतांत्रिक और सांविधानिक राज्यों की है। परंतु, जब हम व्यवस्थापिका के कृत्यों एवं शक्तियों का व्यवहार में प्रयोग देखते हैं, तब हमारे सम्मुख दूसरा चित्र उभरता है।

सोवियत संघ में सर्वोच्च सोवियत को वे सारी शक्तियाँ प्राप्त थीं, जो लोकतांत्रिक देशों की व्यवस्थापिका को प्राप्त हैं। सोवियत संघ में सर्वोच्च सोवियत के अंतर्गत विरोधी दल के अभाव के कारण विधिनिर्माण या अन्य प्रकार के प्रस्तावों को पारित होने तथा वाद-विवाद की प्रक्रिया मात्र औपचारिकता थी। सर्वोच्च सोवियत की सारी प्रक्रियाएँ साम्यवादी दल के निर्देशानुसार संचालित होती थीं। सर्वोच्च सोवियत केवल उन्हीं प्रस्तावों को पारित करती थी, जिन्हें साम्यवादी दल निदेशित करती थी। यह स्थल एक नाट्यस्थल का रूप धारण करता था, जहाँ हर पात्र साम्यवादी दल के निर्देश के अनुसार अपना-अपना पार्ट अदा करता था। टाउस्टर के कथनानुसार, "सर्वोच्च सोवियत एक अनुसमर्थक एवं प्रचारक निकाय के रूप में काम करती है।"

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिकारी राज्य में व्यवस्थापिका की भूमिका अधिनायकवादी राज्य की भाँति अत्यधिक सीमित रहती है। साम्यवादी राज्यों में साम्यवादी दल का प्रभुत्व एवं प्रभाव सर्वव्यापक रहता है। शासन के समस्त अंगों पर दल का नियंत्रण रहता है और सभी अंग दल के नियंत्रण एवं निदेशन में काम करते है। इसलिए व्यवस्थापिका स्वतंत्र रूप से अपनी भूमिका अदा नहीं कर सकती।

विकासशील देशों में व्यवस्थापिका की भूमिका

विकासशील देशों में व्यवस्थापिका की विशिष्ट भूमिका रहती है। विकासशील देश राजनीतिक आधुनिकीकरण और राजनीतिक विकास के मार्ग पर पिछड़े हुए है। राजनीतिक विकास के जो प्रमुख लक्षण हैं उनका भी विकासशील देशों में अभाव है। अतः हम पाते हैं कि कई दृष्टियों से विकासशील देश पिछड़े हुए हैं। सभी विकासशील देशों में व्यवस्थापिका का एक प्रकार का मॉडेल नहीं है। कुछ विकासशील देशों ने पश्चिम के उदारवादी लोकतंत्र के मॉडलों को अपनाया है तथा कुछ विकासशील देशों ने साम्यवादी देशों के प्रतिमानों या मॉडेलों को प्रश्रय दिया है। सच्चाई यह है कि विकासशील देश मॉडलों के झमेले में पड़े हुए हैं। इन्होंने अपने-अपने ढंग के प्रतिमानों या मॉडलों को अपना तो लिया है, परंतु उसके लिए आवश्यक पृष्ठभूमि का वहाँ अभाव है।

प्रारंभिक दिनों में विकासशील देशों ने व्यवस्थापिका को सुव्यवस्थित रूप देने तथा उदारवादी लोकतांत्रिक परंपराओं के अनुसार उसे संचालित करने का प्रयास किया। उदाहरण के लिए भारत में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद प्रारंभिक पंद्रह वर्षों तक व्यवस्थापिका की आदर्श भूमिका रही, परंतु बाद के दिनों में व्यवस्थापिका के स्वरूप एवं कार्यचालन में विकृति पैदा हो गई। इन दिनों व्यवस्थापिका हंगामा का एक स्थल बन गया है। व्यवस्थापिका के अंतर्गत सरकार एवं विरोधी दल के बीच मतभेद इतना गहरा हो गया है कि वहाँ होने वाले प्रदर्शन निम्नस्तरीय होने लगे हैं। आए दिन व्यवस्थापिका के सदनों में शोर-शराबा, हंगामा और हाथापाई की घटनाएँ भी घटने लगी हैं।

विकासशील देशों में जनमत का स्परूप इतना कमजोर है कि वहाँ की जनता व्यवस्थापिका की उपयोगिता उस मात्रा में तथा उस ढंग से नहीं कर सकती, जिस मात्रा में तथा जिस सीमा में अपेक्षा की जाती है। अनेक लोग व्यवस्थापिका के अंतर्गत राजनीतिक दल तथा राजनीतिक लोगों के भद्दे एवं अशोभनीय प्रदर्शन के कारण व्यवस्थापिका को निरर्थक एवं अनुपयोगी मानने लगे हैं। जनसंख्या का अधिक भाग अशिक्षित एवं अज्ञानी होने के कारण वे व्यवस्थापिका के गठन और भूमिका में कम-से-कम दिलचस्पी लेते हैं, इसलिए व्यवस्थापिका का चुनाव ढकोसला बनता जा रहा है।

अधिकांश विकासशील देशों के उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि विकासशील राज्यों में व्यवस्थापिका को प्रभावी बनाए रखने के लिए आवश्यक एवं अनुरूप राजनीतिक संस्कृति का विकास नहीं हो पाया है। इसके फलस्वरूप विकासशील देशों में व्यवस्थापिकओं की भूमिका न तो उदारवादी लोकतांत्रिक देशों की व्यवस्थापिकाओं की तरह हो पाई है और न ही सर्वाधिकारी राज्यों की व्यवस्थापिकाओं की तरह हो पाई है। मॉडेलों के संदर्भ में विकासशील देशों की व्यवस्थापिकाएँ 'अँधेरे में टटोलने' का काम कर रही हैं।

पिछले दिनों विकासशील देशों में राजनीतिक दलों तथा दबावसमूहों के संबंध में अनेक भ्रांतियाँ तथा अनेक विरोधाभास उभरे हैं और फैले हैं, जिसके कारण भी व्यवस्थापिकाओं की भूमिका स्पष्ट नहीं हो पाई है। व्यवस्थापिका के गठन तथा उसके कार्यचालन के संबंध में राजनीतिक दलों की जो भूमिका होनी चाहिए, वह अभी तक विकासशील देशों में नहीं उभर पाई है। इस स्थिति में यह कहा जाना स्वाभाविक है कि विकासशील देशों में सहभागिता के अभिकरण के रूप में व्यवस्थापिकाओं की भूमिका और उपयोगिता के बारे में लोगों में संदेह बना रहता है। विकासशील देशों में व्यवस्थापिकाएँ सामान्य सरकारी कार्यों के संपादन में असफल तो हुई हैं, राजनीतिक कार्यों में भी इसकी उपयोगिता संदेहास्पद रही है।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि विकासशील देशों में व्यवस्थापिका निरर्थक और अनुपयोगी है। कई देशों में इसकी उपयोगिता को प्रतिष्ठापित करने के प्रयास किए जा रहे हैं, यद्यपि अधिकांश विकासशील देशों में व्यवस्थापिकाएँ प्रभावहीन ही सिद्ध हुई है। कई लोगों ने विकासशील देशों में व्यवस्थापिका के उज्जवल भविष्य की भविष्यवाणी की है। विकासशील देशों की व्यवस्थापिकाओं के कार्यचालन के संबंध में निश्चितरूप से कुछ कहना तो संभव नहीं प्रतीत होता, परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वहाँ अभी व्यवस्थापिकाएँ की भूमिका सुव्यवस्थित नहीं है।

अधिकांश विकासशील देशों ने असंलग्नता की नीति अपनाई है। इसके कारण भी उन्हें कठिनाई हो रही है, क्योंकि उन पर किसी निश्चित शासन-प्रणाली या किसी निश्चित मॉडेल का सुस्पष्ट प्रभाव नहीं है। इन कठिनाईयों के बावजूद कई विकासशील देश व्यवस्थापिका को प्रभावी बनाने के निमित्त प्रयत्नशील हैं

व्यवस्थापिकाओं का पतन

अनेक विद्वानों का मत है कि बीसवीं शताब्दी में व्यवस्थापिकाओं का निश्चित रूप से पतन हुआ है। लॉर्ड ब्राइस ने अपनी पुस्तक **'मॉडर्न डेमोक्रेसीज'** में एक विशेष अध्याय के अंतर्गत व्यवस्थापिका के पतन की स्थिति की व्याख्या की। ब्राइस ने पतन के कारणों का उल्लेख तो किया है, परंतु वह उसकी पूर्ण बथा स्पष्ट व्याख्या नहीं कर पाया है। के0 सी0 व्हीयर ने अपनी पुस्तक 'लेजिस्लेचर' (Legislature) में आधुनिक युग में व्यवस्थापिकाओं के पतन के संबंध में एक अध्याय जोड़ा है। व्हीयर ने व्यवस्थापिका के पतन के संबंध में कई प्रश्न उठाए हैं। उदाहरण के लिए, व्हीयर के निम्नलिखित मुख्य प्रश्न हैं:

(1) क्या व्यवस्थापिका की शक्तियों में ह्रास हुआ है ?

(2) क्या व्यवस्थापिका की कार्यक्षमता में कमी आई है ?

(3) क्या व्यवस्थापिका में जनता की रूचि कम हुई है ? इत्यादि।

व्यवस्थापिका की शक्तियों में किस सीमा तक पतन हुआ है यह कहना तो कठिन है, परंतु इतना कहा जा सकता है कि व्यवस्थापिका की स्थिति में अवनति हुई है। अनेक क्षेत्रों में कार्यपालिका ने व्यवस्थापिका के अधिकार पर कब्जा कर लिया है। विधिनिर्माण व्यवस्थापिका की एकमात्र जिम्मेदारी है, परंतु संसदीय शासन-प्रणाली के अंतर्गत विधि निर्माण की जिम्मेदारी मंत्रिपरिषद की समझी जाती है। संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि बीसवीं शताब्दी में निश्चित रूप से व्यवस्थापिका की शक्ति में कमी आई है।

पतन के कारण

व्यवस्थापिकाओं की शक्तियों और महत्त्व में कमी होने का कोई एक कारण नहीं है। इसके अनेक कारण हैं। यहाँ हम उनमें से कुछ कारणों का उल्लेख करेंगे-

1.व्यवस्थापिका की शक्तियों में ह्रास होने का सबसे बड़ा कारण कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि है। कार्यपालिका ने निश्चित रूप से व्यवस्थापिका की कई शक्तियों को हड़प लिया है। संसदीय शासन-प्रणाली के अंतर्गत संसद को आहत, सत्रावसित तथा विघटित करने का अधिकार कार्यपालिका को प्राप्त है। साथ-ही-साथ विधेयकों को प्रस्तावित करने का अधिकार भी कार्यपालिका को है।

अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के अंतर्गत शक्तियों के पृथक्करण के कारण व्यवस्थापिका और कार्यपालिका पृथक-पृथक है, फिर भी कार्यपालिका व्यवस्थापन-प्रक्रिया को प्रभावित करती है। अमेरिका में राष्ट्रपति कांग्रेस द्वारा पारित विधेयकों के संबंध में निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार, हम पाते हैं कि कार्यपालिका की बढ़ती हुई शक्तियों ने व्यवस्थापिका की शक्तियों और स्थिति में कमी लाई है।

2. प्रदत्त विधायन के कारण भी व्यवस्थापिका की स्थति में ह्रास हुआ है। कई कारणों से व्यवस्थापिका ने अनेक क्षेत्रों में कार्यपालिका को विधिनिर्माण का कार्यभार सौंप दिया है।

3. रेडियो, टेलिविजन तथा संचार के नए-नए साधनों के कारण कार्यपालिका जनता के सीधे संपर्क में आ गई है जिसके कारण व्यवस्थापिका का प्रभाव कम हो गया है। आधुनिक युग में मुख्य कार्यपालक व्यवस्थापिका की उपेक्षा करके जनता से सीधे और प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित कर लेता है जबकि प्राचीनकालमेंमुख्य कार्यपालक व्यवस्थापिका के माध्यम से जनता तक पहुँच पाता था।

4. एल0 एन0 बॉल ने लिखा है, "बीसवीं शताब्दी में बड़े- बड़े अनुशासित दलों के विकास तथा कार्यपालिका शक्ति की वृद्धि के कारण व्यवस्थापिका के पतन या ह्रास की चर्चा एक सामान्य बात हो गई है। अनुशासित राजनीतिक दलों के कारण विधायकों का महत्त्व कम हो गया है। व्यवस्थापिका के अंतर्गत प्रत्येक राजनीतिक दल का सचेतक आदेश जारी करता है। जिसके अनुसार विधायक किसी भी विधेयक या प्रस्ताव पर मतदान करते हैं। फलस्वरूप, विधेयकों या प्रस्तावों के मतदान पर कार्यपालिका ही व्यवस्थापिका के सदस्यों को निदेशित एवं नियंत्रित करती है।

5. दबाव एवं हित-समूहों के बढ़ते प्रभाव के कारण व्यवस्थाकिा की स्थिति में कमी आई है। आज अधिकांश विधेयक दबाव एवं हित-समूहों के कारण पारित होते हैं या दब जाते हैं। कार्यपालिका बहुत-सा निर्णय व्यवस्थापिका की सम्मति के बिना दबाव व हित-समूहों के दबाव या प्रभाव में आकर ले लेती हैं। दबाव एवं हित-समूहों का संगठन इतना सशक्त रहता है कि उनसे संबंधित सरकार के निर्णय जब प्रस्ताव के रूप में व्यवस्थापिका के सम्मुख आते हैं, तब उसे अनुसमर्थन या स्वीकृति देनी पड़ती है।

6. न्यायालय द्वारा व्यवस्थापिका के अधिनियमों की वैधता जाँच करने की शक्ति के कारण के व्यवस्थापिका के प्रभाव में कमी आई है। अमेरिका तथा भारत में न्यायालय व्यवस्थापिका के अधिनियमों की वैधानिकता को जाँचकर उसे अवैध या असांविधानिक घोषित कर सकता है।

7. युद्ध और संकट की स्थिति में राज्याध्यक्ष को असाधारण शक्तियों को प्रयोग करने का अधिकार है। राज्याध्यक्ष युद्ध और संकट के समय सेना पर तो नियंत्रण रखता ही है, वह असाधारण निर्णय भी ले सकता है। युद्ध और संकट में लिए गए निर्णयों की सूचना मात्र व्यवस्थापिका को दे दी जाती है। कई स्थितियों में व्यवस्थापिका को सैनिक दृष्टिकोण से गोपनीय सूचनाओं से वंचित रखा जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जब युद्ध और संकट में कार्यपालिका ने व्यवस्थापिका की उपेक्षा की। अमेरिका के राष्ट्रपति ने वियतनाम युद्ध के दौरान कांग्रेस की सम्मति के बिना अनेक निर्णय लिए।

8. वैदेशिक मामलों के संचालन में व्यवस्थापिका की भूमिका अति सीमित या औपचारिक रहती है। वैदेशिक मामलों में सारे निर्णय कार्यपालिका के प्रधान द्वारा लिए जाते हैं। व्यवस्थापिका उन पर मात्र स्वीकृति की मुहर लगाती है। वैदेशिक मामलों में मुख्य कार्यपालकों के बीच सीधा संपर्क होने के लिए रूस और अमेरिका के बीच हॉट लाइन लगाई गई थी।

9. लोककल्याणकारी राज्य का उद्देश्य है नागरिकों का सर्वांगीण विकास। नागरिकों के सर्वांगीण विकास के लिए सरकार को सभी क्षेत्रों में कार्य करना पड़ता है। 'पालने से कब्र' तक राज्य नागरिकों को सेवा प्रदान करता है। इस प्रकार लोककल्याणकारी राज्य में कार्यपालिका के कार्यो में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है और अनेक क्षेत्रों में उसे स्वविवेक प्रयोग करने की आवश्यकता होती है। फलस्वरूप, कई स्थितियों में कार्यपालिका व्यवस्थापिका की अवहेलना करती है। इस तरह लोककल्याणकारी राज्य के उदय के कारण व्यवस्थापिका की स्थिति और भूमिका में कमी आई है।

10. आज का युग संकट का युग है। आए दिन संकट के बादल मँडराते हैं, जिसके कारण सरकार तथा नागरिक दोनों ही चिंता और तनाव की स्थिति में रहते हैं। युद्ध, आंतरिक संघर्ष तथा अन्य प्रकार के संकटों के कारण उत्पन्न असुरक्षा की भावना ने नागरिकों को अधिक-से-अधिक कार्यपालिका पर निर्भर होने के लिए विवश कर दिया है। इस कारण भी व्यवस्थापिका के महत्त्व में कमी आ गई है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यवस्थापिकाओं की शक्तियों एवं प्रभाव में ह्रास हुआ है।

अभ्यास प्रश्न

1. व्यवस्थापिका का निम्न में से कौन-सा कार्य है?

a. विधि निर्माण b. कार्यपालिका पर नियंत्रण

c. निर्वाचन संबंधी d. उपर्युक्त सभी

2. विधानमण्डल के पतन का कौन-सा कारण नहीं है?

a. कार्यपालिका का बढ़ता कार्य क्षेत्र b. प्रदत्त विधायन

c. दलिय पद्धति d. उपर्युक्त सभी

10.8 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते है कि सरकार के प्रमुख अंगों में व्यवस्थापिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। व्यवस्थापिका का सर्वप्रमुख कार्य विधि निर्माण, विचार विमर्श, वित्त संबंधी, कार्यपालिका पर नियंत्रण, निर्वाचन संबंधी, जनमत की अभिव्यक्ति एवं संविधान में संशोधन प्रमुख उत्तरदायित्व है अतः हम देखते है कि आधुनिक राज्यों के सफल संचालन के लिए व्यवस्थापिका की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

10.9 शब्दावली

व्यवस्थापिका-सरकार के तीन अंग हैं-व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। कार्यों की प्रकृति एवं सार्वजनिक उत्तरदायित्व के दृष्टिकोण से व्यवस्थापिका तीनों अंगों में सर्वोच्च है। व्यवस्थापिका का कार्य है-विधिनिर्माण करना। तुलनात्मक राजनीति की आधुनिक शब्दावली के अंतर्गत व्यवस्थापिका के स्थान पर नियम-निर्माण विभाग का प्रयोग किया जाता है।

एक सदनीय व्यवस्थापिका- जिन राज्यों की व्यवस्थापिका में एक सदन होता है वह एक सदनीय व्यवस्थापिका कहलाती है।

द्विसदनीय व्यवस्थापिका- जब व्यवस्थापिका में दो सदन होते है तो उसे द्विसदनीय व्यवस्थापिका कहा जाता है।

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.उपर्युक्त सभी, 2. दलीय पद्धति

10.11सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. C.F.Strong: Modern Political Constitutuions, 1966, p.11

2. William G.Andrews: Constituion and constitutionsalism, 1971, p. 13

3. Charles h. Macdlwain: Constitutionalism : ancient and modern, 1940, p. 4

10.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. George H. Sabine: A history of political theory

2. Robert Dahl: A preface to democratic theory

3. R.C. Macridis and B.E. Brown: Comparative politics

4. K.C. Wheare: Modern Constitution

10.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्यवस्थापिका से क्या समझते हैं? उसकी मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करें।

2. व्यवस्थापिका के गुण-दोषों का उल्लेख कीजिए

इकाई 11 शक्ति पृथक्करण का सिध्दांत, नियंत्रण एवं संतुलन

इकाई संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 शक्ति पृथक्करण का इतिहास

11.4 मोंटेस्क्यू का शक्तिपृथक्करण के सिध्दांत में योगदान

11.5 मोंटेस्क्यू के शक्ति पृथक्करण के महत्वपूर्ण बिंदु

11.6 पृथक्करण के सिध्दांत के मूलभूत सिध्दांत

11.7 शक्ति पृथक्करण सिध्दांत की आलोचना

11.8 नियंत्रण और संतुलन का सिध्दांत

11.9 सारांश

11.10 शब्दावली

11.11 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.13 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

11.14 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

सरकार राज्य की इच्छा को पूरा करने वाली एक एजेंसी के रूप में कार्य करती है। शक्तियां सरकार पर निहित होती हैं। अगर शक्ति के सन्दर्भ में बात करें तो शक्ति भ्रष्ट करती है और असीम शक्ति असीम भ्रष्ट करती है। यह बात केवल व्यक्तियों पर ही नहीं संस्थाओं पर भी लागू होती है। सत्ता का एक ही जगह पर केन्द्रित हो जाना से वह निरंकुश ,भ्रष्ट और शक्तियों का दुरूपयोग करने लगता है। राज्य के सभी कार्य सरकार की तीन शाखाओं के विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका के जरिये किये जाते हैं। सरकार की सभी शाखाओं का बराबर का महत्त्व है। इसलिए एक दूसरे की अवहेलना या नियंत्रित नहीं कर सकता है। सरकार की हर शाखा दूसरी से स्वतंत्र होती है। इस इकाई में हम शक्तिपृथक्करण के सिध्दांत और नियंत्रण एवं संतुलन के सिध्दांत का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

11.2 उद्देश्य

1. शक्ति पृथक्करण के सिध्दांत को समझ पाएंगे।

2. मोंटेस्क्यू का शक्तिपृथक्करण के सिध्दांत को विस्तार से समझ पाएंगे।

3. नियंत्रण व संतुलन के सिध्दांत को समझ पाएंगे।

4. नियंत्रण व संतुलन के सिध्दांत को अमेरिका व भारत के संदर्भ में समझ पाएंगे।

11.3 शक्ति पृथक्करण का इतिहास -

अरस्तू ने अपनी पुस्तक पॉलिटिक्स में सरकार की तीन शाखाओं डेलिब्रेटिव, कार्यकारी, न्यायपालिका का उल्लेख करता है। रोम के गणतंत्रीय संविधान में भी सीनेट, कौंसल और ट्रिब्यून्सके बीच शक्ति का संतुलन देखा गया। फ्रेंच पत्रकार जीन बोंदा ने सबसे पहले शक्तिपृथक्करण की मांग रखी। उसने कहा कि यदि राजा ही कानून निर्माता और न्यायाधीश दोनों हो जायेगा तो एक निर्दयी राजा क्रूर निर्णय ही सुनाएगा। जॉन लॉक ने अपनी पुस्तक "सिविल गवर्नमेंट" में सरकार को तीन शक्तियों विधायी, कार्यकारी और संघात्मक में विभक्त किया है। लॉक के अनुसार संघात्मक (Federative) शक्तियां विदेशी मामलों के संचालन से सम्बंधित है। वह कार्यकारी और संघात्मक शक्तियों को जोड़ने के पक्ष में था लेकिन विधायी और कार्यकारी शक्तियों को एक ही अंग में मिलाने के पक्ष में नहीं था। इंग्लेंड में कॉमनवेल्थ के दौरान, क्रोमवेल ने कार्यकारी और विधायी कार्यों को अलग कर दिया, हालाँकि कार्यपालिका के प्रमुख के रूप में उन्होंने न्यायाधीशों को सख्ती से बर्खास्त कर दिया। गौरवशाली क्रांति ने इंग्लैंड के राजा को न्यायाधीशों को बर्खास्त करने और कानूनों को निलंबित करने की शक्ति से वंचित कर दिया।

हर्मन फायनर का मानना है कि " शक्तियों के पृथक्करण का सिध्दांत प्रथम बार पूर्ण रूप में केवल मोंटेस्क्यू द्वारा ही प्रतिपादित किया गया था।" आगे उन्होंने लिखा है कि " शक्ति पृथक्करण का सिध्दांत मोंटेस्क्यू का अपना ही है यद्यपि इसके कुछ संकेत जॉन लॉक की पुस्तक 'सिविल गवर्नमेंट' में भी मिलते प्रतीत होते हैं।

11.4 मोंटेस्क्यू का शक्तिपृथक्करण के सिध्दांत में योगदान

राजनीति में शक्तिपृथक्करण का सिध्दांत तब तक मायने नहीं रखता था, जब तक राजनीतिक स्वतंत्रता का मुद्दा या विचार जरुरी नही बन गया। काफी समय से लोग ऐसी संस्थागत खोज में थे जिससे राजनीतिक शक्तियों के दुरूपयोग से बचाव हो सके और स्वतंत्रता को भी बचाया जा सके। स्वेच्छाचारी व्यवस्थाओं में शक्ति एक ही व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित हो जाती है। शक्ति के पृथक्करण से शक्तियों के नियंत्रण की व्यवस्था का उदय होता है और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा संभव हो सकती है।

18 वीं शताब्दी में फ्रांस का शासक लुई (14 वें) ही राज्य की समस्त शक्तियों (विधायी, कार्यकारी, न्यायिक)का उपभोग करता था। लुई कहा करता था कि "मैं ही राज्य हूं", जिसका मतलब था कि राजा की इच्छा ही कानून होती है। इस प्रकार की अत्याचारी और निरंकुश सरकार में लोगों के पास किसी की स्वतंत्रता नहीं थी। मोंटेस्क्यू फ्रांस की निरंकुशता के वातावरण में पला और 1728 में मोंटेस्क्यू को इंग्लैंड जाने का मौका मिला । वह वहाँ के लोगों के स्वतंत्रता से काफी प्रभावित हुआ। वह निष्कर्ष पर पंहुचा कि ब्रिटिश लोग स्वतंत्रता का आनंद इस लिए उठा पा रहे हैं क्योंकि वहाँ शक्ति पृथक्करण है। इस तरह शक्ति पृथक्करण मोंटेस्क्यू की पुस्तक स्प्रिट्स ऑफ़ लॉज़ में विशिष्ट सिध्दांत के रूप में उभरा। यद्यपि मोंटेस्क्यू ने ब्रिटेन की शासन व्यवस्था का भ्रमपूर्ण विश्लेषण किया , किन्तु इस भ्रमात्मक अवलोकन पर राजनीति शास्त्र को एक ठोस सिध्दांत देने के लिए मोंटेस्क्यू को हमेशा याद किया जायेगा।

मोंटेस्क्यू व्यक्तियों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए शक्ति पृथक्करण को उपयुक्त मानता था और व्यक्ति स्वतंत्रता की भावना से प्रेरित होकर ही उसके द्वारा शक्ति पृथक्करण के सिध्दांत का प्रतिपादन किया गया। मोंटेस्क्यू का मानना था कि व्यक्तियों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए शासन को संयमित बनाये रखना आवश्यक है।

शक्ति पृथक्करण का विचार मोंटेस्क्यू से पहले के विद्वानों ने भी प्रस्तुत किया था परन्तु इस सिध्दांत की विधिवत व्याख्या मोंटेस्क्यू ने की। मोंटेस्क्यू ने अपनी पुस्तक " स्प्रिट ऑफ़ लॉज़" में शक्ति पृथक्करण सिध्दांत का प्रतिपादन करते हुए लिखा कि " प्रत्येक सरकार में तीन प्रकार की शक्तियां होती है।

1. विधायिका सम्बन्धी शक्ति - इस शक्ति के तहत शासक कानूनों का निर्माण करता है और पहले से बने कानूनों में संशोधन या समाप्त करता है।

2. शासन सम्बन्धी - जिसके तहत वह संधि या युद्ध की घोषणा करता है, अन्य देशों को राजदूत भेजता है तथा उनके राजदूतों को अपने यहाँ स्थान देता है, सार्वजानिक सुरक्षा की स्थापना तथा आक्रमणों से रक्षा की व्यवस्था करता है।

3. न्याय सम्बन्धी - इस शक्ति के अनुसार वह अपराधियों को दंड देना व अन्य विवादों से निपटारा करता है।

उसने तर्क दिया कि जब विधायी शक्ति कार्यकारी शक्ति के साथ मिला दी जाती है तब स्वतंत्रता ख़त्म हो जाती है। इसलिए मोंटेस्क्यू ने मांग की कि एक शक्ति को दूसरी शक्ति पर रोक लगनी चाहिए।

11.5 मोंटेस्क्यू के शक्ति पृथक्करण के महत्वपूर्ण बिंदु

1. विधायिका और कार्यपालिका की शक्तियों के सम्मिलन से व्यक्ति मनमाने ढंग से कानून का निर्माण तथा मनमाने ढंग से कानूनों का निर्माण तथा प्रयोग करेगा।

2. विधायीका और न्यायपालिका की शक्तियों के सम्मिलन से व्यक्ति मनमाने ढंग से कानून का निर्माण तथा मनमाने ढंग से उसकी व्याख्या करेगा।

3. कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियों के सम्मिलन से भी स्वेछाचारिता बढ़ेगी।

4. तीनों शक्तियों के सम्मिलन से भी नागरिक स्वाधीनता का लोप हो जायेगा तथा शासन निरंकुश और स्वेच्छाचारी हो जायेगा।

मोंटेस्क्यू का मानना है कि " यदि एक ही व्यक्ति या समुदाय तीनों काम करने लगे तो स्वतंत्रता नष्ट हो जाएगी और मनमानी होने लगेगी" मोंटेस्क्यू की प्रमुख चिंता व्यक्ति की स्वतंत्रता को केन्द्रण के खतरे से बचने के लिए राज्य की शक्तियों के एकत्रीकरण को रोकना है। इसको रोकने का एकमात्र साधन शक्ति पृथककरण था।

मोंटेस्क्यू के इन विचारों का अनुमोदन ब्लैक ने 'Commentaries on the Law of England' में किया और अमेरिकी संविधान सभा के प्रमुख सदस्य मेडिसन ने भी 'Federalist' नामक पत्रिका में इस प्रकार के विचार अभिव्यक्त किये।

11.6 शक्ति पृथक्करण के सिध्दांत के मूलभूत सिध्दांत

1. शक्ति का कोई केन्द्रीकरण नहीं (No concentration of power)- शक्ति किसी एक व्यक्ति या एक संस्था में केन्द्रित नहीं होनी चाहिए। अगर सभी शक्तिया सरकार के एक ही अंग को मिल जाएँगी तो वह निरंकुश हो जायेगा।

2. शक्ति का प्रसार आवश्यक है (Deffusion of power needed) - शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत का तात्पर्य है कि कार्य के आधार पर शक्ति का विभाजन करके शक्ति का प्रसार किया जाना चाहिए।

3. नियंत्रण और संतुलन की प्रणाली (System of check and balances)- शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत में जाँच और संतुलन की एक जटिल प्रणाली शामिल है। इसका मतलब है कि कार्यकारी अंग विधायिका और न्यायपालिका पर, विधायिका कार्यपालिका और विधायिका पर कुछ नियंत्रण रखता है। एक शाखा द्वारा दूसरी शाखाओं की शक्ति को रोकने की यह पद्धति निरंकुशता के प्रतिकारक के रूप में कार्य करेगी।

शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत का अर्थ केवल यह है कि व्यक्तियों का एक अलग निकाय सरकार के तीन विभागों में से प्रत्येक का प्रशासन करेगा। और यह कि उनमें से किसी के पास एक दूसरे पर नियंत्रण करने की शक्ति नहीं है और व्यक्ति की स्वतंत्रता को बनाए रखने और अत्याचार से बचने के उद्देश्य से ऐसा अलगाव आवश्यक है।

11.7 शक्ति पृथक्करण सिध्दांत की आलोचना

शक्ति पृथक्करण के सिध्दांत व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए उपयोगी हैं परन्तु कई पक्षों में इसकी आलोचना भी की जातीहै। मोंटेस्क्यू ने माना कि ब्रिटेन में तत्कालीन शासन पध्दति में शक्तियों का बटवारा था परन्तु इंग्लेंड में शक्ति पृथक्करण कभी भी शासन व्यवथा में नहीं रहा। ब्रिटेन में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका का घनिष्ट सहयोग और अंतरनिर्भरता है। आलोचकों का मानना है की सरकार में एक प्रकार की आंगिक एकता होती है जिसे पृथक करना संभव नही है और यह सिध्दांत इस लिए भी व्यावहारिक नहीं है क्योंकि यह शासन के हर अंग को अपने कार्यक्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्र और निरंकुश बना देता है। यह बात भी स्पष्ट नहीं है कि जनता की स्वतंत्रता के लिए शक्ति पृथक्करण जरुरी है, स्वतंत्रता के लिए लिखित और कठोर संविधान, विधि का शासन और अधिकारों की संवैधानिक घोषणा अधिक

महत्व रखती है। आलोचकों का यह भी मानना है कि सरकार के तीनों अंग सामान नहीं है क्योंकि व्यावहारिक दृष्टि से अब यह सिद्ध हो चुका है कि व्यवस्थापिका अन्य अंगों की तुलना में अधिक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह जनता का प्रतिनिधित्व करती है तथा उन कानूनों का निर्माण करती है जिसके अनुसार कार्यपालिका और न्यायपालिका अपने कार्यों का संचालन करती है। आलोचकों का यह भी मानना है कि दल प्रणाली का शासन व्यवस्था के स्वरुप और कार्य संचालन पर प्रभाव पड़ा है जिसने कार्यपालिका और व्यवस्थापिका को जोड़ दिया है, जिससे उसकी स्वतंत्रता और पृथकता नष्ट हो गयी है।

यद्यपि शक्ति पृथक्करण की कई आलोचनाएँ हुई परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इसका कोई महत्त्व नहीं है। मेडिसन का कथन है कि " एक ही हाथ में समस्त शक्तियों का एकीकरण ही अत्याचार की उपयुक्त परिभाषा है।" शक्ति पृथक्करण के सिध्दांत का अनुसरण करके प्रशासनिक दक्षता को बनाया भी जा सकता है और न्यायपालिका की निष्पक्षता को सुदृढ़ किया जा सकता है।

11.8 नियंत्रण और संतुलन का सिध्दांत

नियंत्रण और संतुलन का सिद्धांत का उद्देश्य किसी एक शाखा या संस्था को बहुत शक्तिशाली बनने या अपने अधिकार का दुरुपयोग करने से रोकना है। यह सरकार की विभिन्न शाखाओं या हिस्सों, जैसे विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्ति को विभाजित करके इस प्रकार का नियंत्रण स्थापित करता है। प्रत्येक शाखा में अन्य शाखाओं के कार्यों को जांचने और संतुलित करने की कुछ क्षमता होती है, जिससे पारस्परिक जवाबदेही और साझा जिम्मेदारी बनती है।

विधायिका कानून बना सकती है, लेकिन कार्यपालिका उन पर वीटो कर सकती है या न्यायपालिका उन्हें असंवैधानिक घोषित कर सकती है। कार्यपालिका न्यायाधीशों की नियुक्ति कर सकती है, लेकिन विधायिका उन्हें स्वीकृत या अस्वीकार कर सकती है। न्यायपालिका कानूनों और संविधान की व्याख्या कर सकती है, लेकिन विधायिका संविधान में संशोधन कर सकती है या न्यायाधीशों पर महाभियोग चला सकती है।

नियंत्रण और संतुलन एक संस्था या व्यक्ति को पूर्ण नियंत्रण करने से रोकते हैं। 'चेक' (जाँच) में राजनीतिक संस्थानों को एक-दूसरे की शक्ति को सीमित करने की अनुमति देते हैं - उदाहरण के लिए निर्णयों को अवरुद्ध करना, विलंब करना या बस आलोचना करना। बेलेंस (संतुलन) यह सुनिश्चित करता है कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के विचारों और हितों का प्रतिनिधित्व किया जाए।

11.8.1 अमरीका में नियंत्रण और संतुलन

'नियंत्रण और संतुलन' को बाकि देशों की तुलना में अमेरिका में बहुत महत्त्व दिया गया है । अमरीकी संविधान निर्माता जानते थे कि शक्ति संतुलन को पूर्णतया लागू नहीं किया जा सकता है तभी उन्होंने एक और सिध्दांत ‘ नियंत्रण और संतुलन’ को सम्मिलित किया. उन्होंने सोचा कि यदि शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत, संवैधानिक प्रणाली को अव्यवहारिक बना सकता है । इसलिए, उन्होंने नियंत्रण और संतुलन की एक प्रणाली तैयार की जिससे तीनों अंग एक-दूसरे पर अंकुश लगाने का काम करते हैं ताकि सरकार का कोई भी अंग अत्याचारी न बन सके।

इस सिध्दांत को पूर्ण संतुलन लाने और सरकार की प्रत्येक शाखा की अपने विशेष क्षेत्र में निरंकुश और गैर-जिम्मेदार बनने की प्रवृत्ति को रोकने के लिए डिज़ाइन किया गया। सरकार के किसी भी अंग की ओर से सत्ता के दुरुपयोग को रोकने के लिए, अन्य दो को नियंत्रण के रूप में कार्य करने की शक्ति दी गई है। इसका मतलब यह है कि सरकार की किसी भी शाखा के पास अपने क्षेत्र में भी असीमित शक्ति नहीं है। अमेरिका में राज्य की विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच कई नियंत्रण हैं.

सरकार के विभिन्न अंगों में नियंत्रण और संतुलन

अमरीका में कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति के पास है जो कांग्रेस (संसद) और न्यायपालिका द्वारा नियंत्रित होती है. जैसे कि सभी मुख्य पदों की नियुक्ति और संधियाँ राष्ट्रपति के द्वारा होती हैं परन्तु यह सीनेट की पुष्टि के अधीन है. राष्ट्रपति के दोषी पाए जाने पर कांग्रेस द्वारा उस पर महाभियोग लगाया जा सकता है. राष्ट्रपति द्वारा दिए गए कार्यकारी आदेश न्यायिक समीक्षा की शक्ति के अधीन हो सकते हैं।

अमेरिका में विधायी शक्ति कांग्रेस के पास हैं लेकिन उस पर राष्ट्रपति और न्यायपालिका का नियंत्रण रहता है. कांग्रेस के द्वारा पास सभी बिल राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत किये जाते है. कार्यकारी शाखा के पास विधायिका द्वारा पारित विधेयकों को वीटो करने की शक्ति है। जबकि विधायिका वीटो को सर्वोच्च बहुमत (2/3) के वोट से खत्म कर सकती है, वीटो शक्ति कार्यपालिका (राष्ट्रपति) को विधायी प्रक्रिया पर महत्वपूर्ण प्रभाव देती है।

सुप्रीम कोर्ट राष्ट्रपति और कांग्रेस के नियंत्रण में आता है. यह कार्यकारी शाखा को न्यायपालिका की संरचना को आकार देने की अनुमति देता है। राष्ट्रपति सीनेट की सलाह और सहमति से सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों सहित संघीय न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। विधायिका न्यायिक नियुक्तियों की पुष्टि या अस्वीकार करके और संविधान में संशोधन की प्रक्रिया शुरू करने का अधिकार प्राप्त करके न्यायिक शाखा पर भी प्रभाव डाल सकती है। कांग्रेस के पास शक्ति है कि वह न्यायपालिका की शक्ति में बढ़ोतरी के लिए बिल ला सकती है. संविधान की अवमानना व दुर्व्यवहार करने पर कांग्रेस द्वारा न्यायाधीश को महाभियोग के तहत पद से हटाया जा सकता है. न्यायपालिका के पास न्यायिक समीक्षा की शक्ति है, जो उसे व्याख्या करने की अनुमति देती है और यदि आवश्यक हो, तो असंवैधानिक समझे जाने वाले कानूनों और कार्यकारी कार्यों को अमान्य कर देती है। विधायी और कार्यकारी दोनों शाखाओं पर यह जाँच न्यायपालिका की एक महत्वपूर्ण शक्ति है।

सरकार की शाखाओं के भीतर आंतरिक जाँच:

- विधान के भीतर: द्विसदनीय विधायिकाओं (जैसे अमेरिकी कांग्रेस)

में, दोनों सदन (उदाहरण के लिए, प्रतिनिधि सभा और सीनेट) एक-दूसरे की शक्तियों की जाँच कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, कानून बनने के लिए दोनों सदनों को एक विधेयक पारित करना होगा।

- कार्यकारिणी के भीतर: कुछ प्रणालियों में, कार्यकारी शाखा में आंतरिक जांच हो सकती है, जैसे सलाहकार परिषद या कई एजेंसियां, जो अधिक संतुलित निर्णय लेने की प्रक्रिया सुनिश्चित करने में मदद करती हैं।

जनता की राय और मीडिया:

- यह सरकार की एक औपचारिक शाखा नहीं है, जनता की राय और मीडिया सभी शाखाओं पर महत्वपूर्ण जाँच के रूप में कार्य करते हैं। वे चुनावों को प्रभावित कर सकते हैं, अधिकारियों को जवाबदेह बना सकते हैं और राजनीतिक एजेंडे को आकार दे सकते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका का संवैधानिक लोकतंत्र, जिसने मोंटेस्क्यू, लॉक और अन्य प्रबुद्ध विद्वानों के विचारों से प्रेरणा ली, नियंत्रण और संतुलन की अवधारणा से जुड़ा हुआ है। आज के लोकतान्त्रिक संविधान में विधायी, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच स्पष्ट विभाजन संभव नहीं हैं. नियंत्रण और संतुलन का सिद्धांत सत्ता के संकेंद्रण को रोकने और यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि

सरकार की कोई भी एक शाखा अत्यधिक प्रभावशाली न हो जाए। यह प्रत्येक शाखा को दूसरों के कार्यों की निगरानी करने और उन्हें प्रभावित करने की अनुमति देकर जवाबदेही और पारदर्शिता की एक प्रणाली प्रदान करता है।

11.8.2 भारत में शक्ति पृथक्करण का सिध्दांत

भारत में औपनिवेशिक शासन के दौरान, 1784 के पिट्स इंडिया अधिनियम ने ईस्ट इंडिया कंपनी के वाणिज्यिक और राजनीतिक कार्यों के बीच अंतर किया।1935 के भारत सरकार अधिनियम ने केंद्र और प्रांतों के बीच शक्तियों को तीन सूचियों में विभाजित किया - संघीय सूची, प्रांतीय सूची और समवर्ती सूची। संविधान सभा की बहस के दौरान, केटी शाह ने राज्य के प्रमुख अंगों के बीच शक्तियों के पूर्ण पृथक्करण के सिद्धांत के साथ एक नई चिंता को संशोधन द्वारा शामिल करने पर जोर दिया। हालाँकि, डॉ. अम्बेडकर ने इस तरह के सख्त अलगाव को अस्वीकार कर दिया। आज़ादी के बाद भारत में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत की चर्चा हुई और इसे न तो संविधान और न ही किसी क़ानून में आधिकारिक दर्जा दिया गया है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 50 में राज्य राज्य की सार्वजनिक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने के लिए कदम बढाता है। अनुच्छेद 123 के तहत राष्ट्रपति, देश का कार्यकारी प्रमुख होने के नाते, कुछ शर्तों में अध्यादेश जारी करके विधायी शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार रखता है। अनुच्छेद 122 के अनुसार संसद की कार्यवाही की वैधता पर किसी भी न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 246 संघ और राज्यों के बीच शक्ति के विभाजन से संबंधित है। यह संघ और राज्य की शक्तियों को तीन अलग-अलग सूचियों (संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची) में वर्गीकृत करके उनका सीमांकन करता है। अनुच्छेद 361के तहत राष्ट्रपति या राज्यपाल अपने कार्यालय की शक्तियों और कर्तव्यों के प्रयोग और प्रदर्शन के लिए किसी भी न्यायालय के प्रति जवाबदेह नहीं होंगे।

भारत में शक्ति पृथक्करण को मूल संरचना सिद्धांत के संबंध में न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों के माध्यम से मान्यता दी गई है और प्रभावी बनाया गया है। भारतीय संविधान में, केवल व्यापक अर्थों में शक्तियों का पृथक्करण है। अमेरिकी संविधान या ऑस्ट्रेलियाई संविधान के तहत शक्तियों का कठोर पृथक्करण भारत पर लागू नहीं होता है।

भारतीय संविधान में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे अंगों की शक्तियों को अलग करने का कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है । हालाँकि, इन अंगों के बीच शक्ति का पृथक्करण मौजूद है। इसके अलावा, किसी भी अंग की सर्वोच्चता से बचने और उसके द्वारा शक्ति के दुरुपयोग को रोकने के लिए जाँच और संतुलन की एक योजना मौजूद है।

अभ्यास प्रश्न

1. मोंटेस्क्यू की पुस्तक का नाम बताइए।

2. आधुनिक सरकार की कितनी शाखाएं होती हैं?

3. किस देश में शक्ति पृथक्करण के सिध्दांत का पालन किया जाता है?

11.9 सारांश

सरकार की तीन शाखाओं के विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका के मध्य शक्ति के बटवारे के विषय में प्राचीन समय से ही अलग-अलग विचारकों ने अपनी बात रखी परन्तु मोंटेस्क्यू ने प्रभावी ढंग से शक्ति पृथक्करण का सिध्दांत रखा. उसने कहा कि सरकार की सभी शाखाओं का बराबर का महत्त्व है। सरकार की हर शाखा दूसरी से स्वतंत्र होती है। शक्ति पृथक्करण का उद्देश्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता है जो निरंकुशता से सुरक्षित करती है। प्रशासन में दक्षता बनाये रखने के लिएप शक्ति संतुलन वांछनीय है। अमेरिकी संविधान निर्माताओं ने शक्ति पृथक्करण और नियंत्रण एवं संतुलन को संविधान में रखा। वहीँ इंग्लेंड में विधायिका. कार्यपालिका और न्यायपालिका में कोई स्पष्ट विभाजन देखने को नहीं मिलता है। भारत में सैध्दांतिक रूप से शक्ति पृथक्करण है। यहाँ अलग अलग कार्य के लिए अलग-अलग शाखाएं हैं। परन्तु यहाँ व्यवहार में शक्ति पृथक्करण का सिध्दांत सख्ती से पालन नहीं किया जाता है।

11.10 शब्दावली

औपनिवेशिक - एक विदेशी राजनीतिक सत्ता द्वारा किसी देश की प्रभुसत्ता।

मीडिया – संचार का साधन

द्विसदनीय विधायिकाओं- जहाँ संसद में दो सदन हों

शक्ति पृथक्करण- राज्य सरकार के विभिन्न अंगों का एक-दूसरे से अलग रखने का सिध्दांत

11.11 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. द स्प्रिट ऑफ़ लॉज़ 2. तीन (विधयिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका), 3. अमरीका

11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.राजनीतिक -चिंतन की रुपरेखा , ओ.पी. गाबा , मयूर पेपर बैक्स

2.पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन का इतिहास , बी. एल. फडिया

3.आधुनिक राजनीतिक सिध्दांत, पुखराज जैन, बी. एल. फडिया

4.वर्ल्ड कांस्टीट्यूशन. विद्या भूषण, विष्णु भगवान, स्टर्लिंग पब्लिसर

11.13 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

पोलिटिकल साइंस , डॉ. एस. आर. म्यनेनी

11.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. मोंटेस्क्यू का शक्तिपृथक्करण के सिध्दांत को विस्तार से समझाइये।

2. अमरीका के शक्ति पृथक्करण और नियंत्रण एवं संतुलन के विषय में प्रकाश डालिए।

इकाई 12 : राजनीतिक दल और दल पद्धतियां

इकाई संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 दल, अर्थ एवं परिभाषा

12.4 आवश्यक तत्व

12.5 राजनीतिक दल के कार्य

12.6 दलीय व्यवस्था के गुण

12.7 राजनीतिक दलों के दोष

12.8 दलीय व्यवस्था के प्रकार

12.9 सारांश

12.10 शब्दावली

12.11 अभ्यास के प्रश्न

12.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.13 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.15 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रास्तावना

राजनीतिक दल प्रजातान्त्रिक तथा उत्तरदायी शासन के लिए अपरिहार्य है। राजनीतिक दलों के अभाव में प्रजातन्त्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आधुनिक प्रजातन्त्रों में प्रजातन्त्र का संचालन राजनीतिक दलों के द्वारा ही होता है। राजनीतिक दल ही राजनीतिक चेतना के केन्द्र होते हैं। सम्पूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया राजनीतिक दल के इर्दगिर्द घूमती दिखायी पड़ती है। ये प्रत्येक शासन प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये महत्वपूर्ण कार्य निष्पादित करते हैं। इनका प्रत्येक व्यवस्था में विशिष्ट स्थान है यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने राजनीतिक दलों को अदृश्य सरकार कहा है।

12.2 उद्देश्यः-

इकाई के निम्न उद्देश्य हैः-

- राजनीतिक दलों का अर्थ एवं कार्यों से परीचित कराना।
- राजनीतिक दलों के विभिन्न वर्गीकरण का ज्ञान कराना।
- राजनीतिक दलों के आवश्यक तत्व तथा प्रकारों का ज्ञान कराना।
- राजनीतिक दलों के गुणों, दोषों से शिक्षार्थियों को परीचित कराना।
- दलीय व्यवस्था के प्रकार का वर्णन करना।

12.3 दल का अर्थ एवं परिभाषाः-

सामान्य भाषा में व्यक्तियों के किसी समूह को जो एक समान उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्य करता है दल कहा जाता है। यदि दल का उद्देश्य राजनीतिक है तो वह राजनीतिक दल कहलाताहै । विभिन्न विद्वानों ने राजनीतिक दल की अलग-अलग परिभाषा दी है-

बर्क के शब्दों में - ''राजनीति दल ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो किसी राष्ट्रीय हित की पूर्ति के लिए किसी एक विशिष्ट सिद्धान्त को आधार मानकर जिसमें वे सहमत हों, अपना संगठन करते है।''

गेटेल के शब्दों में - ''राजनीतिक दल प्रायः नागरिकों का ऐसा समुदाय है जो राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करता है तथा अपने मतदान की शक्ति का प्रयोग कर सरकार को संगठित करना तथा सामान्य नीति को पूर्ण करना चाहता है।''

लीकॉक के शब्दों में - ''राजनीतिक दल संगठित नागरिकों के उस समुदाय को कहते हैं जो इकट्ठे मिलकर राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। उनके विचार सार्वजनिक मामलों में एक से होते हैं और सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए मतदान की शक्ति का प्रयोग कर सरकार पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं।''

गिलक्राइस्ट के शब्दों में - ''राजनीति कद नागरिकों के उस समूह को कहते हैं जिसमें सभी सदस्यों के राजनीतिक विचार एक से होते हैं। तथा जो एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करके सरकार को नियन्त्रित करने का काम करते हैं।''

12.4 राजनीतिक दलों के आवश्यक तत्व -

राजनीतिक दलों की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर राजनीतिक दलों के निम्न आवश्यक तत्व बताये जाते हैं-

1.आधारभूत सिद्धान्तों के एकता- राजनीतिक दल के लिए आवश्यक है कि उसके कुछ प्रमुख सिद्धान्त हों। इसमें शामिल हो रहे लोगों के लिए आवश्यक है कि वे उन सिद्धान्तों पर एकजुट हों । सभी सदस्यों का सिद्धान्तों पर मतैक्य होना चाहिए। यदि सिद्धान्तों के आधार पर मतभेद होंगे तो सभी एकजुट नहीं हो पायेंगे और लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पायेंगे।

2.संगठन- समान विचार वाले लोग यदि संगठित नहीं होंगे तो वह राजनीतिक दल नहींवरनभीड़ बनकर रह जायेंगे। संगठन एक शक्ति का प्रतीक है। संगठन का आश्य नियम, अनुशासन एवं पदसोपान से है। जिसमें कार्य विभाजन है तथा उत्तरदायित्व निश्चित किये जा सकें। अतः बिना संगठन बनाये राजनीतिक दलों की कल्पना नहीं की जा सकती।

3.वैधानिक उपायों में विश्वास- राजनीतिक दलों के लक्ष्य होते हैं उसे लागू करने के लिये वे सत्ता प्राप्ति करना चाहते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति कि लिए वे विभिन्न प्रयास करते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रयास संवैधानिक होने चाहिए। संविधान विरूद्ध किया गया प्रयास राजनीतिक दलों के लिए स्वीकार्य नहीं है। हिंसा में , क्रान्ति में विश्वास रखने वाले संगठन राजनीतिक दल नहीं हो सकते।

4.राष्ट्रीय हित का संवर्धन- राजनीतिक दल के लिए आवश्यक है कि वे किसी जाति, धर्म, वर्ग के हित को दृष्टि में रखकर कार्य न करें। उनके लिए आवश्यक है कि वे सार्वजनिक हित की पूर्ति करे। राजनीतिक दल संकीर्ण, स्वार्थ, जातिगत, धार्मिक हित की पूर्ति के लिए नहीं बन सकते।

5.सत्ता प्राप्ति की लालसा- राजनीतिक दल निश्चित सिद्धांतों पर एकजुट हुए लोगों का समूह होता है। वे उन सिद्धान्तों को सार्वजनिक हित के लिए लागू करना चाहते हैं। इन सिद्धान्तों को लागू करने के लिए आवश्यक है दल को सत्ता प्राप्त हो। अतः सत्ता प्राप्ति की लालसा भी राजनीतिक दल का आवश्यक तत्व है।

12.5 राजनीतिक दलों के कार्य-

हर प्रकार की शासन प्रणालियों में राजनीतिक दलों का अस्तित्व होता है। वह चाहे लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली हो या अधिनायकतन्त्र सभी में राजनीतिक दल दिखायी पड़ते हैं। यह अलग बात है कि लोकतन्त्र में उनकी भूमिका बेहद महत्वपूर्ण एवं प्रभावी होती है, जबकि अधिनायकतन्त्र में केवल सजावट की वस्तु बन कर रह जाते हैं लोकतन्त्र का संचालन ही राजनीतिक दल करते हैं। वे लोकमत का निर्माण करते हैं, राजनीतिक चेतना जागृत करते हैं तथा निरन्तर प्रयासों से सामान्य जन का विश्वास लोकतन्त्र में बहाल रखते हुए मतदान सुनिश्चत करवाते हैं। लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों के प्रमुख कार्य निम्न हैं-

1.राजनीतिक चेतना का प्रसार- लोकतन्त्र को व्यवहार में लाने का सम्पूर्ण श्रेय राजनीति दलों को जाता है। जनता के सजग कर, उनसे राजनीतिक कर्तव्य कराने का कार्य राजनीतिक दल ही करते हैं। विभिन्न दल अपने पत्र, पत्रिकाओं, विज्ञापनों के माध्यम से जनता को सूचनायें, नीतियाँ प्रदान करते हैं। वे राष्ट्रीय समस्याओं पर जनता का ध्यान आकृष्ट कराते हैं। विभिन्न राजनीतिक दल विभिन्न समस्याओं पर अपना मत देकर आम जनता को विकल्प देते हैं। वे प्रेस, समाचार पत्रों के माध्यम से अपने विचार देते हैं- लोवेल के शब्दों में - ''राजनीतिक दल' राजनीतिक विचारों के दलाल हैं।''

2.जनमत का निर्माण करना- यह राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण कार्य है। वे लोकमत निर्माण में प्रभावी भूमिका अदा करते हैं। विभिन्न मुद्दों पर वह अपने दल की राय से लोगों को अवगत कराते हैं। उनकी यह राय जटिल प्रश्नों को समझने में आमजनता की मदद करती है। राजनीतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम, सभायें, गोष्ठियाँ अंततः लोगों को जागरूक कर उनकी अपनी राय निर्मित करवाती है। लोगों की सार्वजनिक हित में बनी राय का योग ही लोकमत होता

है। अतः इसमें राजनीतिक दलों की महती भूमिका रहती है। ब्राइस के शब्दों में- लोकमत को प्रशिक्षित करने उसके निर्माण एवं अभिव्यक्ति करने में राजनीतिक दलों के द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किये जाते हैं।''

3.कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के बीच की कड़ी- राजनीतिक दल व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका में सम्पूर्ण सूत्र का कार्य करते हैं। वे मध्यस्थ की भूमिका अदा करते हैं। संसदीय शासन में सरकार एवं विधायिका के मध्य संवाद तथा जनता की आकांक्षाओं को सरकार तक पहुँचाने का कार्य दल करते हैं। अध्यक्षात्मक शासन शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर कार्य करता है फिर भी उसमें गतिरोध उत्पन्न नहीं हो पाता तो उसमें महत्वपूर्ण भूमिका राजनीतिक दल अदा करते हैं। अमेरिका की अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में राजनीतिक दलों के कारण ही सामंजस्य स्थापित रहता है। गिलक्राइस्ट के शब्दों में - ''दलीय पद्धति ऐसा तरीका है। जहां अमेरिकी संविधान की कठोरता का दोष कम हो गया है।''

4.सरकार पर अंकुशः-राजनीतिक दल के कारण सरकारें निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन नहीं कर पाती हैं। राजनीतिक दल सत्तारूढ़ दल की गलत नीतियों का प्रसार करते हैं और सार्वजनिक मंचों से भर्त्सना करते है। इस पूरी प्रक्रिया में सरकार के विरूद्ध जनमत निर्माण होता है। विपक्षी दल भी सरकार के ऊपर गलत नीतियाँ वापस लेने का दबाव बनाते हैं। विपक्ष वैकल्पिक सरकार के रूप में अपने को प्रस्तुत करता है। यही कारण है की राजनीतिक दलों की मौजूदगी सरकार पर अंकुश लगाती है। लास्की के शब्दों में - ''राजनीतिक दल देश में तानाशाही से रक्षा के सर्वश्रेष्ठ साधन है।''

5.विशेष नीति के संचालन के लिये विधायिका में एकता- प्रत्येक राजनीतिक दल विधायिका में एकता स्थापित करता है। प्रत्येक राजनीतिक दल का उम्मीदवार अपने दल की नीति एवं कार्यक्रम निर्वाचन के समय जनता के बीच रखते हैं। समय-समय पर अपने दल के सदस्यों को अपनी नीतियों को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से अनुशासित करना होता है। राजनीतिक दल अपने सदस्यों को नियन्त्रित करते हैं। वे अपने दल के सदस्यों को अपनी नीतियों के प्रति सचेत करते हैं। वे दल की नीतियों के विरूद्ध आचरण करने वाले लोगों के प्रति कठोर कार्यवाही कर दलीय अनुशासन एवं एकता को बनाते हैं।

6.जनता एवं सरकार के बीच कड़ी- राजनीतिक दल जनता तथा सरकार के बीच संपर्क का कार्य करते हैं। सरकार द्वारा बनायी गई नीति के प्रति जनता के रवैया का आँकलन राजनीतिक दल करते हैं, वे इसकी सूचना सरकार तक पहुँचाते हैं। वे आवश्यकता पड़ने पर जनमत बिगड़ने से बचाने के लिए सरकार को चेतावनी ही नहीं देतेवरननीतियों, कार्यक्रमों में आवश्यक फेरबदल भी करते हैं। अतः जनता एवं सरकार के बीच कड़ी की महत्वपूर्ण भूमिका वह अदा करते हैं।

7.चुनाव का संचालन- आज सार्वभौम वयस्क मताधिकार, बढ़ी जनसंख्या, बड़े निर्वाचन क्षेत्र के कारण चुनाव पहले की तुलना में अधिक जटिल हो गये हैं। आज सफल निर्वाचन की कल्पना राजनीतिक दलों के अभाव में नहीं की जा सकती। वे प्रत्याशियों का चयन, चुनाव-प्रचार, चुनाव संचालन, मतदान तथा मतगणना तक निरंतर व्यवस्था बनाने में

सक्रिय रहते हैं। उनके इस महत्वपूर्ण कार्य पर फाइनर ने लिखा है-''राजनीतिक दलों के बिना निर्वाचक या तो नितान्त असहाय हो जायेंगे या उनके द्वारा असंभव नीतियों को अपनाकर राजनीतिक यंत्र को नष्ट कर दिया जायेगा।''

8.सरकार का निर्माण- आम निर्वाचन के बाद विजयी राजनीतिक दल सरकार का निर्माण करते हैं। संसदात्मक शासन में विधायिका के निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल का नेता प्रधानमंत्री बनता है तथा वह अपना मन्त्रिमण्डल (सरकार) बनाता है। वही अध्यक्षात्मक शासन में राष्ट्रपति के चुनाव के बाद राष्ट्रपति स्वतन्त्र रूप से सरकार का निर्माण करता है। अतः कहा जा सकता है कि संसदात्मक एवं अध्यक्षात्मक दोनों ही शासन प्रणलियों में सरकार का निर्माण राजनीतिक दल करते हैं। राजनीतिक दलों के अभाव में विधायिका के सदस्य नियन्त्रण मुक्त होकर 'अपनी ढपली अपना राग' अपना सकते हैं। यह देशहित, जनहित के लिए ठीक नहीं हो सकता। अतः राजनीतिक दल के अभाव में प्रभावी सरकार का निर्माण असंभव है।

12.6 दलीय व्यवस्था के गुण

राजनीतिक दलों के विषय में अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि यह लोकतन्त्र के लिए आवश्यक है। इनमें अनेक अच्छाइयाँ हैं। बिना राजनीतिक दलों के आदर्श शासन व्यवस्था की कल्पना भी नहीं की जा सकती । ये जनमत निर्माण से लेकर सरकार बनाने एवं नीतियों को क्रियान्वित कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। राजनीतिक दलों के महत्वपूर्ण गुण निम्नलिखित हैं-

1.राजनीतिक चेतना के साधन हैं- राजनीतिक दलों का यह प्रमुख गुण है। वे राजनीतिक चेतना का प्रसार करते हैं। वे जन जागरण अभियान चलाकर जनता की निद्रा भंग करते हैं। वे अपने कार्यक्रमों, गोष्ठियों, सभाओं से जनता से न केवल जागरूक बनाते हैंवरनउनमें राजनीतिक चेतना जागृत करते हैं। वे जनता की उदासीनता को मिटाने का कार्य करते हैं। वे नागरिक कर्तव्यों की ओर लोगों को प्रेरित करते हैं। यह राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है।

2.सरकार पर नियन्त्रणः- राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है। राजनीतिक दल ही सरकार पर पैनी नजर रखते हैं। वे सरकार की नीतियों , कार्यक्रमों का विश्लेषण करते है और उसको जनता में प्रचारित करते है। राजनीतिक दल ही अपने वैकल्पिक सरकार के रूप में प्रस्तुत करते है। वे सरकार का विपक्ष के माध्यम से सदन में चेतावनी देते है। आम जनता में विरोध प्रदर्शन, धरना आदि के द्वारा सरकार विरूद्ध चलाकर लोकमत को सरकार के विरूद्ध करते हैं। राजनीतिक दलों के इन कार्यों से सरकार पर नियन्त्रण लगता है। यह राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है।

3.राजनीतिक शिक्षा के माध्यमः- राजनीतिक दलों का यह प्रमुख गुण है। वे लोकतन्त्र में जनता को सर्वाधिक राजनीतिक शिक्षा प्रदान करते हैं। वे सघन सदस्यता अभियान, जनसंपर्क अभियान से जनता से संवाद कायम करते हैं। वे राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर, सामाजिक, आर्थिक नीतियों पर अपनी राय से जनता को अवगत करा आम जनता का ज्ञान बढ़ाते हैं। यह राजनीतिक दल ही हैं जो नागारिकों को मतदान, सरकार निर्माण, सरकार पर नियन्त्रण की विधियों से अवगत कराते हैं।

4.शासन के विभिन्न अंगों में तालमेल के साधनः- राजनीतिक दलों का यह प्रमुख गुण है कि विधायिका एवं कार्यपालिका में सामंजस्य स्थापित करते हैं। यदि गतिरोध उत्पन्न हो जाये तो यह देशहित में नहीं होता है। दलों के सदस्य सरकारों के कार्यक्रमों, नीतियों से विधायिका को ने केवल अवगत कराते हैंवरनविश्वास में भी लेते हैं। वे विधायिका को विश्वास में कर नीतियों को क्रियान्वयन आसान बनाते हैं। यह राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है।

5.दल एवं सरकार के सदस्यों पर नियन्त्रणः- राजनीतिक दल चुनाव में अपने ही दल के सदस्यों को चुनाव में टिकट देते हैं। चुनाव जीतने के बाद ये सभी सदस्य दलीय अनुशासन में रहते हैं। ये सरकार में शामिल होने के बाद भी दलीय अनुशासन से बँधे रहते हैं। दल सदैव उनसे दल के निर्देशांे के पालन की अपेक्षा करते हैं। राजनीतिक दल सदस्यों को अनुशासन एवं नियन्त्रण में रखने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

6.सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रमों का संचालनः- राजनीतिक दल सुप्त अवस्था में नहीं रहते। उन्हें लोकमत को अपने पक्ष में करना होता है, यदि है तो उसे बनाये रखने का प्रयास करना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे निरंतर सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रम चलाते रहते हैं। ये सामाजिक आर्थिक कार्यक्रम सरकार एवं आम नागरिकों दोनों के लिए हितकर होते हैं। यह राजनीतिक दल का विशेष गुण है कि इन कार्यक्रमों का संचालन।

7.स्थाई एवं श्रेष्ठ सरकार की स्थापनाः- यह राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है कि वह जिस भी व्यवस्था में रहते हैं, वहां पर स्थाइ एवं श्रेष्ठ सरकार का निर्माण करते हैं। राजनीतिक दल ही हैं जो लोकमत को किसी दल विशेष के पक्ष में बनाते हैं और उनके ही प्रयास से आम जनता मतदान केन्द्रों तक जाकर मतदान करती है। अतः वे ही स्थाई सरकार के निर्माण के मूल में होते हैं। उन्हीं के दबाव में सरकारें जनकल्याण के कार्यक्रम चलाती है।

8.निरंकुशता से मुक्तिः- राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है। वे आम नागरिकों को सचेत कर उनके समर्थन से सरकारों के ऊपर नैतिक नियन्त्रण रखते हैं। सरकारें राजनीतिक दलों द्वारा बनाये गये लोकमत की अवहेलना नहीं कर सकती। वे जनमत के खिसकने का जोखिम नहीं उठा सकती। अतः वे जन आकांक्षाओं के अनुरूप नीतियां एवं कार्यक्रम बनाते हैं। यह राजनीतिक दलों का विशेष गुण है और इसी से सरकारों की निरंकुशता से मुक्ति मिलती है।

9.राष्ट्रीय एकता के साधनः- राजनीतिक दल राष्ट्रीय एकता के साधन हैं। राजनीतिक दल सम्पूर्ण देश को एकता के सूत्र में बांधते हैं। इनकी सदस्यता सभी धर्मों, जातियों एवम् सभी क्षेत्र के लोगों के लिये होती हैं। ये अपने अभियान, कार्यक्रमों से सम्पूर्ण देश को एकता के सूत्र में बांधतें हैं। यह राष्ट्रीय एकीकरण का माध्यम बनते हैं।

10.श्रेष्ठ कानूनों का निर्माणः- विधायिका में कानून बनता है। बहुमत प्राप्त दल ही सदैव कानून बनवाने में अग्रणी भूमिका में रहते हैं। लोकमत के भय से, जनता से किये वायदों के अनुरूप व कानून बनाती है। यदि वे व्यक्तिगत कारणों से सार्वजनिक हित छोड़ती हैं तो अन्य राजनीतिक दल सदन में तथा सड़क पर उनका विरोध करते हैं। उनकी गतल, समाजविरोधी नीतियों की आलोचना करते हैं।

12.7 राजनीतिक दलों के दोषः-

राजनीतिक दल किसी भी शासन के लिये आवश्यक हैं। इनमें अनेक अच्छाइयाँ हैं। इसके साथ इसमें अनेक दोष भी दिखायी पड़ते हैं। हाल ही में उभरी नई राजनीतिक प्रवृत्तियों ने सिद्ध किया है कि राजनीतिक व्यवस्था में जो दोष दिखायी पड़ रहे हैं। उसका मूल कारण राजनीतिक दल हैं। अमेरिकी संविधान निर्माता तो राजनीतिक दलों से व्यवस्था को मुक्त रखना चाहते थे। राजनीतिक दलों के प्रमुख दोष निम्न है-

1.दलों द्वारा नैतिकता एवं आदर्शों का त्यागः- हर राजनीतिक दल का उद्देश्य चुनाव जीतकर सत्ता को प्राप्त करना होता है। प्रत्येक दल निर्वाचन के समय 'चेन केन प्रकारेण' चुनाव जीतना चाहता है। ऐसे में ये दल सभी आदर्शों को त्यागकर प्रतिद्वन्दी नेता पर व्यक्तिगत हमले करना, छवि धूमिल करना, उनके निजी जीवन की सी0डी0 बनाकर जनता में वितरित करते हैं। वे चुनाव में मतदाताओं को लुभाने के लिए शराब , पैसे एवं अन्य अनैतिक साधनों का खुलकर प्रयोग करते हैं।

2.दलीय अनुशासन से स्वतन्त्रता का अन्तः- राजनीतिक दल लोकतन्त्र की महत्वपूर्ण कड़ी है। यह भी अनोखा संयोग है कि जो लोकतन्त्र नागरिक स्वतन्त्रता के प्रहरी है वहीं दलीय अनुशासन के आधार पर अपने दल के सदस्यों की आवाज का दबा देते हैं। कई बार दल की सदस्यता लेने के बाद व्यक्ति असहाय एवं मजबूर होकर दलीय विचार को स्वीकार करता है। वह अपनी अर्न्तआत्मा एवं अंतःकरण की आवाज को दबाता है।

3.उग्र दलबन्दी का विकासः- राजनीतिक दलों का प्रमुख दोष है। इसमें प्रत्येक दल सत्ता पाने के लिए गलाकाट प्रतियोगिता में लग जाता है। इस कार्य में विभिन्न दल आदर्श प्रतियोगी के स्थान पर उग्र प्रतियोगी हो जाते हैं। इस क्रम में वह कई बार समाज हित, राष्ट्रीय हित की अनदेखी कर जाते हैं। दलीय कड़वाहट इतनी बढ़ जाती है कि राष्ट्रीय हित के मुद्दे, विभिन्न देश हित से जुड़े कानून पास नहीं हो पाते।

4.दलीय स्वार्थों पर बलः- राजनीतिक दल सत्ता प्राप्ति की लालसा रखते हैं। सत्ता पाने के बाद व समाज हित, राष्ट्रीय हित के लिये नहींवरनदलीय स्वार्थ के लिये, व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए कार्य करते हैं। इससे समाज में व्यापक असन्तोष पैदा होता है। यह राष्ट्रहित को भी नुकसान पहुँचाता है।

5.भाई-भतीजाबाद एवं भ्रष्टाचार को बढ़ावाः- भ्रष्टाचार एवं राजनीतिक दलों का सम्बन्ध अब बहुत मजबूत दिख रहा है। इसमें मुख्य रूप से जिम्मेदार महंगी चुनावी प्रक्रिया है। चुनाव में हुए खच्र की भरपाई के लिये ये दल अत्याधिक धनार्जन करते है। कई बार चुनाव में जिन कम्पनियों से धन (चंदा) मिला होता है उसकी भरपाई इस भ्रष्टाचार से करते है। भाई भतीजावाद भी इसी की कड़ी है। दुनिया के अधिकांश देशों में यह रोग फैल रहा है।

6.विधायिका राजनीतिक संघर्ष का अखाड़ाः- आज राजनीतिक दलों की प्रतिस्पर्धा इस स्तर पर पहुँच चुकी है कि वे राजनीतिक संघर्ष में राष्ट्रहित को भुला बैठे हैं। उनमें आपसी विश्वास, तालमेल समाप्त हो गया है। वे एक दूसरे को रचनात्मक सहयोग नहीं दे रहे हैं। आज रोज विधायिका में काम काज बन्द होने की खबर आम हो गई हैं। संसद लड़ाई का अखाड़ा बन गई है । देश हित, समाज हित के लिये अति आवश्यक बिल पास नहीं हो पा रहें हैं।

7.साम्प्रदायिकता को बढ़ावाः- कई बार यह देखा गया है कि दलीय स्वार्थ के लिये राजनीतिक दल साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं। वे धार्मिक आधार पर प्रत्याशियों का चयन करते हैं। कई बार धार्मिक आधार पर मन्त्रिमण्डल में स्थान

तय होते हैं। यह संयोग है या कुछ और कि चुनाव से पहले धार्मिक तुष्टिकरण के वायदे किये जाते हैं। कई बार तो चुनाव से पहले दंगों का दौर दिखता है।

8.राष्ट्रीय हितों की अनदेखीः- कई बार राजनीतिक दल राष्ट्रीय हित का संवर्धन नहीं करते। वे दलीय हितों को साधते है। मेरीयट के शब्दों में - ''दलभक्ति की अधिकता से देश भक्ति की आवश्यकताओं पर पर्दा पड़ जाता है। वोट प्राप्त करने के धन्धे पर अत्याधिक ध्यान देने से दलों के नेता अथवा उनके प्रबन्धक देश की उच्चतम आवश्यकताओं को भूल या टाल सकते हैं।''

9.योग्य व्यक्तियों की उपेक्षाः- शासन भी एक कला है। यह एक सम्पूर्ण देश के करोड़ों लोगों को प्रभावित करता है। दुर्भाग्यवश इस महत्वपूर्ण कार्य की जिम्मेदारी दलीय बाध्यताओं के कारण सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के हाथ में नहीं आ पाती। योग्य व्यक्ति कई बार राष्ट्रीय हित, सामाजिक हित के लिये दलीय स्वार्थो के विरूद्ध मुखर हो जाता है। कतिपय यही कारण है कि आज योग्य व्यक्तियों का अभाव व्यवस्था में दिखायी पड़ रहा है।

दलीय दोषों अथवा दलबन्दी से बचने के उपायः- इससे बचने के लिये कुछ सुझाव कारगर हो सकते हैः-

1.राजनीतिक शिक्षा का प्रसार

2.आर्थिक विषमता को कम करना

3.सीमित दलीय व्यवस्था

4.कम खर्चीले चुनाव

5.राजनीति से अपराधी, भ्रष्टाचारी को दूर करना

6.दलीय लोकतन्त्र की बहाली

7.व्यापक चुनाव सुधार

12.8 दल प्रणाली के प्रकार:-

आज दुनिया के लगभव सभी देशों में दलों का अस्तित्व है। वह चाहे अधिनायकतन्त्र हो या उदारवादी लोकतन्त्र या समाजवादी राज्य सभी में राजनीतिक दलों का अस्तित्व है। अन्तर केवल एक बात का है कुछ देशों में दल केवल दिखावा है और कुछ देशों में वास्तविक रूप से राजनीतिक व्यवस्था में अपनी भूमिका अदा कर रहे हैं। मुख्य रूप से तीन प्रकार की दलीय व्यवस्था दिखायी पड़ती हैः-

1.एकदलीय व्यवस्थाः- एकदलीय व्यवस्था का अर्थ है कि शासन में केवल एक दल की उपस्थिति। यह ऐसा शासन होता है जिसमें किसी अन्य दल को स्वीकार नहीं किया जाता। दूसरे शब्दों में कहें तो यह एक तरह का अधिनायकवाद है क्योंकि आमजनता के पास अपने मताधिकार के लिये विकल्प ही नहीं है। ये मुख्य रूप से वामपंथी के शासन वाले राज्यों, तानाशाहों के यहाँ दिखायी पड़ता है। यह व्यवस्था लोकतन्त्र के लिये हितकर नहीं है।

2.द्विदलीय व्यवस्था:- जब किसी देश में दो मुख्य दल होते हैं तो उसे द्विदलीय व्यवस्था कहते है। यहाँ पर दो से अधिक दल होने पर प्रतिबन्ध नहीं होता परन्तु जनता का विश्वास न पाने के वजह से वह पनप ही नहीं पाते। उदाहरण के लिये अमेरिका में रिपब्लिकन पार्टी तथा डेमोक्रेटिक पार्टी, इंग्लैण्ड में अनुदार दल तथा श्रमिक दल आदि।

3.बहुदलीय व्यवस्थाः- बहुदलीय व्यवस्था का अर्थ है दो से अधिक दलों का अस्तित्व। यूरोप में इटली, फ्रांस में बहुदलीय व्यवस्था पाई जाती है। भारत में भी बहुदलीय व्यवस्था पाई जाती है। बहुदलीय व्यवस्था वाले देशों में राजनीतिक अधिकार का विस्तार देते हुए सभी व्यक्तियों को यह स्वतन्त्रता दी जाती है कि वे राजनीतिक दल बना सकते हैं। यही कारण है कि उन देशों में दलों की संख्या आवश्यकता से अधिक है। दुनिया के अनेक देश बहुदलीय व्यवस्था के कारण प्रभावित हो रहे हैं। अनेक दल राजनीतिक परिपक्वता के अभाव में मतविभाजन करवाते हैं और चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पाता। स्पष्ट बहुमत के अभाव में अस्थिर सरकारें आती हैं। बार-बार चुनाव होते हैं। फ्रांस में यही कारण था कि पांचवां गणतन्त्र के संविधान में नयी व्यवस्था अपनायी गयी। यह नयी व्यवस्था अध्यक्षात्मक एवं संसदात्मक का मिश्रण है। भारत में भी 90 के दशक में अस्थायी सरकारों ने नयी बहस को जन्म दे दिया था कि क्यों न यहां पर अध्यक्षात्मक शासन को स्वीकार कर लिया जाये? जहाँ पर द्विदलीय व्यवस्था है वहां पर ऐसा संकट उत्पन्न नहीं हुआ। यही कारण है कि लास्की, लावेल, ब्राइस, फाइनर जैसे अनेक विद्वानों ने लोकतन्त्र में द्विदलीय व्यवस्था को श्रेष्ठ माना है।

अभ्यास प्रश्नः-

(1) निर्बल एवं अस्थिर शासन व्यवस्था किस शासन प्रणाली की विशेषता है-

(अ) द्विदलीय व्यवस्था (ब) बहुदलीय (स) एकदलीय (द) कोई नहीं

(2) किसको लोकतन्त्र का प्राण कहा जाता है-

(अ) दबाव समूह (ब) हित समूह (स) राजनीतिक दल (द)सभी

(3) निम्न में से कौन दल विहीन लोकतन्त्र के समर्थक थेः-

(अ) गाँधी (ब) नेहरू (स) विनोवा भावे (द) जयप्रकाश

(4) निम्न में से कौन राजनीतिक दल का कार्य है-

(अ) राजनीतिक शिक्षा (ब) शासन एवं जनता के बीच कड़ी (स) लोकमत का निर्माण

(द) सभी

(5) निम्नमेंसे किसने '' दलों को प्रजातन्त्रीय यंत्र के संचालन में तेल के समान बताया-

(अ) वर्क (ब) सारटोरी (स) हूबर (द) कोई नहीं

(6)''कुछ लोगों के हितों के लिये बहुतों का पागलपन है।'' यह कथन है-

(अ) वर्क (ब) मिचेल्स (स) मोस्का (द) एलक्जेडर पोप

12.9 सारांशः-

राजनीतिक दल लोकतन्त्र के लिये अनिवार्य माने जाते है। इनके अभाव में लोकतन्त्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। कुछ विद्वानों इसे लोकतन्त्र के लिये प्राणवायु के समान मानते है। लोकतन्त्र का उदय सर्वप्रथम इंग्लैण्ड की राजनीतिक व्यवस्था में हुआ। आज दुनिया के सभी लोकतान्त्रिक देशों में राजनीतिक दलों का अस्तित्व है।

राजनीतिक दल कुद सिद्धान्तों पर एकमत लोगों का समूह है जिनका उद्देश्य संवैधानिक तरीके से सत्ता को प्राप्त कर अपने नीतियों एवं कार्यक्रमों को लागू करना होता है। ये संवैधानिक साधनों में विश्वास करते है, निश्चित सिद्धान्तों पर एकजुट होते है।, सत्ता प्राप्ति इनका लक्ष्य होता है। राजनीतिक दल मुख्य रूप से सत्ता प्राप्ति के लिये सदैव क्रियाशील रहते है। जब वे सत्ता से दूर रहते है तब वे उसको पाने जनमत को अपने पक्ष में करने के लिये विभिन्न प्रकार के उपक्रम जैसे रैली, प्रचार,भाषण आदि का सहारा लेते है। आधुनिक समयमेंइस कार्य हेतु सोशल मीडिया का महत्व बहुत बढ़ गया है। सत्ता प्राप्त होने के बाद वे अपनी नीतियों, कार्यक्रमों को लागू करते है तथा सत्ता को अपने पास रखने के लिये अपने प्रचार अभियान को निरन्तर चलाते रहते है। वे जनता को राजनीतिक रूप से जागरूक बनाते है। वह उनके मतदान व्यवहार को प्रभावित करने का प्रयास करते है। वह जनता के समक्ष विकल्प बनकर प्रस्तुत होते है। दूसरे शब्दों से कहे तो राजनीतिक दलों के बिना लोकतन्त्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। विभिन्न विद्वानों जैसे एलन वाल, सारटोरी, डूर्वजर, मिचेल्स, आदि ने राजनीतिक दलों का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण किया है। आधुनिक समय में राजनीतिक दलों का स्वरुप कार्यविधि , ढांचा में भी बदलाव दिखायी पड़ रहा है। इन सबके बावजूद राजनीतिक दलों के अभाव में लोकतन्त्र की कल्पना भी संभव नहीं है।

12.10 शब्दावलीः-

अल्पतन्त्र का लौह नियमः- मिचेल्स ने यह सिद्धान्त दिया। इसका अर्थ है कि शासन सदैव योग्य लोगों के हाथ में रहता है। जो अल्पसंख्या में होता है।''

बहुदलीय व्यवस्थाः- किसी भी शासन व्यवस्था में दो से अधिक दलों का अस्तित्व बहुदलीय व्यवस्था कहलाता है।

कार्यवाहक बहुदलीय व्यवस्थाः- दो से अधिक दलों के अस्तित्व के बावजूद वास्तविकता में सत्ता के लिये दो दलों में संघर्ष रहता है। ऐसी व्यवस्था को कार्यवाहक बहुदलीय व्यवस्था कहते है।

सर्वसत्तावादी दलः- यह वह व्यवस्था है जिसमें एक दल ही प्रभावी रहता है। उसके पास सभी प्रकार की सत्ता समाहित रहती है।

12.11 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर:-

1.ब, 2. स, 3. द, 4. द, 5. स, 6. द

12.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1.जौहरी जे0सी0, जौहरी सीमा, आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त

2.गेना सी0बी0, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थायें

3.सिंघल एस0सी0, तुलनात्मक राजनीति

4.खन्ना वी0एन0, आधुनिक सरकारें

5.जैन आर0सी0, तुलनात्मक राजनीति

12.13 सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्रीः-

1.गाबा ओ0पी0, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा
2.सोडारों माइकल, कम्परेटिव पॉलिटिक्स
3.संधू ज्ञान सिंह, राजनीति सिद्धान्त
4.राय गांधी जी, तुलनात्मक राजनीतिक संस्थायें

12.14 निबन्धात्मक प्रश्नः-

1.राजनीतिक दल से क्या समझते है? इनके कार्यों का वर्णन कीजिये।
2.राजनीतिक दलों की परिभाषा दीजिये तथ इसके गुण दोषों का वर्णन कीजिये।
3.राजनीतिक दलों का अर्थ समझाइये तथा इनकी विशेषतायें बताइये।
4.राजनीतिक दल पर एक निबन्ध लिखिये।
5.राजनीतिक दल से क्या समझते है? दलीय व्यवस्था के प्रकार पर प्रकाश डालिये।

इकाई 13 दबाव समूह, हित समूह एवं नागरिक समाज

इकाई संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 अर्थ एवं परिभाषा

13.4 दबाव समूह के प्रमुख तत्त्व

13.5 दबाव समूह के उदय के कारण

13.6 राजनीतिक दल एवं दबाव समूह में अंतर

13.7 दबाव समूह के साधन

13.8 दबाव समूह के प्रकार अथवा वर्गीकरण

13.9 दबाव समूह और लोकतंत्र

13.10 हित समूह

13.11 सार्वजनिक नीति पर हित समूह का प्रभाव

13.12 दबाव समूह एवं हित समूह में अंतर

13.13 नागरिक समाज

13.14 नागरिक समाज के विभिन्न प्रकार

13.15 सारांश

13.16 शब्दावली

13.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.19 सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्री

13.20 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना:

आधुनिक समाज की जटिल संरचना में, विभिन्न संस्थाएँ नीतियों को आकार देने, निर्णयों को प्रभावित करने और विविध हितों की वकालत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन संस्थाओं में, दबाव समूह, हित समूह और नागरिक समाज संगठन सामाजिक परिवर्तन लाने और विशिष्ट कारणों की वकालत करने वाली गतिशील शक्तियों के रूप में सामने आते हैं।

शासन का परिदृश्य अब केवल पारंपरिक राजनीतिक संस्थानों पर हावी नहीं है; बल्कि, यह इन गैर-सरकारी कर्ताओं के संगठित प्रयासों से तेजी से प्रभावित हो रहा है। जमीनी स्तर के आंदोलनों से लेकर अच्छी तरह से स्थापित वकालत समूहों तक, इन संस्थाओं द्वारा संचालित प्रभाव का स्पेक्ट्रम विशाल और बहुआयामी है।

इस अध्याय में, हम दबाव समूहों, हित समूहों और नागरिक समाज संगठनों की जटिल गतिशीलता का पता लगाने का प्रयास करेंगें। हम उनकी उत्पत्ति, कार्यों, प्रभाव के तंत्र और सरकारों, व्यवसायों और अन्य सामाजिक अभिनेताओं के साथ उनके द्वारा बनाए गए जटिल संबंधों का विश्लेषण करेंगें।

इन संस्थाओं की भूमिकाओं और कार्यों को समझकर, हम उन तंत्रों में अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हैं जो लोकतांत्रिक शासन को रेखांकित करते हैं, नीति-निर्माण प्रक्रियाओं की जटिलताओं और सार्वजनिक क्षेत्र में विविध आवाजों को अभिव्यक्ति देने के तरीकों के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप दबाव समूह, हित समूह और नागरिक समाज के बारे में:

1. लोकतांत्रिक समाजों के भीतर दबाव समूहों, हित समूहों और नागरिक समाज की परिभाषाओं, विशेषताओं और भूमिकाओं सहित अवधारणाओं की समझ प्रदान करना।
2. दबाव समूहों, हित समूहों और नागरिक समाज संगठनों के ऐतिहासिक उद्भव और विकास के अध्ययन के साथ ही , उनकी उत्पत्ति और विकास का पता लगाना।
3. दबाव समूहों, हित समूहों और नागरिक समाज संगठनों के विभिन्न प्रकारों और वर्गीकरणों की जांच करना, जिसमें उनकी संरचनाएं, सदस्यता संरचनाएं और फोकस के क्षेत्र शामिल हैं।

13.3 अर्थ एवं परिभाषा-

सामान्य शब्दों मेंकहें तो दबाव समूह विशेष हितों के साथ जुड़े एसे संगठन होते हैं जो अपने समूह के हितों की रक्षा के लिए नीति निर्माताओं पर दबाव बनाते हैं।

वी0ओ0की0 के शब्दोंमें- ''दबाव समूह वे निजी संघ हैं जो सार्वजनिक नीतियों का प्रभावित करने के लिये बनते हैं।''

ओटी गार्ड के शब्दों में- ''दबाव समूह ऐसे व्यक्तियों का औपचारिक संगठन है जिनके एक या अनेक सामान्य उद्देश्य अथवा स्वार्थ होते हैं जो घटनाओं के क्रम को विशेष रूप से सार्वजनिक नीति के निर्माण और शासन को अपने हितों की रक्षा एवं वृद्धि के लिये प्रभावित करते हैं।''

माइनर वीनर के शब्दों में- ''हित अथवा दबाव समूह से हमारा अभिप्राय किसी ऐसे ऐच्छिक रूप से संगठित समूह से होता है जो सरकार के संगठन से बाहर रहकर अधिकारियों की नियुक्ति, सरकार की नीति, इसका प्रशासन तथा इसके निर्णय को प्रभावित करने का यत्न करता हो।''

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि दबाव समूह एक से हित वाले लोगों का एक समूह है जो अपने समूह हित की पूर्ति के लिए सरकार पर दबाव बनाते हैं। ये समूह औद्योगिक, व्यापारिक, व्यावसायिक, श्रमिक समूह विधि निर्माण के कार्य को अपने हित मेंप्रभावित करने का प्रयास करते हैं। ये समूह अपने सदस्यों के हितों की पूर्ति के लिये सभी माध्यमों से दबाव बनाते है।

13.4 दबाव समूह के प्रमुख तत्वः-

1.सीमित उद्देश्य:- जहाँ राजनीतिक दल का उद्देश्य सार्वजनिक हित की पूर्ति करना होता है वहाँ दबाव समूह का उद्देश्य सीमित होता है। यह केवल अपने समूह के हित को पूरा करने का प्रयास करते हैं। ये अपने समूह हित को पूरा करने के बाद या तो निष्क्रिय हो जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं। इनका स्वार्थ केवल अपने समूह हित तक होता है। ये सार्वजनिक हित, राष्ट्रहित के विषय में सक्रिय नहीं रहते।

2.सीमित सदस्यताः- दबाव समूह का जन्म ही वर्ग विशेष, समूह विशेष की हित पूर्ति के लिये होता है। यही कारण है कि इनकी सदस्यता सीमित रहती है। ये एक विशेष वर्ग के लोग होते हैं। इसमेंसम्पूर्ण देश के सभी समूहों का प्रतिनिधित्व नहीं होता। यही कारण है कि इनकी सदस्यता सीमित होती है। उदाहरण के लिये वे छात्र संघ, किसान सभा, मजदूर संघ के रूप मेंदिखायी पड़ते हैं।

3.संवैधानिक-असंवैधानिक साधनों का प्रयोगः- दबाव समूह अपने उद्देश्य को पाना चाहते हैं। वे सरकार की विधि निर्माण की प्रक्रिया पर दबाव बना कर अपने उद्देश्यों को पूरा करना चाहते हैं। इसके लिये कई बार वे संवैधानिक तथा असंवैधानिक माध्यमों का भी प्रयोग करते है। वे विधि निर्माताओं को धमकी देना, प्रलोभन देना, धन देना, डराना आदि सभी उपक्रम कर अपने लिये कार्य करवाना चाहते हैं। वह सभी प्रकार के हथकन्डे अपना कर अपने हितों की पूर्ति करते हैं।

4.शासन एवं विधान मण्डल की सदस्यता नहीं- ये विधि निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित कर अपने हित मेंविधि निर्माण चाहते हैं। इस विधि निर्माण प्रक्रिया मेंखुद को शामिल नहीं करना चाहते अर्थात् स्वयं चुनाव लड़कर विधानमण्डल मेंपहुँचकर स्वयं कानून बनाने मेंशामिल नहीं होना चाहते। शासन के उत्तरदायित्व से बाहर रहकर केवल दबाव द्वारा अपने हित साधना चाहते हैं।

5.अनिश्चित कार्यकालः- दबाव समूह का जन्म ही निश्चित उद्देश्य एवं हित साधन के लिए होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के साथ ही उनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है और वो भी समाप्त हो जाते हैं। कुछ दबाव समूह जिनके उद्देश्य पूरे नहीं हुए हैं वे बने रहते है। इन दबाव समूहों की सक्रियता मेंअन्तर आता रहता है।

6.सभी शासन व्यवस्थाआं मेंउपलब्धताः- दबाव समूह आधुनिक समय मेंसभी शासन व्यवस्थाओं मेंउपलब्ध दिखायी पड़ते हैं। लोकतन्त्र हो या तानाशाही, पूँजीवादी राज्य हो या समाजवादी राज्य सभी मेंदबाव समूह सक्रिय दिखायी पड़ते हैं। राबर्ट सी0 वोन के शब्दों में- ''दबाव समूह सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं मेंसर्वाधिकारवादी राज्यों मेंभी पाये जाते हैं।

13.5 दबाव समूह के उदय के कारणः-

दबाव समूह के उदय के प्रमुख कारण निम्न हैः-

1.राज्य के कार्यों में वृद्धि होने से शासन के अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक कार्य भी राज्य करने लगा। अपने वर्ग अथवा समूह हित के लिये कानून बनवाने लोग संगठित हुए।

2.औद्योगित क्रान्ति ने मजदूर वर्ग को जन्म दिया। वे अपने हितों के लिये संगठित प्रयास करने लगे।

3.विभिन्न वर्गों की बढ़ती आकांक्षा एवं जागरूकता उन्हें समान हित के आधार पर संगठित करता है।

4.प्रादेशिक निर्वाचन प्रणाली या प्रादेशिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त जो क्षेत्र के आधार पर प्रतिनिधित्व देता है जिसमेंआर्थिक समूह, सामाजिक, सांस्कृतिक समूहों का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता। अतः वे अपने हितों के लिये संगठित होते हैं।

5.बढ़ती महत्वाकांक्षा भी अनेक दबाव समूहों का निर्माण करवाती है। राजनीति मेंसक्रिय होने की लालसा मेंकुछ लोग दबाव समूह का गठन करते हैं।

13.6 राजनीतिक दल एवं दबाव समूह में अन्तरः-

राजनीतिक दल एवं दबाव समूह किसी भी शासन व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग हैं। जहाँ राजनीतिक दलों के बिना लोकतन्त्र का संचालन नहीं हो सकता वहीं दबाव समूह के बिना भी हम किसी शासन व्यवस्था की कल्पना नहीं कर सकते। जहाँ राजनीतिक दल सीधे सरकार, नीति निर्माताओं को नियन्त्रित कर राष्ट्रीय नीतियों का निर्माण करवाते हैं। वहीं दबाव समूह भी समाज एवं शासन के साथ जुड़कर अपने पक्ष में नीतियों का निर्माण करवाते हैं। ये सरकार के साथ समाज एवं व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध रखते हैं। इसके बावजूद दबाव समूह एवं राजनीतिक दल में कुछ अन्तर है।

मौरिस डूवर्जर ने इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है - ''राजनीतिक दल सत्ता प्राप्त करके उसका उपयोग करना चाहते हैं- वे ऐसा महापौरों, सीनेट सदस्यों को निर्वाचित करवाकर तथा मन्त्रियों एवं राज्य के अध्यक्ष को चुनवाकर करते हैं। इसके विपरीत दबाव समूह राजनीतिक सत्ता को प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग करने मेंहाथ नहीं बँटाते हैं। वे सत्ता से दूर रहते हुये, सत्ता को प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं। वे उस पर दबाव डालने का प्रयास करते हैं जिसके पास सत्ता होती है। वे अपने सदस्यों को सत्तारूढ़ कराने का प्रयास नहीं करते हैं।

हैरल्ड ब्रूस ने दबाव समूह एवं राजनीतिक दलों के सम्बन्धों की व्याख्या करते हुए लिखा है- ''दबाव समूह प्रायः राजनीतिक दलों से स्वतन्त्र होते हुए भी उनके सहयोगी होते हैं। परिस्थिति के अनुसार उनके सम्बन्ध बदलते रहते हैं। दबाव समूह सामान्यतः गैर राजनीतिक होते हैं। वे दलीय सीमाओं को लांघकर मतदाताओं का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।'' दबाव समूह एवं राजनीतिक दलों मेंप्रमुख अन्तर निम्न है-

राजनीतिक दल एवं दबाव समूह मेंअन्तर

1.राजनीतिक दल राजनीतिक होते हैं जबकि दबाव समूह गैर राजनीतिक:- राजनीतिक दलों के उद्देश्य राजनीतिक होते हैं। वे चुनाव में भाग लेते हैं, चुनाव मेंप्रत्याशी खड़े करते हैं। वे चुनाव जीतकर शासन सत्ता को प्राप्त करना चाहते हैं। दबाव समूह सत्ता प्राप्त करना नहीं चाहते, वे विधायकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रभावित कर दबाव बना नीति को अपने हित मेंबनवाने का प्रयास करते हैं, जिससे उस वर्ग विशेष (हित समूह) के हितों की पूर्ति हो सके। इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजनीतिक दल औपचारिक राजनीतिक संगठन होते हैं जबकि दबाव समूह बाहर रहकर अपना हित साधना चाहते हैं।

2.राजनीतिक दलों का क्षेत्र व्यापक होता है जबकि दबाव समूह का छोटा:- राजनीतिक दलों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। इसमेंअनेक वर्गों, समूहों के लोग शामिल होते हैं। इनकी सदस्य संख्या लाखों में होती है। इसके विपरीत दबाव समूह की सदस्य संख्या सीमित तथा क्षेत्र भी सीमित होता है। कोई भी व्यक्ति एक साथ कितने भी समूहों का सदस्य बन सकता है। परन्तु एक बार मेंएक ही दल का सदस्य बन सकता है। अतः क्षेत्र के आधार पर राजनीतिक दलों एवं दबाव समूह मेंअन्तर है।

3.राजनीतिक दलों के कार्यक्रम व्यापक जबकि दबाव समूह के संकीर्ण:- राजनीतिक दल वर्ष भर संपूर्ण देश में विभिन्न कार्यक्रम चलाते हैं। वहीं दबाव समूह कार्यक्रम एवं हित की दृष्टि से संकीर्ण तो होते ही है साथ ही अत्याधिक सजातीय होते हैं। उनके मुद्दे व हित समान होते हैं। अतः विचारों की संगति ही एकता एवं सजातीयता प्रदान करती है। दूसरी तरह दलों के कार्यक्रम व्यापक क्षेत्र एवं मुद्दे भी व्यापक होते हैं। यही कारण है कि उनमेंसजातीयता नहीं हो पाती है। अतः दलों एवं दबाव समूहों में कार्यक्रमों की व्यापकता के आधार पर अन्तर है।

4.राजनीतिक दल संगठित जबकि दबाव समूह असंगठित होते है:- राजनीतिक दल सम्पूर्ण देश या प्रदेश का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे सत्ता प्राप्ति करना चाहते हैं। अतः वे पूर्णतः संगठित होते हैं। इनकी सदस्यता लाखों में होती है। इनका संगठन पद-सोपान पर आधारित होता है। प्रत्येक पदाधिकारी की जिम्मेदारी तय होती है। दल के अंदर

लोकतान्त्रिक चुनाव होते हैं। इसके ठीक विपरीत दबाव समूह असंगठित होते हैं। वे केवल त्वरित लाभ एवं हित के लिये नीति निर्माताओं एवं क्रियान्वन करने वालों को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं।

5.राजनीतिक दल संवैधानिक साधनों मेंविश्वास करते हैं जबकि दबाव समूह नहीं- राजनीतिक दलों एवं दबाव समूह में यह प्रमुख अन्तर है। जहां दबाव समूह 'एनन केन प्रकारेण' अथवा किसी तरह अपने हित साधना चाहता है। वह हितपूर्ति के लिये अनैतिक, अमर्यादित आचरण जैसे - घूस, शराब आदि का प्रयोग करने से भी संकोच नहीं करते। वहीं राजनीतिक दल संवैधानिक साधनों के द्वारा सर्वोच्च लक्ष्य (सत्ता) को प्राप्त करना चाहते हैं। वे हिंसा अथवा अन्य असंवैधानिक साधनों में विश्वास नहीं करते। यही कारण है कि राजनीतिक दल लोकमत को पक्ष में कर, मत के द्वारा सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

6.राजनीतिक दल सदैव क्रियाशील जबकि दबाव समूह सदैव नहीं- राजनीतिक दल एवं दबाव समूह मेंयह प्रमुख अन्तर है कि जहाँ राजनीतिक दल का क्षेत्र बड़ा होता है, लक्ष्य बड़ा होता है अतः उनके प्रयास भी बड़े होते हैं। वे वर्ष भर क्रियाशील रहते हैं। वे वर्ष भर कार्यक्रम, आन्दोलन चलाते हैं। दूसरी तरफ दबाव समूह सदैव क्रियाशील नहीं रहते। वे केवल अपने हितों के लिये सक्रिय होते हैं और हित पूरा होते ही निष्क्रिय हो जाते हैं।

7.राजनीतिक दल विधानमण्डल के अन्दर एवं बाहर कार्य करते हैं जबकि दबाव समूह केवल बाहरः- राजनीतिक दल एवं दबाव समूह मेंप्रमुख अन्तर है जहाँराजनीतिक दल जनता के समर्थन से सत्ता पाते हैं। इसलिये वह इस समर्थन को खोना नहीं चाहते। अतः वह सदैव जनता के बीच रहते हैं। तथा विधायिक मेंभी अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। इसके विपरीत दबाव समूह केवल अपने समूह मेंसक्रिय रहते हैं। वह विधानमण्डल के सदस्य नहीं होते अतः वहाँ सक्रिय नहीं रहते।

8.सत्ता प्राप्ति को लेकर अन्तरः- राजनीतिक दल का उद्देश्य सत्ता प्राप्त कर अपने नीतियों एवं सिद्धान्तों को लागू करना होता है जबकि दबाव समूह केवल अपने स्वार्थों की पूर्ति चाहता है। वह सत्ता प्राप्ति की लालसा नहीं रखते। वे केवल विधि निर्माताओं, प्रशासकों को प्रभावित कर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहते हैं।

13.7 दबाव समूह के साधनः-

आज दुनिया में लाखों दबाव समूह कार्यरत हैं। इन सबके अपने उद्देश्य एवं कार्य करने के तरीके हैं। दबाव समूहों के साधन एवं उद्देश्य को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं रहा। कुछ विद्वान इनमेंअनेक बुराइयाँ देखते हैं तथा लोकतन्त्र भ्रष्ट करने का माध्यम मानते हैं। वहीं कुछ विद्वान इसे उचित, राजनीतिक प्रक्रिया मेंउत्पन्न रिक्तता को भरने का माध्यम मानते हैं। अमेरिका एवं ब्रिटेन के दबाव समूहों के प्रति नजरिये में भी अन्तर है। जहां अमेरिका मेंइन्हें भ्रष्टता के गढ़ के रूप मेंदेखा जाता है वहीं ब्रिटेन मेंयह लोकतन्त्र के अनिवार्य हिस्से के रूप में देखे जाते हैं। दबाव समूहों द्वारा अपनाये जाने वाले साधन इस प्रकार हैः-

1.संगठन निर्माणः- दुनिया मेंदो तरह से दबाव समूह दिखायी पड़ते हैं। कुछ दबाव समूह पूर्णतः संगठित होते हैं। वे पद-सोपान के क्रम मेंसंगठित होते हैं। संगठन बनाकर वह कार्य विभाजन करते हैं। इस तरह वह उत्तरदायित्व तय कर अपने उद्देश्यों को पाने का प्रयास करते हैं।

2.लॉबिंग- दबाव समूह का यह महत्वपूर्ण साधन है। अमेरिका मेंयह तरीका बहुत लोकप्रिय है। इसमेंदबाव समूह के सदस्य विधायिका के सदस्यों से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। इस उद्देश्य के लिये विभिन्न दबाव समूह विशेष प्रतिनिधि नियुक्त करते हैं। दबाव समूह द्वारा प्रयोग मेंलाया जा रहा प्रमुख साधन है।

3.सामूहिक प्रचारः- दबाव समूह द्वारा प्रयोग मेंलाया जा रहा प्रमुख साधन है। वे अपने उद्देश्यों, लक्ष्यों का व्यापक प्रचार करते हैं। वे विभिन्न प्रचार एजेन्सियों के माध्यम से अपनी मांगों को सरकार तक पहुँचाते हैं तथा उन्हें वैध ठहराते हैं। वह सुनियोजित ढंग से व्यापक प्रचार अभियान द्वारा सरकार पर दबाव बनाते हैं। इस साधन के द्वारा सरकार पर दबाव बना अपना हित साधते हैं।

4.पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशनः- दबाव समूह का यह महत्वपूण साधन है। इसमेंविभिन्न समूह विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करते हैं। वे अपनी मांगों का ने केवल प्रचार करते हैं।वरनउनको सही भी ठहराते हैं। इन पत्र-पत्रिकाओं का प्रसार दूर-दूर तक किया जाता है। इससे दबाव समूह को अनेक लाभ होते हैं। उन्हे प्रचार, वैधता तो मिलती ही साथ ही अनेक नये सदस्य भी मिलते हैं जिससे इनकी सदस्य संख्या बढ़ती है।

5.जनता से सीधा सम्पर्कः- दबाव समूह के पास सदस्यता होती है। वे सीधे जनता से सम्पर्क करते हैं। वे जनता के बीच जाकर अपनी मांगों का प्रचार करते हैं। साथ ही जनसमर्थन भी प्राप्त करते हैं। उनको प्राप्त जनसमर्थन ही उनकी शक्ति होती है जिसके माध्यम से भी वह अपनी मांगों को पूरा करवाते हैं।

6.विभिन्न राजनीतिक दलों से परोक्ष सम्बन्धः- दबाव समूह सीधे चुनाव मेंभाग नहीं लेते परन्तु वे विभिन्न राजनीतिक दलों से परोक्ष सम्बन्ध रखते हैं। वे उनको विधायिका मेंपहुँचाकर अपने हितों की पूर्ति करवाते हैं। भारत मेंभारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ ;ण्च्छण्ज्ण्ब्ण्द्ध साम्यवादी दलों से, भारतीय मजदूर संघ (भारतीय जनता पार्टी से) जुड़ा हुआ है।

7.हड़ताल एवं धरना प्रदर्शनः- दबाव समूह सरकार एवं विधि निर्माताओं पर दबाव बनाने के लिये हड़ताल एवं धरना प्रदर्शन करते हैं। इसके माध्यम से वह अपने साथ उपस्थित संख्या बल प्रदर्शित करते हैं। वे इसके माध्यम से सरकार का ध्यान आकृष्ट कर अपनी मांगों को मनवाने का प्रयास करते हैं।

8.न्यायालय की मददः- दबाव समूह अपने हितों के लिये विभिन्न उपक्रम करते हैं। परन्तु कई बार ऐसे कानून बन जाते हैं जो उनके हितों के विरूद्ध होता है तो वे न्यायालय की शरण मेंजाकर उन कानूनों का रद्द कराना चाहते हैं। वे कई बार किसी मामले मेंसार्वजनिक हित का हवाला देकर सर्वोच्च न्यायालय मेंजनहित याचिका ;च्ण्ण्स्ण्द्ध भी करते है। अतः दबाव समूह न्यायालय की मदद भी लेते हैं।

9.गोष्ठियों एवं सभाओं का आयोजन - वे समय-समय पर जनजागरण बढ़ाने के लिये गोष्ठियों एवं सभाओं का आयोजन करते हैं। ये गोष्ठियों एवं सभाओं का आयोजन सूचनाओं के आदान-प्रदान का महत्वपूर्ण माध्यम है। वे इन सभाओं, गोष्ठियों में विधि निर्माताओं एवं प्रभावशाली व्यक्तियों का आमन्त्रित करते हैं। वे इससे अपने मतों को प्रभावशाली ढंग से रखते हैं तथा अधिकारियों एवं नीतिनिर्माताओं को अपने पक्ष मेंकरने का प्रयास करते हैं।

10.अनैतिक माध्यमों का उपयोगः- दबाव समूहों कई बार हित साधने के लिये अनैतिक साधनों का भी प्रयोग करते हैं। वे असंवैधानिक साधनों का प्रयोग करने से भी नहीं हिचकते हैं। कतिपय यही कारण है कि दबाव समूह की व्यापक आलोचना भी की जाती है।

13.8 दबाव समूहों के प्रकार अथवा वर्गीकरण:-

समाज में कई तरह के दबाव समूह दिखायी पड़ते हैं। संगठन के आधार पर यह जनवादी समूह तथा परम्परागत या विशिष्ट वर्गीय समूह के रूप में दिखते हैं अनेक विद्वानों ने दबाव समूहों के वर्गीकरण प्रस्तुत किये है। लोकतान्त्रिक देशों में यह मुख्य रूप से छोटे, बड़े, स्थाई, अस्थाई कई प्रकार के दबाव समूह पाये जाते हैं। यह वर्गीकरण लक्ष्य, संगठन की प्रकृति, अवधि, कार्य, क्षेत्र आदि के आधार पर किया जाता है।

लक्ष्य के आधार पर यह स्वार्थी एवं परोपकारी तथा संगठन के आधार पर औपचारिक एवं अनौपचारिक तथा कार्य क्षेत्र के आधार पर सीमित एवं वृहद कार्य क्षेत्र वाले दबाव समूह कहा जा सकता है। राजनीति शास्त्र मेंअनेक विद्वानों ने जैसे आमण्ड, हिचनर, जीन ब्लोण्डेल ने अलग-अलग वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं। इनमेंसे आमण्ड एवं ब्लोण्डल के वर्गीकरण इस प्रकार है-

आमण्ड का वर्गीकरण:- आमण्ड ने दबाव समूहों को चार भागों मेंबाँटा। उसके वर्गीकरण को अनेक विद्वानों के साथ हिचनर एवं लेवाइन ने स्वीकार किया। आमण्ड ने हित समूह (दबाव समूह) को चार भागों मेंबांटा:-

1.संस्थागत हित समूहः- सेना, पुलिस, प्रशासनिक अधिकारियों के संगठन

2.प्रदर्शनात्मक या उद्दण्ड हित समूहः- हिंसक , सविंधान विरूद्ध कार्य करने वाले

3.साहचर्य हित समूह:-व्यापारी संघ, किसान संघ, मजदूर संघ आदि

4.असाहचर्य हित समूहः- ब्राहमण महासभा, क्षत्रिय महासभा, सुन्नी वक्फ बोर्ड

जीन ब्लौण्डेल का वर्गीकरणः-

1.सामुदायिक हित समूह

- रूढ़िगत ; Customary Pressure Group - क्षत्रिय महासभा जाट संघ
- संस्थागत ; Institutional Pressure Group. सैनिक कल्याण परिषद, कर्मचारी संघ

2.साहचर्य हित समूह

- संरक्षात्मक -श्रमिक, व्यापारिक संघ
- उत्थानात्मक ; - गौ-रक्षा, नारी कल्याण

उपरोक्त दो वर्गीकरण को देखने के बाद दबाव समूह के निम्न प्रकार बनाये जा सकते हैः-

दबाव समूह के प्रकारः-

1.संस्थानात्मक दबाव समूहः- संस्थानात्मक दबाव समूह वह होते हैं जिनका अपना संगठनात्मक ढांचा होता है जो किसी न किसी संस्था से जुड़े होते हैं। ऐसे दबाव समूह मेंमुख्य रूप से सेना, पुलिस नौकरशाही जैसे विभिन्न संस्थान आते हैं। ये विभिन्न संस्थानों मेंकार्य कर रहे लोगों को अपने हित मेंबनाया समूह होता है। इनके सदस्य इनके साथ अन्य समूहों की सदस्यता भी लेते हैं। भारत मेंऐसे दबाव समूह मुख्य रूप से भारतीय पुलिस सेवा संघ, सैनिक कल्याण परिषद, भारतीय प्रशासनिक अधिकारी संघ प्रमुख हैं।

2.समुदायात्मक दबाव समूहः- समुदायात्मक संघ मुख्य रूप से अपने समुदाय विशेष के हितों की पूर्ति के लिये संगठित होते हैं। ये स्वतन्त्र होते हैं। ये किसी अन्य संस्था से जुड़े हो सकते हैं। ये मुख्य रूप से एक साथ एक व्यवसाय करने से बने समूह होते हैं। इनमें मुख्य रूप से व्यापारी संघ, किसान संघ, मजदूर संघ आदि आते हैं।

3.असमुदायात्मक दबाव समूहः- इस समूह की मुख्य प्रेरक शक्ति जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, अथवा रक्त समूह होता है। ये स्वतः स्फूर्त समूह होते हैं। प्रायः यह संगठित नहीं होते। ये बेहद प्राचीन समय से अस्तित्व मेंहैं। इस समूह के पीछे अदृश्य रूप से समाज के परम्परागत मूल्य बन्धन का कार्य करते हैं। इसमें मुख्य रूप से क्षत्रिय महासभा, कायस्थ महासभा, सुन्नी वक्फ बोर्ड आदि है।

4.उद्दण्ड या प्रदर्शनकारी दबाव समूहः- यह मुख्य रूप से वह समूह है जो अपनी मांगों को लेकर हिंसक और संविधान विरूद्ध कार्य करने लगते हैं। वे अपनी मांगों को लेकर हड़ताल, धरना प्रदर्शन, अनशन, सार्वजनिक सम्पति को नुकसान पहुंचाना, रोड ब्लाक, आगजनी आदि का सहारा लेते हैं। वे इस अमर्यादित आचरण से शासन पर दबाव बनाने का प्रयास करते हैं।

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि दबाव समूहों का स्थान विभिन्न शासन प्रणालियों मेंबेहद मजबूत है। प्रारम्भ मेंइन्हें अनैतिक, आदर्शों के विरूद्ध एवं लोकतन्त्र को नष्ट करने वाला माना गया।

समय के साथ राज्य के क्षेत्र, जनसंख्या एवं कार्य बढ़ने से राजनीतिक दलों की लोगों तक पहुँचने मेंअसमर्थता तथा लोगों की बढ़ती महत्वाकांक्षा एवं जागरूकता ने राजनीतिक रूप से दबाव समूह को जन्म दिया। आज लोकतन्त्र की कल्पना भी उनके बिना नहीं हो सकती। वे सूचनायें एकत्रित एवं प्रसारित करते हैं, सरकारों पर नियन्यत्र रखते हैं, व्यवसायिक प्रतिनिधित्व की कमी को पूरा करते हैं, सरकार एवं जनता के बीच कड़ी का काम करते हैं। वे विधानमण्डल के पीछे विधानमण्डल के समान है। कतिपय यही कारण है कि फाइनर ने उन्हें 'अज्ञात साम्राज्य' कहा।

13.9 दबाव समूह और लोकतन्त्रः-

दबाव समूह को लोकतन्त्र की आवश्यकता बताया जाता है। लोकतन्त्र मेंसरकारें जनता के पास पांच वर्षों के बाद आती है। पांच वर्ष से पहले राजनीतिक दल तथा दबाव समूह ही राजनीतिक व्यवस्था का संचालन करते है। वे आमजनता केा जागरूक करते है, सरकार कूनीतियों, कार्यक्रमों तथा उनकी खामियों का प्रचार करते है। वे सरकार के ऊपर समूह बनाकर दबाव बनाते है । तथा अपने हितों की पूर्ति करवाते हैं । वे कई बार सरकार के ऊपर अंकुश लगाने के लिये आंदोलन, प्रदर्शन, करना आदि का मार्ग भी अपनाते है। टूमैन ने अपनी पुस्तक गर्वनमेटंल प्रासेस में दबाव समूहों को लोकतान्त्रिक व्यवस्था की सुरक्षा एवं उसके सरल संचालन के लिये आवश्यक माना है। उनका मानना था कि -'' प्रत्येक व्यक्ति एक से अधिक समूहों का सदस्य होता है अतः पारस्परिक प्रतियोगितारत समूहों के द्वारा खेल के नियमों के पालन में मर्यादा उल्लंघन किये जाने पर वह अपनी ओर से तीव्र प्रतिक्रिया ही व्यक्त नहीं करता वरन अपने स्वयँ के समूह की भी मर्यादा का उल्लघंन नहीं करने देता। इस प्रकार सभी समूहों में आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया की ऐसी मर्यादा बन जाती है जिसका पालन सभी करते है। ऐसी स्थिति में किसी समूह या शासन के द्वारा सत्ता के दुरूपयोग की संभावना न्यूनतम रहती है। कोई भी समूह शक्तिशाली नहीं बन पाता तथा विविध समूहों तथा शासन के बीच एक

शक्ति का एक सक्रिय संतुलन बना रहता है। यह लोकतन्त्र को आदर्श अवस्था है।'' वह आगे और स्पष्ट करते हुए कहते है कि यदि प्रतियोगिता अमर्यादित होगी तो जनतांत्रिक परम्परायें अक्षुण्ण नहीं रहेगी वरन लोकतन्त्र तभी सफल होगा जब समूह प्रतियोगितारत रहते हुए भी नियमों एवं सीमाओं का पालन को।

लोकतन्त्र में समूह बनाने की स्वतन्त्रता रहती है। कतिपय यही कारण है कि लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में व्यक्ति एक साथ ही जातीय , धार्मिक, क्षेत्रीय , व्यवसायिक, भाषायी, वर्गीय, उपभोक्ता, उत्पादक आदि अनेक समूहों संगठनों का सदस्य होता है। इन संगठनों की सदस्यता औपचारिक नहीं होती परन्तु इसके बावजूद संकट के समय या सरकार के द्वारा अत्याचार के समय इन संगठनों के द्वारा न केवल विरोध किया जाता है वरन बड़ी संख्या में सहानुभूति एवं समर्थन जुटाया जाता है। यह लोकतन्त्र के लिये शुभ संकेत है। इसका द्वारा सरकारों के ऊपर नियन्त्रण स्थापित होता है। वे दूसरे संगठनों के साथ प्रतिस्पर्धा में रहते हुए भी वे सरकार को संतुलित एवं नियन्त्रित करने का कार्य करते है। कतिपय यही कारण है लोकतन्त्र के सफल संचालन के लिये दबाव समूहों की उपस्थिति अनिवार्य है।

दबाव समूह समाज में अतिवादी (उग्र) विचार के विरोधी होते है। विभिन्न समाजों मेंहित समूहों के अलग-अलग हित होते है। इन समूहों में शासन को अपनी ओर खींचने की प्रतियोगिता होती है। इस प्रतियोगिता से समूहों के बीच कुछ नियमों पर सहमति भी हो जाती है। सभी समूह उनका पालन करते है। ऐसे में कोई समूह बनना चाह कर भी नहीं बन पाता है। किसी भी समूह की उग्र एवं असंवैधानिक कार्यों एवं नीतियों को अन्य समूहों के द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। यही कारण है कि दबाव समूहों को शक्ति संतुलक भी कहा जाता है। वे आर्थिक, सामाजिक,राजनीतिक शक्तियों के बीच संतुलन स्थापित करते है। वे किसी एक संगठन एवं समूह को अत्याधिक प्रभावशाली नहीं होने देते है। कतिपय यही कारण है कि उन्हें समाज में शक्ति संतुलन को बनाये रखने तथा लोकतन्त्र को मजबूत करने वाला समूह माना जाता है। दूसरे शब्दों मेंकहे तो वे लोकतन्त्र के आधार स्तम्भ है। यह दो चुनाव के अंतराल में राजनीतिक गतिविधियों को संचालित करते है। ये सरकारों को नियन्त्रित करते है। यह सरकारों को उत्तरदायी बनाते है। यह जनता के हितों के लिये सरकार को उनकी माँगों से अवगत कराते है। सरकार को जनहित के प्रति सचेत करते है। ये समाज में विभिन्न समूहों एवं संगठन के उग्र प्रयासों को नियन्त्रित करते है। यह संगठनों को न केवल नियन्त्रित करते है वरन उनके बीच एक संतुलन बनाने का प्रयास करते है। उनके बिना लोकतन्त्र को सुदृढ़ एवं स्थिर रखने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। कतिपय यही कारण है कि दबाव समूहों को लोकतन्त्र की ' जीवन डोर ' कहा जाता है।

13.10 हित समूह

हित समूह संगठित संघ होते हैं जहां सदस्य समान लक्ष्य साझा करते हैं और सरकारी संस्थानों, अधिकारियों और नीतियों को प्रभावित करने के लिए सक्रिय रूप से काम करते हैं। राजनीतिक दलों के विपरीत, उनका लक्ष्य सरकार को नियंत्रित करना या संचालित करना नहीं है, बल्कि सार्वजनिक नीतियों को आकार देने पर ध्यान केंद्रित करना है जो उनके हितों को प्रभावित करती हैं। ये समूह आकार, संसाधनों, शक्ति और उद्देश्यों में भिन्न होते हैं, लेकिन विधायी,

कार्यकारी और न्यायिक शाखाओं में जनता की राय और सरकारी निर्णयों को प्रभावित करने के लिए पैरवी, चुनाव प्रचार और प्रचार जैसी समान रणनीति अपनाते हैं।

हित समूहों की अवधारणा स्व-हितों को आगे बढ़ाने और विशिष्ट सामाजिक क्षेत्रों के लक्ष्यों को प्राप्त करने के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत से उत्पन्न होती है। साझा हित होने पर लोग आसानी से एकजुट हो जाते हैं। हमारे जैसे प्रतिनिधि लोकतंत्रों में, व्यक्ति उन राजनीतिक दलों के साथ जुड़ने के लिए स्वतंत्र हैं जिनकी विचारधाराएं उनके साथ मेल खाती हैं। हालाँकि, किसी पार्टी में शामिल होने से अक्सर नीति निर्माण पर सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है, क्योंकि पार्टियों के अपने एजेंडे और व्यापक आधार होते हैं, जिससे व्यक्तिगत या समूह हितों को समायोजित करना कठिन हो जाता है।

13.11 सार्वजनिक नीति पर हित समूह के प्रभाव

हित समूह सार्वजनिक नीति को आकार देने, सामाजिक ताकतों और नीति निर्माण प्रक्रियाओं के बीच एक पुल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हित समूहों की संरचना किसी समाज के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य को दर्शाती है। आधुनिक शहरी समाजों में, विविध हित समूहों का प्रसार हो रहा है, जिससे नीति निर्माण पर किसी एक समूह के एकाधिकार की संभावना कम हो गई है। इसके विपरीत, गरीब, ग्रामीण समाजों में कम समूह होते हैं, लेकिन ये समूह नीतिगत निर्णयों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं।

राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति चाहे जो भी हो - चाहे वह अधिनायकवादी हो, तानाशाही हो, या लोकतांत्रिक हो - हित समूह सार्वजनिक नीति को आकार देने में सहायक होते हैं। वे सीमित मूल्यों और उद्देश्यों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, नीति निर्माताओं को उनके दृष्टिकोण का समर्थन करने के लिए डेटा और जानकारी प्रदान करते हैं। भारत जैसे देशों में, जहां सरकार विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, सार्वजनिक नीति विकासात्मक लक्ष्यों और प्राथमिकताओं को बहुत प्रभावित करती है।

13.12 दबाव समूह एवं हित समूह मेंअंतर

सामान्यतः दबाव समूह एवं हित समूह को एक ही समझ लिया जाता है। वास्तव मेंदबाव समूह एवं हित समूह मेंएक बारीक रेखा है। यहाँ पर लाथम का कथन उल्लेखनीय है-‘‘ सभी हित समूह दबाव समूह नहीं होते है, किन्तु परीस्थितिवश वे दबाव समूह की श्रेणी मेंआ जाते है। ’’ ऐसा माना जाता है कि जब तक हित समूह सक्रिय नहं रहते वे हित समूह रहते है। परन्तु जैसे ही वे हित पूर्ति के लिये सक्रिय हो जाते है वो दबाव समूह मेंपरिवर्तित हो जाते है। इस संबंध मेंपी0 एन0 मसालदान का विश्लेषण बड़ा महत्वपूर्ण है-‘‘ समाज मेंव्यक्तियों के केवल सामान्य हित ही नहीं होते है , अपितु कुछ विशेष हित भी होते है।’’ साधारणतया व्यक्ति अपन विशेष व्यवसायिक एवं आर्थिक हित को

ज्यादा महत्व देता है। जिन व्यक्तियों के आर्थिक एवं व्यससायिक हित एक से होते है। वे एक हित गुट बन जाते है। कुछ हित गुट मजबूती से संगठित होते है। जब वह संगठित हो अपने विशेष हितों की पूर्ति के लिये सक्रिय हो शासन पर दबाव डालते है। तब वह दबाव समूहमेंपरिवर्तित हो जाते है।''

कार्टर और हर्ज ने दबाव समूह और हित समूह के अन्तर को बरीकी से स्पष्ट किया। उनके अनुसार -'' विभिन्न आर्थिक , व्यवसायिक ,धार्मिक नैतिक और अन्य समूहों से भरे आधुनिक बहुलवादी समाज के सम्मुख अनिवार्य रूप से एक बड़ी समस्या यही है कि विभिन्न हितों तथा शासन के बीच सामजस्य कैस रहे। एक स्वतन्त्र समाज के लिए हित समूह को स्वतन्त्र रूप से संगठित होने की आवश्यकता रहती है और जब वे समूह सरकारी तन्त्र और प्रक्रिया को प्रभावित करने का यत्न करते है और इस प्रकार कानूनों, नियमों, लाइसेन्स, तथा अन्य विधायी और प्रशासकीय कार्यों को अपने अनुकूल ढालने की चेष्टा करते है तो वे हित समूह दबाव समूह में बदल जाते है और हित समूह की गतिविधियों सरकार पर दबाव डालने की हो जाती है।''

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक समय मेंजागरूक समाज विभिन्न आर्थिक, सामाजिक,राजनीतिकतथा अन्य आवश्यकताओं के लिये एकजुट हो हित समूह बनाते है। जब वे इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वे सक्रिय होते है। और सरकार पर दबाव बनाने, प्रभावित करने का प्रयास करते है तब वह दबाव समूह में परिवर्तित हो जाते है। दबाव समूह एवं हित समूह मेंप्रमुख अन्तर निम्न है:-

1.हित समूह अपने हितों की वृद्धि के लिये आग्रह, निवेदन आदि साधनों का प्रयोग करते है जबकि दबाव समूह सदैव दबाव की नीति अपनाते है।

2.हित समूह अपने हितों की रक्षा के लिये शासन को प्रभावित या उन्हें पीछे ढकलने का प्रयास नहीं करते है। इसके विपरीत दबाव समूह राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने के लिये विशेष रूप से प्रयासरत रहते है।

3.हित समूह जागृत नागरिक समाज का हिस्सा होता है। ये हमेशा अपने हितों के लिये सजग रहते है। इनका राजनीति से किसी भी प्रकार का कोई संबंध नहीं रहता है। दबाव समूह सरकार पर दबाव बनाने के लिये हर माध्यम का प्रयोग करते हैं। वे राजनीति के साथ प्रत्यक्ष संबंध रखते है।

13.13 नागरिक समाज

भारत में नागरिक समाज को अक्सर "स्वैच्छिक क्षेत्र," "स्वैच्छिक संगठन," "गैर-सरकारी संगठन" (एनजीओ), और "गैर-लाभकारी संगठन" (एनपीओ) जैसे शब्दों से समझा जाता है, हालांकि इसमें एक व्यापक स्पेक्ट्रम शामिल है। 20वीं सदी के दौरान सामाजिक आंदोलनों, गैर सरकारी संगठनों और स्वैच्छिक संगठनों के उद्भव ने "नागरिक समाज" शब्द की संकल्पना में योगदान दिया। 1980 और 1990 के दशक के दौरान इसे लोकप्रिय चर्चा में प्रमुखता मिली। इसके दायरे में आने वाली व्यापक और विविध संस्थाओं को देखते हुए, भारत में नागरिक समाज को विभिन्न तरीकों से परिभाषित किया गया है। ऐसी ही एक परिभाषा, 2000 में पार्टिसिपेटरी रिसर्च इन एशिया (पीआरआईए) द्वारा

प्रस्तुत की गई, जो नागरिक समाज को "आम जनता की भलाई के लिए व्यक्तियों और समूहों के सामूहिक प्रयासों" के रूप में वर्णित करती है।

13.14 नागरिक समाज के विभिन्न प्रकार

भारत में नागरिक समाज में विभिन्न प्रकार के संगठन शामिल हैं, जिन्हें मोटे तौर पर निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है:
एनजीओ: ये पेशेवर संगठन हैं जो स्वतंत्र रूप से काम करते हैं, स्थानीय से लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर तक विभिन्न स्तरों पर विभिन्न समुदायों की सेवा करते हैं। वे स्वच्छता, महिला सशक्तिकरण और मानसिक स्वास्थ्य जैसे व्यापक मुद्दों को संबोधित करते हैं।
समुदाय-आधारित संगठन (सीबीओ): ये जमीनी स्तर के संगठन स्थानीय समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। परंपरागत रूप से ग्रामीण क्षेत्रों से जुड़े होने के बावजूद, वे निवासी कल्याण संघों और पड़ोस संगठनों के माध्यम से शहरी सेटिंग्स में भी काम करते हैं।

धार्मिक और आस्था-आधारित संगठन: साझा धार्मिक विश्वास वाले व्यक्तियों को शामिल करते हुए, इन संगठनों ने ऐतिहासिक रूप से शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल सहित सामाजिक कल्याण पर ध्यान केंद्रित किया है। उदाहरणों में रामकृष्ण मिशन और यूनानी चिकित्सा क्लिनिक शामिल हैं।
सदस्यता संघ: ये समूह विशिष्ट हितों को पूरा करते हैं और इन्हें सामुदायिक समूहों, पेशेवरों या सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। उदाहरण: व्यापार श्रमिक संघ, इंडियन मेडिकल एसोसिएशन जैसे पेशेवर निकाय और युवा क्लब शामिल हैं।
अनुसंधान संगठन और थिंक टैंक: ये संस्थान विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों पर अनुसंधान करते हैं। भारत में ऐसे संगठनों का एक समृद्ध इतिहास है, जो विदेश नीति से लेकर सार्वजनिक स्वास्थ्य तक के विषयों को संबोधित करते हैं।
सामाजिक आंदोलन: ये समूह सामान्य हितों और उद्देश्यों की वकालत करते हैं, जिनकी भारत के इतिहास में, विशेषकर स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका है। हाल के आंदोलनों ने भ्रष्टाचार-विरोध, धर्मनिरपेक्षता, नागरिक अधिकारों और महिला सुरक्षा पर ध्यान केंद्रित किया है।

युवा और छात्र संगठन: ये संस्थाएं युवाओं और छात्रों के कल्याण के लिए काम करती हैं, जिनका नेतृत्व और संचालन अक्सर उन्हीं के द्वारा किया जाता है। उदाहरणों में अखिल भारतीय युवा महासंघ, राष्ट्रीय कैडेट कोर और विभिन्न छात्र संघ शामिल हैं।

अभ्यास प्रश्नः-

(1) मजदूर संघों को कहा जाता है-

(1) लेब आर्गनाइजेशन (2) लेबर असेम्बली (3) ट्रेड यूनियन (4) कोई नहीं

(2) वर्तमन में दबाव समूह है-

(अ) लोकतन्त्र विरोधी (ब) लोकतत्र समर्थक एवं सहयोगी

(स) अलोकतान्त्रिक (द) सभी

(3) निम्न में से कौन अज्ञात साम्राज्य है-

(अ) राजनीतिक दल (ब) राजनेता (स) राजनीतिक संस्थायें (द) दबाव समूह

(4) दबाव समूह होते है-

(अ) राजनीतिक (ब) अराजनीतिक(स) दोनों (द) कोई नहीं

(5) निम्न में से कौन सा राजनीतिक दल का लक्षण नहीं है-

(अ) ऐच्छिक संगठन (ब) जनहित संगठन (स) औपचारिक संगठन

(द) निश्चत शक्ति

13.15 सारांश

निष्कर्षतः, दबाव समूह, हित समूह और नागरिक समाज सामूहिक रूप से दुनिया भर के समाजों में राजनीतिक परिदृश्य और नीति-निर्माण प्रक्रियाओं को आकार देने और प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

दबाव समूह, अपने केंद्रित एजेंडे और रणनीतिक पैरवी प्रयासों के साथ, विशिष्ट मुद्दों को संबोधित करने या विशेष हितों को आगे बढ़ाने के लिए सरकारों और नीति निर्माताओं पर दबाव डालते हैं। उनकी गतिविधियाँ जमीनी स्तर पर लामबंदी से लेकर परिष्कृत वकालत अभियानों तक होती हैं, जो अक्सर ठोस नीतिगत परिणाम देती हैं।

दूसरी ओर, हित समूह साझा लक्ष्यों और हितों के साथ समाज के व्यापक क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे कानूनी ढांचे के भीतर काम करते हैं और नीतिगत निर्णयों को प्रभावित करने के लिए पैरवी, वकालत और जनसंपर्क जैसी विभिन्न रणनीति अपनाते हैं। हित समूह नागरिकों और सरकार के बीच की दूरी को पाटते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि नीति निर्माण प्रक्रिया में विविध आवाज़ों को सुना और माना जाता है।

नागरिक समाज, संगठनों और आंदोलनों की एक विस्तृत श्रृंखला को शामिल करते हुए, सामाजिक परिवर्तन और जवाबदेही के लिए एक जीवंत और गतिशील शक्ति के रूप में कार्य करता है। जमीनी स्तर के सामुदायिक संगठनों से लेकर अंतर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठनों तक, नागरिक समाज के कलाकार मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए अथक प्रयास करते हैं। वे अधिक समावेशी और उत्तरदायी राजनीतिक व्यवस्था को बढ़ावा देते हुए नागरिक भागीदारी, वकालत और नागरिक सहभागिता के लिए स्थान प्रदान करते हैं।

संक्षेप में, दबाव समूह, हित समूह और नागरिक समाज सामूहिक रूप से लोकतांत्रिक समाजों की जीवंतता और बहुलवाद में योगदान करते हैं, सरकारों को जवाबदेह बनाते हैं, हाशिये पर पड़ी आवाज़ों को बढ़ाते हैं और आम भलाई के लिए सकारात्मक बदलाव लाते हैं। विश्व स्तर पर अधिक न्यायसंगत, लोकतांत्रिक और लचीले समाज के निर्माण के लिए उनकी निरंतर भागीदारी और वकालत आवश्यक है।

13.16 शब्दावली

समुदायात्मक दबाव समूह (**Associational Pressure Group**)- समुदाय के हितों के लिये सगंठित समूह इसमें आते है। जैसे व्यापारी संघ, किसान संघ, मजदूर संघ।

प्रदर्शनकारी दबाव समूह (**Anomic Pressure Group**)- ये वे दबाव समूह है जो माँगों को लेकर हिंसक, संविधान विरूद्ध कार्य करने से परहेज नहीं रखते। जैसे छात्र संगठन, नक्सल संगठन आदि।

संस्थागत दबाव समूहः- वे दबाव समूह जिनका संसगठित ढा़चा होता है तथा जो किसी संस्था से जुड़े होते है। जैसे - भारतीय पुलिस सेवा संघ, सैनिक कल्याण परिषद, भारतीय प्रशासनिक सेवा संघ।

जनहित याचिकाः- व्यापक जन कल्याण के निहितार्थ सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय मेंडाली गई याचिका को जनहित याचिका कहते है। यह किसी तीसरे पक्ष द्वारा प्रेषित होती है।

लॉबींगः- अपने हितों की पूर्ति के लिये कानून बनाने वालों से विधानमण्डल के सभाकक्ष मेंया अन्य स्थान पर मिलना हित साधना, कानून बनवाना लॉबींग कहलाता है।

13.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 स, 2. ब, 3. द, 4. ब, 5.स

13.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.मल्ल वी0पी0, सिंह अजय, राजनीति विज्ञान
2.गेना आर0वी0, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थायें
3.जैन आर0वी0, तुलनात्मक राजनीति
4.राय गांधी जी, तुलनात्मक राजनीति
5.जौहरी जे0सी0, जौहरी सीमा, आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त
6. https://www.adb.org/sites/default/files/publication/879896/civil-society-brief-india.pdf

13.19 सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्रीः-

1.सोडारो माइकल, कम्पेरटिव पालिटिक्स
2.गाबा, ओ0पी0, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा
3.संधू ज्ञान सिंह, राजनीति सिद्धान्त
4.खन्ना वी0एन0, आधुनिक सरकारें

13.20 निबन्धात्मक प्रश्नः-

1. दबाव समूह से क्या समझते है? इनकी प्रमुख विशेषतायें बताइये।
2. दबाव समूह को परिभाषा दीजिये तथा आधुनिक शासन व्यवस्था मेंमहत्व स्पष्ट कीजिये।
3.दबाव समूह के विभिन्न वर्गीकरणों स्पष्ट करते हुए वर्तमान राजनीतिक व्यवस्थाओं में उनकी भूमिका स्पष्ट कीजिये।
4. राजनीतिक परिदृश्य को आकार देने और नीति-निर्माण प्रक्रियाओं को प्रभावित करने में दबाव समूहों, हित समूहों और नागरिक समाज की भूमिका की व्याख्या कीजिये।
5. हित समूहों को परिभाषित करें और लोकतांत्रिक समाजों में उनकी भूमिका पर चर्चा कीजिये।

इकाई 14 जनमत

इकाई संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 जनमत क्या है?

14.4 जनमत का अर्थ और परिभाषा

14.5 जनमत: विकास और प्रभाव

14.6 राजनीति में जनमत की भूमिका

14.7 जनमत और सरकार

14.8 विश्व जनमत

14.9 जनमत को आकार देने वाले प्रभावशाली कारक

14.10 जनता की राय को आकार देने वाली प्रभावशाली हस्तियाँ और घटनाएं

14.11 सारांश

14.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.13 शब्दावली

14.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.15 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

जनता की राय लोगों की सामूहिक आवाज़ के रूप में कार्य करती है, जो सरकार और राजनीति से संबंधित मामलों पर उनकी प्राथमिकताओं, मूल्यों और विश्वासों को दर्शाती है। विवादास्पद नीतिगत बहसों से लेकर चुनावी प्रतियोगिताओं तक, जनता की राय राजनीतिक प्रवचन और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं की दिशा तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भविष्य के नेताओं और नीति

निर्माताओं के रूप में, आपके लिए जनमत की जटिलताओं और लोकतांत्रिक समाजों में शासन के लिए इसके निहितार्थ को समझना अनिवार्य है।

इस इकाई की यात्रा के दौरान, हम व्यक्तिगत राय की भूमिका से लेकर संगठित समूहों, सरकारी नेताओं और मीडिया अभिजात वर्ग के प्रभाव तक, जनमत पर विभिन्न दृष्टिकोणों की जांच करेंगे। हम जनमत को मापने के लिए उपयोग किए जाने वाले तरीकों, जैसे कि चुनाव और सर्वेक्षण, का भी पता लगाएंगे, और विश्लेषण करेंगे कि राजनेता, हित समूह और मीडिया अपने एजेंडे को आगे बढ़ाने और सार्वजनिक चर्चा को आकार देने के लिए इन उपकरणों का लाभ कैसे उठाते हैं।

जनमत की गहरी समझ प्राप्त करके, आप समकालीन राजनीति की जटिलताओं से निपटने, नीति प्रस्तावों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने और विविध निर्वाचन क्षेत्रों के साथ प्रभावी ढंग से जुड़ने के लिए बेहतर ढंग से सुसज्जित होंगे। तो, आइए जनमत के इस ज्ञानवर्धक अन्वेषण की शुरुआत करें, जहां आप उन अंतर्दृष्टियों को उजागर करेंगे जो शासन और लोकतंत्र के बारे में आपकी समझ को समृद्ध करेंगी। इस इकाई में, हम जनमत की बहुमुखी प्रकृति, नीति परिणामों को आकार देने में इसके महत्व और इसके गठन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का पता लगाएंगे।

14.2 उद्देश्य

1. जनमत का अर्थ और परिभाषा समझ पाएंगे।
2. जनमत की विकास यात्रा को समझ पायेंगें।
3. जनमत की राजनीति में भूमिका को समझ पायेंगें।

14.3 जनमत क्या है?

जनमत मूल रूप से राजनीतिक मामलों से संबंधित असंख्य नागरिकों की सामूहिक आवाज है, जिसमें मुद्दों, नेताओं, संस्थानों और घटनाओं पर उनके विचार और हित शामिल हैं। ये विचार व्यक्तियों की प्राथमिकताओं और विश्वासों से आकार लेते हैं, जो यह दर्शाते हैं कि वे दुनिया के बारे में क्या चाहते हैं और क्या समझते हैं। प्राथमिकताएं, इच्छाओं को प्रतिबिंबित करती हैं, और विश्वास, जो समझ का संकेत देते हैं, अक्सर प्रस्तुत विकल्पों के जवाब में अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त किए जाते हैं। जनता की राय राजनीतिक विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला तक फैली हुई है, जिसमें सरकारी आंकड़ों, नीतियों, वर्तमान परिस्थितियों और पक्षपात और विचारधारा जैसे व्यक्तिगत राजनीतिक रुझानों का मूल्यांकन शामिल है।

14.4 जनमत का अर्थ और परिभाषा:

जनमत एक अवधारणा है जिसमें विद्वानों के बीच एक एकल परिभाषा का अभाव है, क्योंकि यह किसी के दृष्टिकोण के आधार पर भिन्न होता है कि कौन "जनता" का गठन करता है और किसकी राय सबसे अधिक महत्व रखती है - व्यक्ति, समूह या अभिजात वर्ग।

सबसे सरल रूप में, जनता में ऐसे व्यक्ति शामिल होते हैं जो सरकार और समाज से जुड़े होते हैं और उन विशिष्ट मुद्दों का सामना करते हैं जो सार्वजनिक नीतियों का आधार बनते हैं। हालाँकि, इन मुद्दों पर हर किसी का जुड़ाव समान स्तर का नहीं है। कुछ लोग चौकस जनता से संबंधित हैं, जो सक्रिय रूप से सरकार और राजनीति पर नज़र रखते हैं, जबकि अन्य मुद्दे वाली जनता के सदस्य हैं, जो विशिष्ट नीतिगत बहसों पर ध्यान केंद्रित करते हैं जो व्यक्तिगत रूप से उनके साथ प्रतिध्वनित होती हैं। उदाहरण के लिए, स्वास्थ्य देखभाल

सुधार की वकालत करने वाले किसी व्यक्ति का कोई प्रियजन किसी चिकित्सा समस्या से जूझ रहा हो सकता है। इसके विपरीत, कुछ व्यक्ति राजनीति में बहुत कम रुचि दिखाते हैं और उनकी चिंताओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता है।

एक राय रुख को संदर्भित करती है - अनुकूल, प्रतिकूल, तटस्थ, या अनिर्णीत - जो व्यक्ति किसी विशेष मुद्दे, नीति, कार्रवाई या नेता के संबंध में अपनाते हैं। राय वस्तुनिष्ठ तथ्यों के बजाय भावनाओं की व्यक्तिपरक अभिव्यक्ति हैं। सर्वेक्षणकर्ता अक्सर उत्तरदाताओं पर इस बात पर जोर देते हैं कि कोई सही या गलत उत्तर नहीं है, जो व्यक्तिगत विचारों के महत्व को रेखांकित करता है। राय दृष्टिकोण से प्रभावित होती है, जो लोगों, समूहों या संस्थानों के प्रति लगातार झुकाव है। उदाहरण के लिए, नस्लीय समानता में दृढ़ विश्वास रखने वाले लोग आवास और रोजगार में भेदभाव से निपटने के उद्देश्य से नीतियों का समर्थन करने की संभावना रखते हैं।

जनमत निर्माण को समझना

भारतीय अपनी राजनीतिक राय कहाँ बनाते हैं, और इन विचारों को क्या प्रभावित करता है? स्व हित राजनीतिक दृष्टिकोण को कैसे आकार देता है? भारत में राजनीतिक समाजीकरण के प्रमुख स्रोत क्या हैं और वे अलग-अलग राय में कैसे योगदान करते हैं?

भारत में राजनीतिक राय विभिन्न स्रोतों से आती है, जिनमें आर्थिक चिंताओं में निहित स्व-हित और व्यक्तियों की भौगोलिक स्थिति, सामाजिक स्थिति और व्यक्तिगत विशेषताओं से संबंधित कानून शामिल हैं। उदाहरण के लिए, ग्रामीण भारत में एक किसान कृषि से संबंधित नीतियों को प्राथमिकता दे सकता है, जबकि शहरी क्षेत्र का निवासी बुनियादी ढांचे के विकास पर ध्यान केंद्रित कर सकता है। भारतीय समाज में गहराई से अंतर्निहित मूल्य भी राजनीतिक दृष्टिकोण को आकार देने, स्थापित सामुदायिक मानदंडों और सांस्कृतिक मान्यताओं को प्रतिबिंबित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। धर्म, जाति और क्षेत्रीय संबद्धता जैसी पहचानें भी राजनीतिक प्राथमिकताओं को प्रभावित करती हैं, हितों और मूल्यों से परे मौलिक मनोवैज्ञानिक जुड़ाव का दोहन करती हैं।

सामाजिक समूह, दोनों अनैच्छिक (जैसे जाति और धर्म) और स्वैच्छिक (जैसे राजनीतिक दल और शैक्षिक समूह), भारत में राजनीतिक राय भी बनाते हैं। उदाहरण के लिए, आरक्षण नीतियों जैसे मुद्दों पर राय जाति संबद्धता के आधार पर भिन्न हो सकती है।

14.5 जनमत: विकास और प्रभाव

जनमत से तात्पर्य किसी विशिष्ट विषय या मुद्दे के संबंध में आबादी के एक महत्वपूर्ण हिस्से द्वारा रखे गए समग्र दृष्टिकोण या विश्वास से है। इस अवधारणा को अमेरिकी राजनीतिक वैज्ञानिक वी.ओ. की के काम के माध्यम से राजनीति में प्रमुखता मिली। 1961 में की, जिन्होंने इसे उन विचारों के रूप में परिभाषित करके इसके महत्व पर प्रकाश डाला जिन पर सरकारें विचार करना महत्वपूर्ण समझती हैं। समय के साथ, सांख्यिकीय और जनसांख्यिकीय विश्लेषण में प्रगति, विशेष रूप से 1990 के दशक में कंप्यूटर प्रौद्योगिकी की सहायता से, जनता की राय को और अधिक सूक्ष्मता से समझने की अनुमति मिली। यह स्पष्ट हो गया कि जनता की राय पूरी आबादी के लिए एक समान नहीं है, लेकिन विभिन्न जनसांख्यिकीय या जातीय समूहों के बीच भिन्न हो सकती है।

यद्यपि यह अक्सर राजनीतिक निर्णयों और चुनावों पर इसके प्रभाव से जुड़ा होता है, जनता की राय फैशन, लोकप्रिय संस्कृति, कला, विज्ञापन और उपभोक्ता व्यवहार जैसे कई अन्य क्षेत्रों तक अपना प्रभाव बढ़ाती है। संक्षेप में, यह केवल राजनीतिक क्षेत्रों से परे सामाजिक रुझानों और प्राथमिकताओं को आकार देता है, समाज के विभिन्न पहलुओं की दिशा को आकार देने और व्यक्तियों और संस्थानों द्वारा लिए गए निर्णयों को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जनमत का विकास: प्राचीन काल से आधुनिक सिद्धांतों तक

हालाँकि "जनमत" शब्द 18वीं शताब्दी तक सामने नहीं आया था, लेकिन इसके प्रभाव की गूँज प्राचीन इतिहास में देखी जा सकती है। प्राचीन बेबीलोनिया और असीरिया जैसे समाजों में, लोकप्रिय दृष्टिकोण का प्रभाव स्पष्ट था, प्राचीन इज़राइल और सामरिया जैसे स्थानों में नेता सक्रिय रूप से सार्वजनिक भावनाओं को आकार देने की कोशिश कर रहे थे।

मध्य युग के दौरान, जब अधिकांश लोग महामारी और अकाल के बीच जीवित रहने में व्यस्त थे, तब भी जनमत जैसे तत्व मौजूद थे। 1191 में, अंग्रेजी राजनेता विलियम लॉन्गचैम्प, जो एली के बिशप का पद भी संभाल चुके थे, को अपने राजनीतिक विरोधियों की आलोचना का सामना करना पड़ा। उन्होंने उन पर अपनी क्षमताओं का गुणगान करने के लिए योद्धागायक का इस हद तक इस्तेमाल करने का आरोप लगाया कि जनता उन्हें अद्वितीय मानने लगी। अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए गायकों को नियुक्त करने की इस रणनीति के कारण लोगों के बीच व्यापक बातचीत हुई, जिससे लॉन्गचैम्प की स्थिति बेजोड़ स्तर तक बढ़ गई।

पुनर्जागरण की शुरुआत तक, आबादी के बीच बढ़ती शिक्षा के साथ-साथ सार्वजनिक मामलों में बढ़ती रुचि उभरी। इटली में, मानवतावाद के उदय ने ऐसे लेखकों के उद्भव को बढ़ावा दिया जिन्होंने शासकों की महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल किया। निकोलो मैकियावेली जैसे राजनीतिक विचारकों ने नेताओं के लोकप्रिय भावनाओं को समझने और प्रतिक्रिया देने के महत्व पर जोर दिया।

17वीं और 18वीं शताब्दी में सूचना प्रसारित करने के अधिक परिष्कृत साधनों की शुरुआत हुई, विशेष रूप से समाचार पत्रों के आगमन के साथ। जनमत की शक्ति अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रांतियों जैसी घटनाओं में स्पष्ट रूप से स्पष्ट हो गई, जहां लोगों की सामूहिक इच्छा ने राजशाही जैसी मजबूत संस्थाओं को चुनौती दी। जैसे ही 19वीं शताब्दी में सामाजिक सिद्धांत विकसित हुए, कुछ विद्वानों ने तर्क दिया कि जनता की राय मुख्य रूप से अभिजात वर्ग के विचारों को प्रतिबिंबित करती है। यह दृष्टिकोण "सार्वजनिक शोर" की धारणा के विपरीत है, जो भावुक लेकिन बेख़बर भावनाओं की विशेषता है।

20वीं सदी में, जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल जैसे विद्वानों ने जनता की राय की जटिलताओं पर विचार किया, और इसके सत्य और झूठ के मिश्रण को पहचाना। शेरी डेवेरेक्स फर्ग्यूसन ने 20वीं सदी के सिद्धांतों को तीन व्यापक चरणों में वर्गीकृत किया: लोकलुभावन (Populist), जो जनता की राय को नेताओं और लोगों के बीच संचार के एक चैनल के रूप में देखता है; अभिजात्य वर्ग (Elitist), जो शक्तिशाली गुटों द्वारा जनमत की हेरफेर और व्याख्या को रेखांकित करता है; और आलोचनात्मक (Critical), जो बताता है कि जनमत को अक्सर सत्ता में बैठे लोगों द्वारा नियंत्रित किया जाता है, संभवतः अल्पसंख्यक आवाज़ों को छोड़कर।

संक्षेप में, जनमत का अध्ययन अपनी प्राचीन जड़ों से विकसित होकर आधुनिक समाज में इसकी जटिलताओं और निहितार्थों से जूझने वाले परिष्कृत सिद्धांतों को शामिल करता है।

14.6 राजनीति में जनमत की भूमिका

किसी भी लोकतांत्रिक समाज में नागरिकों का विभिन्न मुद्दों पर राय बनाना मौलिक है। अनिवार्य रूप से, कोई भी चीज़ जिसके लिए सरकारी नीति निर्माताओं से निर्णय की आवश्यकता होती है - चाहे वह कार्यकारी या विधायी स्तर पर हो - जनता की राय का विषय बन सकती है। राजनीति के क्षेत्र में, पक्षपाती मीडिया आउटलेट, जमीनी स्तर के आंदोलन या यहां तक कि सरकारी संस्थाएं जैसे बाहरी कारक जनता की राय को प्रभावित या सुदृढ़ कर सकते हैं। एक दार्शनिक और अर्थशास्त्री **जेरेमी बेंथम** ने टिप्पणी की थी कि कानून

निर्माताओं के लिए सबसे कठिन कार्यों में से एक है जनता की राय को अपने जनादेश के साथ जोड़ना और जरूरत पड़ने पर इसे सही करना।

राजशाही से लोकतंत्र में परिवर्तन के दौरान भी, जनमत की शक्ति के बारे में चिंताएँ व्यक्त की गईं। अपने 1835 के काम, **"अमेरिका में लोकतंत्र"** में, **एलेक्सिस डी टोकेविले** ने जनता द्वारा अत्यधिक प्रभावित सरकार के जोखिमों के बारे में चेतावनी दी, जिसे उन्होंने "बहुमत का अत्याचार" कहा। इसी तरह, 1957 में, सीनेटर **जॉन एफ कैनेडी** ने जनमत के धीमे, स्वार्थी या अदूरदर्शी होने के खतरों पर प्रकाश डाला। फिर भी, उन्होंने जनता की राय पर विचार करने के महत्व पर जोर दिया, खासकर महत्वपूर्ण निर्णय लेने में जिन्हें व्यापक समर्थन की आवश्यकता होती है।

राजनीतिक वैज्ञानिकों ने देखा है कि विशिष्ट नीति विवरणों को निर्देशित करने के बजाय, जनता की राय आम तौर पर उन मापदंडों को निर्धारित करती है जिनके भीतर नीति निर्माता काम करते हैं। नतीजतन, निर्वाचित अधिकारी अक्सर अलोकप्रिय निर्णयों से बचते हुए जनता की मांगों को पूरा करने का लक्ष्य रखते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में, 1964 के नागरिक अधिकार अधिनियम और 1965 के मतदान अधिकार अधिनियम जैसे महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार व्यापक जनमत से काफी प्रभावित थे।

राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर रॉबर्ट वाई. शापिरो ने अपनी पुस्तक "पॉलिटिशियंस डोंट पैंडर" में तर्क दिया है कि राजनेता अक्सर अपने मतदाताओं की इच्छाओं के साथ जुड़ने के बजाय पूर्व निर्धारित कार्यों को बढ़ावा देने के लिए जनमत अनुसंधान में हेरफेर करते हैं। प्रत्यक्ष लोकतंत्र के विपरीत, प्रतिनिधि लोकतंत्र, विशिष्ट सरकारी निर्णयों पर जनता की राय के प्रभाव को रोकता है, क्योंकि जनता की पसंद आम तौर पर निर्वाचित अधिकारियों को मंजूरी देने या अस्वीकार करने तक ही सीमित होती है।

स्थानीय स्तर पर, राज्य या राष्ट्रीय स्तर की तुलना में सरकारी नीति में जनता की राय अधिक महत्व रखती है। इसका आंशिक कारण यह है कि बुनियादी ढांचे, शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल जैसे स्थानीय मुद्दे कम जटिल हैं, और मतदाताओं और स्थानीय नेताओं के बीच अक्सर नौकरशाही कम होती है। इसलिए, स्थानीय स्तर पर नीतिगत निर्णयों को आकार देने पर जनता की राय का अधिक सीधा प्रभाव पड़ता है।

14.7 जनमत और सरकार :

एक लोकतांत्रिक समाज में, शासन और नीतिगत निर्णयों को आकार देने में जनता की राय महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नागरिकों को नियमित रूप से चुनाव, जनमत संग्रह और भागीदारी के अन्य तरीकों के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करने के लिए कहा जाता है। सरकार और जनता के बीच यह गतिशील संवाद लोकतंत्र के कामकाज का अभिन्न अंग है।

जेरेमी बेंथम, एक अंग्रेजी दार्शनिक और अर्थशास्त्री, ने जनमत के प्रबंधन में विधायकों के लिए चुनौती को पहचाना, सरकारी आदेशों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए इसे समझने और प्रभावित करने की आवश्यकता पर जोर दिया। जबकि कुछ शुरुआती विद्वानों ने जनमत के संभावित खतरों, विशेष रूप से बहुसंख्यक अत्याचार के जोखिम के बारे में चिंता व्यक्त की, यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि राजनेताओं के लिए सार्वजनिक भावनाओं की अनदेखी करना एक व्यवहार्य विकल्प नहीं है।

राजनीतिक वैज्ञानिकों ने लोकतांत्रिक शासन में जनमत की भूमिका का विश्लेषण किया है और पाया है कि हालांकि यह सरकारी नीतियों की विशिष्टताओं को निर्धारित नहीं कर सकता है, लेकिन यह सीमाएं स्थापित करता है जिसके भीतर नीति निर्माताओं को काम करना चाहिए। सार्वजनिक अधिकारियों का लक्ष्य आम तौर पर व्यापक सार्वजनिक मांगों को संबोधित करना या उन पर कम से कम विचार करना होता है, जबकि वे उन निर्णयों से बचते हैं जिनके बारे में उनका मानना है कि वे मोटे तौर पर अलोकप्रिय होंगे।

हालाँकि, जनता की राय और सरकारी कार्यों के बीच संबंध जटिल है। आलोचक अक्सर राजनेताओं पर जनता की भावनाओं को बढ़ावा देने या अपने फायदे के लिए उसमें हेरफेर करने का आरोप लगाते हैं। फिर भी, शोध से पता चलता है कि राजनेता अपनी नीतियों को केवल जनता की राय पर आधारित नहीं कर सकते हैं, वे रणनीतिक तरीकों से इसका जवाब देते हैं, अक्सर अपने एजेंडे को वास्तविक रूप देने के बजाय अपने संदेश को परिष्कृत करने के लिए सार्वजनिक राय अनुसंधान का उपयोग करते हैं।

इसके अलावा, जनता की राय का प्रभाव हमेशा तत्काल या स्पष्ट नहीं होता है। अव्यक्त जनमत - वर्तमान सरकारी कार्यों के प्रति जनता की संभावित भविष्य की प्रतिक्रिया - राजनीतिक परिणामों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकती है। जो नेता गुप्त जनमत की उपेक्षा करते हैं, वे चुनावी परिणामों का जोखिम उठाते हैं, जबकि जो लोग इस पर विचार करते हैं, वे दीर्घकालिक लाभ की उम्मीद के साथ अलोकप्रिय कार्य करने के इच्छुक हो सकते हैं।

स्थानीय स्तर पर, सरकार के उच्च स्तर की तुलना में नीतिगत निर्णयों पर जनता की राय का अधिक प्रत्यक्ष और शक्तिशाली प्रभाव पड़ता है। यह आंशिक रूप से इसलिए है क्योंकि स्थानीय मुद्दे अक्सर अधिक मूर्त और कम नौकरशाही रूप से जटिल होते हैं, और इसलिए भी क्योंकि नीति निर्माताओं और मतदाताओं के बीच कम बाधाएं होती हैं।

संक्षेप में, जनता की राय लोकतांत्रिक शासन में एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में कार्य करती है, नीतिगत निर्णयों के लिए मानदंड निर्धारित करती है और सरकार के विभिन्न स्तरों पर राजनीतिक परिणामों को प्रभावित करती है। हालाँकि इसके प्रभाव को सूक्ष्मता से देखा जा सकता है और कभी-कभी इसका विरोध भी किया जा सकता है, फिर भी यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया का एक अनिवार्य पहलू बना हुआ है।

14.8 विश्व जनमत:

जैसे-जैसे 20वीं शताब्दी समाप्त होने लगी, वैश्विक संचार, व्यापार और परिवहन में प्रगति ने एक नवीन अवधारणा के बारे में चर्चा को प्रेरित किया: विश्व जनमत, या "विश्व जनमत।" इस विचार ने उन विद्वानों के बीच लोकप्रियता हासिल की जिन्होंने वैश्विक परिप्रेक्ष्य, दृष्टिकोण और उपभोक्ता व्यवहार में समानताएं देखीं।

एक अमेरिकी राजनीतिक वैज्ञानिक, फ्रैंक रुसियानो ने विश्व राय को वैश्विक पर्यवेक्षकों के नैतिक निर्णय के रूप में परिभाषित किया है, जिस पर राष्ट्रों को विचार करना चाहिए, ताकि उन्हें अंतरराष्ट्रीय अलगाव का सामना न करना पड़े। उन्होंने सुझाव दिया कि विश्व की राय तब उभरती है जब प्रमुख मुद्दों, समय के साथ उनके सापेक्ष महत्व और जिस अवधि के दौरान वे महत्वपूर्ण होते हैं, उसके बारे में दुनिया भर के जानकार व्यक्तियों के बीच व्यापक सहमति होती है। रूसियानो ने इस बात पर जोर दिया कि विश्व जनमत में किसी देश की प्रतिष्ठा महत्वपूर्ण है, जर्मनी के पुनर्मिलन के बाद और शीत युद्ध के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे उदाहरणों का हवाला देते हुए, जहां राष्ट्रों ने अपनी स्थिति को बनाए रखने या बढ़ाने के लिए अपने कार्यों को समायोजित किया।

हालाँकि, कुछ विद्वान विश्व जनमत की अवधारणा की आलोचना करते हैं, इसकी पद्धतिगत वैधता पर सवाल उठाते हैं। वे इस बात पर चिंता जताते हैं कि गरीब या सत्तावादी राज्यों सहित विविध आबादी के विचारों का सटीक प्रतिनिधित्व और तुलना कैसे की जा सकती है। पद्धतिगत चुनौतियाँ बहुत अधिक हैं, विशेष रूप से सभी देशों में मानकीकृत मतदान की अनुपस्थिति को देखते हुए। इसके अतिरिक्त, मतदान अक्सर शहरी अभिजात वर्ग की राय को दर्शाता है, ग्रामीण आबादी की उपेक्षा करता है और प्रतिनिधित्व को कम करता है।

इन चुनौतियों के बावजूद, रुसियानो ने प्रथम फारस की खाड़ी युद्ध जैसी घटनाओं की ओर इशारा किया, जहां विश्व जनमत ने परिणामों को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कुवैत की रक्षा के लिए व्यापक समर्थन ने इराक को अलग-थलग कर दिया और अमेरिकी नेतृत्व वाले गठबंधन की त्वरित जीत में मदद की। बहरहाल, रुसियानो ने स्वीकार किया कि रणनीतिक हितों और राजनयिक विचारों जैसे अन्य कारकों के साथ-साथ विश्व राय विदेश नीति निर्णयों को प्रभावित करने वाला सिर्फ एक कारक है।

संक्षेप में, जबकि विश्व राय अंतरराष्ट्रीय कार्यों और धारणाओं को आकार देने के अवसर प्रस्तुत करती है, इसकी जटिलताएं और सीमाएं बताती हैं कि इसे वैश्विक मामलों में एकमात्र निर्धारक के बजाय एक योगदान कारक के रूप में देखा जाना चाहिए।

14.9 जनमत को आकार देने वाले प्रभावशाली कारक

जनमत आंतरिक और बाह्य दोनों तरह के विभिन्न प्रभावों का एक जटिल परस्पर क्रिया है, जिससे किसी भी मुद्दे पर इसके प्रक्षेपवक्र की भविष्यवाणी करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है। हालाँकि कुछ राय सीधे तौर पर युद्ध या आर्थिक मंदी जैसी विशिष्ट घटनाओं से जुड़ी हुई लग सकती हैं, अन्य कम स्पष्ट कारकों से आकार लेती हैं।

सामाजिक वातावरण

सामाजिक वातावरण व्यक्तिगत राय पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है, जिसमें परिवार, दोस्त, कार्यस्थल की गतिशीलता, धार्मिक जुड़ाव और शैक्षिक सेटिंग्स जैसे कारक शामिल होते हैं। शोध से संकेत मिलता है कि लोग अक्सर अपने सामाजिक दायरे में प्रचलित दृष्टिकोण और मान्यताओं को अपनाते हैं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति जो उदारवादी के रूप में पहचान रखता है लेकिन रूढ़िवादी प्रभावों से घिरा हुआ है, वह धीरे-धीरे रूढ़िवादी विचारों की ओर झुक सकता है, यहां तक कि अपनी मतदान प्राथमिकताओं को भी तदनुसार बदल सकता है।

मीडिया

मीडिया मौजूदा सार्वजनिक भावनाओं के एक शक्तिशाली प्रवर्धक के रूप में कार्य करता है। समाचार पत्रों, टेलीविजन, रेडियो, ऑनलाइन समाचार आउटलेट और सोशल मीडिया प्लेटफार्मों के माध्यम से, मीडिया प्रचलित विचारों को सुदृढ़ करता है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में, तेजी से पक्षपातपूर्ण समाचार कवरेज दर्शकों के विशिष्ट वैचारिक वर्गों को पूरा करता है, जो उनके पहले से मौजूद राजनीतिक झुकाव को मजबूत करता है। इसके अलावा, मीडिया कवरेज पहले से अनिर्णीत मतदाताओं या किसी विशेष उम्मीदवार की ओर झुकाव रखने वाले मतदाताओं को एकजुट कर सकता है, जिससे उनके मतदान व्यवहार पर असर पड़ सकता है। हालाँकि, इसका एक नकारात्मक पक्ष भी है, जैसा कि सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म के माध्यम से गलत सूचना के प्रसार में देखा गया है।

हित समूह

हित समूह सक्रिय रूप से अपने एजेंडे से संबंधित मुद्दों पर जनता की राय बनाने की कोशिश करते हैं। ये समूह, चाहे राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक या सामाजिक मुद्दों पर केंद्रित हों, जनता की भावनाओं को प्रभावित करने के लिए मास मीडिया, सोशल मीडिया और वर्ड-ऑफ-माउथ जैसे विभिन्न चैनलों का उपयोग करते हैं। कुछ अच्छी तरह से वित्त पोषित हित समूह अपने उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए विज्ञापन और जनसंपर्क फर्मों को भी नियुक्त करते हैं। विशेष रूप से उल्लेखनीय यह है कि हित समूहों द्वारा अपने मुद्दों के लिए समर्थन के स्तर को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने के लिए सोशल मीडिया "स्ट्रॉ-पोल" का लाभ उठाया जाता है, और इस प्रकार सार्वजनिक धारणा में हेरफेर किया जाता है।

कुल मिलाकर, जनमत एक गतिशील घटना है, जो कई प्रभावों से आकार लेती है, जिसमें सामाजिक संपर्क, मीडिया कथाएँ और हित समूहों के ठोस प्रयास शामिल हैं, जो किसी दिए गए मुद्दे पर समाज की सामूहिक मानसिकता में योगदान करते हैं।

14.10 जनता की राय को आकार देने वाली प्रभावशाली हस्तियाँ और घटनाएँ

जनमत नेता, अक्सर सार्वजनिक जीवन में प्रमुख व्यक्ति, जनता की भावनाओं पर काफी प्रभाव डालते हैं। राजनीतिक नेता, विशेष रूप से, मीडिया चैनलों के माध्यम से कम-ज्ञात मुद्दों पर ध्यान आकर्षित करके उन्हें राष्ट्रीय सुर्खियों में लाने की शक्ति रखते हैं। इन जनमत नेताओं द्वारा गढ़े गए यादगार नारे विभिन्न मुद्दों पर सार्वजनिक सहमति जुटा सकते हैं। उदाहरण के लिए, प्रथम विश्व युद्ध के दौरान वुडरो विल्सन की घोषणा कि मित्र राष्ट्रों का लक्ष्य "दुनिया को लोकतंत्र के लिए सुरक्षित बनाना" था, व्यापक रूप से गूंज उठा, जबकि डोनाल्ड ट्रम्प के "मेक अमेरिका ग्रेट अगेन" नारे ने 2016 के राष्ट्रपति अभियान के दौरान उनके समर्थकों को उत्साहित किया।

इसी तरह भारतीय सन्दर्भ में भारतीय नेताओं द्वारा गढ़े गए यादगार नारे विभिन्न मुद्दों पर सार्वजनिक सहमति पैदा कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, लाल बहादुर शास्त्री द्वारा गढ़े गए "जय जवान, जय किसान" और इंदिरा गांधी द्वारा "गरीबी हटाओ" जैसे नारे व्यापक रूप से गूंजे, जिन्होंने राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों पर सार्वजनिक चर्चा को आकार दिया।

प्राकृतिक आपदाएँ या त्रासदियाँ जैसी घटनाएँ भी भारत में जनमत को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भोपाल गैस त्रासदी, 2001 का गुजरात भूकंप और 2018 की केरल बाढ़ जैसी घटनाओं ने सुरक्षा और आपदा प्रबंधन के लिए सार्वजनिक जागरूकता और चिंता को बढ़ा दिया है।

इसी प्रकार, बाबरी मस्जिद विध्वंस और 2002 के गुजरात दंगों जैसी घटनाओं ने सांप्रदायिक संबंधों और धार्मिक भावनाओं पर गहरा प्रभाव डाला है, जिससे सांप्रदायिक सद्भाव और धार्मिक सहिष्णुता के प्रति जनता का रुख प्रभावित हुआ है।

फिर भी, जनता की राय में कुछ बदलावों की व्याख्या करना अधिक कठिन है। 1960 के दशक के बाद से, लिंग और लिंग, धर्म, परिवार की गतिशीलता, नस्ल संबंध, सामाजिक कल्याण, आय असमानता और अर्थव्यवस्था के प्रति दृष्टिकोण में विश्व स्तर पर महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। हालाँकि, इन बदलावों के लिए सटीक उत्प्रेरक को इंगित करना चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि वे अक्सर विशिष्ट घटनाओं या समूहों के बजाय जटिल सामाजिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप होते हैं।

अभ्यास प्रश्न:

1. जनमत को आकार देने में कौन सा कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है?

अ) सरकारी नीतियां ब) मीडिया का प्रभाव स) व्यक्तिगत मान्यताएँ द) आर्थिक कारक

2. जनमत सर्वेक्षण के साथ आम तौर पर कौन सी चुनौती जुड़ी होती है?

अ) पक्षपातपूर्ण नमूनाकरण ब) प्रतिक्रिया दर का अभाव स) सीमित डेटा व्याख्या द) नैतिक चिंताएँ

14.11 सारांश:

निष्कर्षत:, जनमत लोकतांत्रिक समाजों की आधारशिला के रूप में खड़ा है, नीतियों को आकार देता है, निर्णय लेने की प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है और नेताओं को जवाबदेह बनाता है। इसकी गतिशील प्रकृति विविध आबादी के उभरते दृष्टिकोण और दृष्टिकोण को

दर्शाती है, जो मीडिया, व्यक्तिगत अनुभव और सामाजिक संपर्क जैसे असंख्य कारकों से प्रभावित होती है। हालाँकि सार्वजनिक भावनाओं को सटीक रूप से मापने और व्याख्या करने में चुनौतियाँ मौजूद हैं, लेकिन शासन और सामाजिक विमर्श पर इसके प्रभाव को कम करके नहीं आंका जा सकता है। चूँकि वैश्वीकरण संचार और सूचना प्रसार को नया आकार दे रहा है, इसलिए आधुनिक युग में समावेशी और प्रभावी शासन को बढ़ावा देने के लिए जनमत को समझना और उस पर प्रतिक्रिया देना सर्वोपरि है।

14.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

1. ब 2. अ

14.13 शब्दावली:

1. राजनीतिक दृष्टिकोण: राजनीतिक मामलों, पार्टियों, उम्मीदवारों और विचारधाराओं के प्रति व्यक्तियों की राय और प्राथमिकताएँ।
2. अभिजात वर्ग की राय: समाज के भीतर प्रभावशाली व्यक्तियों या समूहों के दृष्टिकोण और दृष्टिकोण।
3. जनमत निर्माण: वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न कारकों से प्रभावित होकर अपने दृष्टिकोण और विश्वास विकसित करते हैं।

14.14 सन्दर्भ सूची:

- Key, V. O. *"Public Opinion and American Democracy."* Alfred A Knopf, Inc., 1961, ASIN: B0007GQCFE.
- Mackinnon, William Alexander (1849). *"History of Civilisation and Public Opinion."* HardPress Publishing, 2021, ISBN-10: 1290718431.
- Hegel, Georg Wilhelm Friedrich (1945). *"The Philosophy of Right*." Dover Publications, 2005, ISBN-10: 0486445631.
- Bryce, James (1888), *"The American Commonwealth."* Liberty Fund, 1995, ISBN-10: 086597117X.
- Ferguson, Sherry Devereaux.*"Researching the Public Opinion Environment: Theories and Methods."* SAGE Publications, May 11, 2000, ISBN-10: 0761915311.
- Bentham, Jeremy. *"Political Tactics (The Collected Works of Jeremy Bentham).*" Clarendon Press, 1999, ISBN-10: 0198207727.
- de Tocqueville, Alexis (1835). *"Democracy in America."* University of Chicago Press, April 1, 2002, ISBN-10: 0226805360

14.15निबंधात्मक प्रश्न

1. जनमत को आकार देने में मीडिया की भूमिका पर चर्चा करें।
2. जनमत और सरकार की जवाबदेही के बीच संबंध का विश्लेषण करें।

3. जनमत को आकार देने में नेताओं की भूमिका पर चर्चा करें।
4. जनमत पर वैश्वीकरण के प्रभाव का परीक्षण करें।